मिथ्यातम ही महापाप है

राजमल पवैया

मिथ्यातम ही महा पाप है, सब पापो का बाप है।
सब पापो से बडा पाप है, घोर जगत सताप है ॥टेक॥
हिंसादिक पाचो पापो से, महा भयकर दुखदाता।
सप्त व्यसन के पापो से भी, तीव्र पाप जग विख्याता॥
है अनादि से अग्रहीत ही, शाश्वत शिव सुख का घाता।
वस्तु स्वरूप इसी के कारण, नही समझ मे आ पाता॥
जिन वाणी सुनकर भी पागल, करता पर का जाप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ॥१॥

सज्ञी पचेन्द्रिय होता है, तो ग्रहीत अपनाता है।
दो हजार सागर त्रस रहकर, फिर निगोद मे जाता है॥
पर मे आपा मान स्वय को, भूल महा दुख पाता है।
किन्तु न इस मिथ्यात्व मोह के, चक्कर से बचपाता है॥
ऐसे महापाप से बचना, यह जिनकुल का माप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ॥२॥

इससे बढकर महा शत्रु तो, नही जीव का कोई भी।
इससे बढकर महा दुष्ट भी, नही जगत मे कोई भी॥
इसके नाश किए बिन होता, कभी नही व्रत कोई भी।
एकदेश या पूर्ण देशव्रत, कभो न होता कोई भी॥
क्रिया काड उपदेश आदि सब, झूठा वृथा प्रलाप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ॥३॥

यदि सच्चा सुख पाना है तो, तुम इसको सहार करो।
तत्क्षण सम्यक्‌दर्शन पाकर, यह भव सागर पार करो॥
वस्तु स्वरूप समझने को अब, तत्वो का अभ्यास करो।
देह पृथक है, जीव पृथक है, यह निश्चय विश्वास करो॥
स्वय अनादिअनत नाथ तू, स्वय सिद्ध प्रभु आप है।
मिथ्यातम ही महापाप है ॥४॥

प्रकाशकीय निवेदन

जगत के सब जीव सुख चाहते है अर्थात् दुःख से भयभीत है। सुख पाने के लिए यह जीव सर्व पदार्थों को अपने भावो के अनुसार पलटना चाहता है। परन्तु अन्य पदार्थों को बदलने का भाव मिथ्या है क्योकि पदार्थ तो स्वयमेव पलटते है और इस जीव का कार्य मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

सुखी होने के लिए जिन वचनो को समझना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान मे जिन धर्म के रहस्य को बतलाने वाले अध्यात्म पुरुष श्री कान जी स्वामी हैं। ऐसे सत्पुरुष के चरणो की शरण मे रहकर हमने जो कुछ सिखा पढा है उसके अनुसार प० कैलाश चन्द्र जी जैन (बुलन्दशहर) द्वारा गुथित जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सातो भाग जिन-धर्म के रहस्य को अत्यन्त स्पष्ट करने वाले होने से चौथी बार प्रकाशित हो रहे है।

इस प्रकाशन कार्य मे हम लोग अपने मडल के विवेकी और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहचानने वाले स्वर्गीय श्री रूप चन्द जी, माजरा वालो को स्मरण करते हैं जिनकी शुभप्रेरणा से इन ग्रन्थो का प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हुआ था।

हम बडे भक्ति भाव से और विनय पूर्वक ऐसी भावना करते हैं कि सच्चे सुख के अर्थी जीव जिन वचनो को समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करे। ऐसी भावना से इन पुस्तको का चौथा प्रकाशन आपके हाथ मे है।

इस चौथे भाग मे अनेकान्त-स्यादवाद्, मोक्षमार्ग अधिकार है जिसमे सात तत्त्वो का तथा पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म ये पाँच समवायो का, औपशमिक, क्षायिक आदि पाँच भावो का वर्णन करके अन्त मे मोक्ष मार्ग विषय के अनेक प्रयोजनभूत बात की स्पष्टता की है जो अवश्य ही समझने योग्य है ताकि पात्र भव्य अपना कल्याण कर सके।

विनीत

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मडल

देहरादून

प्रारम्भ से पहले अशुद्धियो को शुद्ध कीजिये

पृष्ठ सख्या	पक्ति	अशुद्धि	शुद्ध
३५	१	काध	वाघ
१४५	३	फकने	फेंकने
१५२	२०	आय	आश्रय
१६५	१३	वृषभो से	वृषभो द्वारा
१७७	५	ओर	और
१७७	८	ओर	और
१७९	१	जसे	जैसे
१८५	१७	स्वघर	स्वघर
२६४	१४	पर्याप	पर्याय

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

चौथे भाग की विषय सूची

✦✦✦✦✦✦

वैराग्यात्मक दोहे

(१) बालपने अज्ञात मति, जीवन मद कर लीन।
वृद्धपने है सिथिलता, कहो धर्म कब कोन ॥

(२) बाल पने विद्या पढ़ै, जोबन सजम लीन।
वृद्ध पनें सन्यास ग्रहि, करै करम कौ छीन ॥

(३) जिस कुटुम्ब के हेतु में, कीने बहु विधि पाप।
ते सब साथी बिछडे, पडा नरक मे आप ॥

(४) तीन लोक की सम्पदा, चक्रवर्ती के भोग।
काक बीट सम गिनत है, वीतराग के लोग ॥

(५) क्षमा तुल्य कोई तप नही, सुख सन्तोष समान।
नहि तृष्णा सम व्याधि है, धर्म समान न आन ॥

(६) या ससारी जीव की, प्रीत जैसी पर माह।
ऐसी प्रीत निज से करे, जन्म मरण दुःख जाये ॥

(७) यह जग अथिर असार है, महा दुख की खान।
यामे राचे ते कुधी, विरचे तिन कल्याण ॥

(८) अपने शुद्ध सुभाव से, कभी न कीनी प्रीत।
लगो रहा पर द्रव्य से, यह मूढन की रीत ॥

(९) भ्रमता जीव सदा रहे, ममता रत पर जाय।
समता जब मन मे धरे, जमता सा हर जाय ॥

(१०) त्याग करै त्यागी पुरुष, जाने आगम भेद।
सहज हरख मन मे धरै, करै करम को छेद ॥

(११) चेतन तुम तो चतुर हो, कहो भए मति हीन।
ऐसो नर भव पाय के, विषयन मे चितलीन ॥

(१२) चेतन रुप अनूप है, जो पहिचाने कोय।
तीन लोक के नाथ की, महिमा पावे सोय ॥

(१३) जाके गुणता मे वसे, नही ओर मे होय।
सूधि दृष्टि निहारते, दोष न लागे कोय ॥

(१४) जो जन परसो हित करै, चित सुधि सवै विसार।
सोचिन्तामणि रतन सम, गयो जन्म नर हार ॥

(१५) जो घर तजयो तो क्या भयो, राग तजो नहि वीर।
साप तजै औ कचुकी, विष नही तजै शरीर ॥

(१६) क्रोध मान माया धरन, लोभ सहित परिणाम।
यही ही तेरे शत्रु है, समझो आतम राम ॥

(१७) राग द्वेष के त्याग विन, परमातम पद नाहि।
कोटि-कोटि जप तप करो, सबहि अकारथ जाहि ॥

जिनेन्द्र कथित विश्व व्यवस्था

"जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और काल लोक प्रमाण असंख्यात है। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण में एक ही समय में एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय का व्यय और गुण ध्रौव्य रहता है। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य के गुण में हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा।"

[जैनदर्शन का सार]

स्व—(१) अमूर्तिक प्रदेशो का पुज (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी (३) अनादिनिधन (४) वस्तु आप है।

पर—(१) मूर्तिक पुद्गल द्रव्यो का पिण्ड (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो से रहित (३) नवीन जिसका सयोग हुआ है (४) ऐसे शरीरादि पुद्गल पर हैं। [मोक्षमार्गप्रकाशक]

सम्पूर्ण दुःखों का अभाव होकर सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति का उपाय

अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं। कोई किसी के आधीन नहीं हैं। कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। पर को परिणमित कराने का भाव मिथ्यादर्शन है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक]

अपने-अपने सत्त्व कूं, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसे चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय॥

सत् द्रव्य लक्षणम्। उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्।

[मोक्षशास्त्र]

"Permanancy with a Change"

[बदलने के साथ स्थायित्व]

NO SUBSTANCE IS EVER DESTROYED
IT CHANGES ITS FORM ONLY

[कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, प्रत्येक वस्तु अपनी अवस्था बदलती है।]

ॐ

लेखक की भूमिका

अनादिकाल से परमगुरु सर्वज्ञदेव, अपरगुरु गणधरादि ने जिस वस्तुस्वरूप का वर्णन किया है, वही वस्तुस्वरूप पूज्य श्री कानजी स्वामी बतला रहे थे। उसी वस्तुस्वरूप का ज्ञान जो मेरे ज्ञान मे आया, उसे मैं सदैव प्रश्नोत्तरो के रूप मे लेखबद्ध करता रहा था। धीरे-धीरे सरल प्रश्नोत्तरो के रूप मे समस्त जैन-शासन का सार लेखबद्ध हो गया। मेरे विचार मे सत्य बात समझ मे न आने का मुख्य कारण जिनेन्द्रदेव की आज्ञा का पता न होना और जिनागम का रहस्य दृष्टि मे न आने से अपनी मिथ्या मान्यताओ के अनुसार शास्त्रो का अभ्यास करना है। जिसके फलस्वरूप अज्ञानी जीव स्वय की मिथ्याबुद्धि से ससार मार्ग का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करते हैं। वस्तुत किसी भी अनुयोग के जैन शास्त्र का स्वाध्याय करने से पूर्व यदि निम्न प्रश्नोत्तरो का मनन कर लिया जाय तो शास्त्रो का सही अर्थ समझने मे सुविधा रहेगी तथा ससार मार्ग से बचने का अवकाश रहेगा।

प्रश्न १—प्रत्येक वाक्य में से चार बातें कौन-कौनसी निकालने से रहस्य स्पष्ट समझ मे आ सकता है ?

उत्तर—(१) जिन, जिनवर और जिनवरवृषभ क्या, कहते हैं ? (२) जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के कथन को सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ? (३) जिन-जिनवर और जिनवर-वृषभो के कथन को सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि पात्र भव्य जीव क्या जानते है और क्या करते हैं ? (४) जिन-जिनवर और

जिनवरवृपभो के कथन को सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

प्रश्न २—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो ने पदार्थ का स्वरूप कैसा और क्या बताया है ? जिसके श्रद्धान से सर्व दु.ख दूर हो जाता है ?

उत्तर—"अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नही हैं, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नही होती।" जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो ने बताया है कि पदार्थों का ऐसा श्रद्धान करने से सर्व-दु ख दूर हो जाता है।

प्रश्न ३—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभों के ऐसे कथन को सुनकर ज्ञानी क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—केवली के समान पदार्थों के स्वरूप का ज्ञान हो गया है, मात्र प्रत्यक्ष और परोक्ष का अन्तर रहता है। ज्ञानी अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव मे विशेष स्थिरता करके श्रेणी मांडकर सिद्धदशा की प्राप्ति कर लेते है।

प्रश्न ४—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के कथन को सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि पात्र भव्य जीव क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—अहो-अहो ! जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो का कथन महान उपकारी है तथा प्रत्येक पदार्थ की स्वतन्त्रता ध्यान मे आ जाती है। अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर ज्ञानी बनकर ज्ञानी की तरह निज-स्वभाव मे विशेष एकाग्रता करके श्रेणी मांडकर सिद्धदशा की प्राप्ति कर लेते हैं।

प्रश्न ५—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो के कथन को सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते हैं ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवरवृपभो के कथन का विरोध

करते है तथा मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारो गतियो मे घूमते हुए निगोद चले जाते हैं।

प्रश्न ६—प्रथम किन-किन पांच बातों का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर—(१) व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य का उसका पर्याय मे ही होता है, दो द्रव्यो मे व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध कभी भी नही होता हैं। (२) अज्ञानी का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध शुभाशुभ विकारी-भावो के साथ कहो तो कहो, परन्तु पर द्रव्यो के साथ तथा द्रव्यकर्मों के साथ तो व्याप्य-व्यापक सम्वन्ध किसी भी अपेक्षा नही है। (३) ज्ञानी का शुद्ध भावो के साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। (४) मैं आतमा व्यापक और शुद्धभाव मेरा व्याप्य है। ऐसे विकल्पो मे भी रहेगा तो धर्म की प्राप्ति नही होगी। (५) मैं अनादिअनन्त ज्ञायक एकरूप भगवान हूँ और मेरी पर्याय मे मेरी मूर्खता के कारण एक-एक समय का वहिरात्मपना चला आ रहा है ऐसा जाने-माने तो तुरन्त बहिरात्मपने का अभाव होकर अन्तरात्मा बन जाता है। इन पाँच बातो का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है।

प्रश्न ७—आगम के प्रत्येक वाक्य का मर्म जानने के लिए क्या-क्या जानकर स्वाध्याय करें ?

उत्तर—चारो अनुयोगो के प्रत्येक वाक्य मे (१) शब्दार्थ, (२) नयार्थ, (३ मतार्थ, (४) आगमार्थ और (५) भावार्थ निकालकर स्वाध्याय करने से जैनधर्म के रहस्य का मर्मी बन जाता है।

प्रश्न ८—शब्दार्थ क्या है ?

उत्तर—प्रकरण अनुसार वाक्य या शब्द का योग्य अर्थ समझना शब्दार्थ है।

प्रश्न ९—नयार्थ क्या है ?

उत्तर—किस नयका वाक्य है ? उसमे भेद-निमित्तादि का उपचार बताने वाले व्यवहारनय का कथन है या वस्तुस्वरूप वतलाने वाले

निश्चयनय का कथन है—उसका निर्णय करके अर्थ करना वह नयार्थ है।

प्रश्न १०—मतार्थ क्या है ?

उत्तर—वस्तुस्वरूप से विपरीत ऐसे किस मत का (सांख्य-बौद्धादिक) का खण्डन करता है। और स्याद्वाद मत का मण्डन करता है—इस प्रकार शास्त्र का कथन समझना वह मतार्थ है।

प्रश्न ११—आगमार्थ क्या है ?

उत्तर—सिद्धान्त अनुसार जो अर्थ प्रसिद्ध हो तदनुसार अर्थ करना वह आगमार्थ है।

प्रश्न १२—भावार्थ क्या है ?

उत्तर—शास्त्र कथन का तात्पर्य—सारांश, हेय उपादेयरूप प्रयोजन क्या है ? उसे जो बतलाये वह भावार्थ है। जैसे—निरंजन ज्ञानमयी निज परमात्म द्रव्य ही उपादेय है, इसके सिवाय निमित्त अथवा किसी भी प्रकार का राग उपादेय नहीं है। यह कथन का भावार्थ है।

प्रश्न १३—पदार्थों का स्वरूप सीदे-सादे शब्दों में क्या है, जिनके श्रद्धान-ज्ञान से सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जाता है ?

उत्तर—"जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असँख्यात काल द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण है। प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में एक ही समय में एक पर्याय का व्यय, एक पर्याय का उत्पाद और गुण ध्रौव्य रहता है। ऐसा प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा।" इसके श्रद्धान-ज्ञान से सम्पूर्ण दुःख का अभाव जिनागम में बताया है।

प्रश्न १४—किसके समागम में रहकर तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए और किसके समागम में रहकर तत्त्व का अभ्यास कभी नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—ज्ञानियो के समागम मे रहकर ही तत्त्व अभ्यास करना चाहिए और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास कभी भी नही करना चाहिए ।

प्रश्न १५—मोक्ष मार्ग प्रकाशक मे 'ज्ञानियो के समागम में तत्त्व अभ्यास करना और अज्ञानियो के समागम मे रहकर तत्त्व अभ्यास नहीं करना" ऐसा कहीं लिखा है ?

उत्तर—प्रथम अध्याय पृष्ठ १७ मे लिखा है कि "विशेष गुणो के धारी वक्ता का सयोग मिले तो बहुत भला है ही और न मिले तो श्रद्धानादिक गुणो के धारी वक्ताओ के मुख से ही शास्त्र सुनना । इस प्रकार के गुणो के धारक मुनि अथवा श्रावक सम्यग्दृष्टि उनके मुख से तो शास्त्र सुनना योग्य है और पद्धति बुद्धि से अथवा शास्त्र सुनने के लोभ से श्रद्धानादि गुण रहित पापी पुरुषो के मुख से शास्त्र सुनना उचित नही है ।"

प्रश्न १६—पाहुड़ दोहा मे "किसका सहवास नही करना चाहिए" ऐसा कहा लिखा है ?

उत्तर—पाहुड दोहा वीस मे लिखा है कि "विष भला, विषधर सर्प भला, अग्नि या वनवास का सेवन भी भला, परन्तु जिनधर्म से विमुख ऐसे मिथ्यात्वियो का सहवास भला नही ।"

प्रश्न १७—अपना भला चाहने वाले को कौन-कौन सी सात बातो का निर्णय करना चाहिये ?

उत्तर—(२) सम्यग्दर्शन से ही धर्म का प्रारम्भ होता है । (२) सम्यग्दर्शन प्राप्त किए बिना किसी भी जीव को सच्चे व्रत, सामायिक प्रतिक्रमण, तप, प्रत्याख्यानादि नही होते, क्योकि वह क्रिया प्रथम पाचवें गुणस्थान मे शुभभावरूप से होती है । (३) शुभभाव ज्ञानी और अज्ञानी दोनो को होते है । किन्तु अज्ञानी उससे धर्म होगा, हित होगा ऐसा मानता है । ज्ञानी की दृष्टि मे हेय होने से वह उससे कदापि हितरूप धर्म का होना नही मानता है । (४) ऐसा नही

समझना कि धर्मी को शुभभाव होता ही नही, किन्तु वह शुभभाव को धर्म अथवा उससे क्रमशः धर्म होगा—ऐसा नही मानता, क्योंकि अनन्त वीतराग देवो ने उसे वन्ध का कारण कहा है। (५) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर नही सकता, उसे परिणमित नही कर सकता, प्रेरणा नही कर सकता; लाभ-हानि नही कर सकता, उस पर प्रभाव नही डाल सकता, उसकी सहायता या उपकार नही कर सकता, उसे मार-जिला नही सकता; ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियो ने पुकार-पुकार कर कही है। (६) जिन-मत मे तो ऐसा परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व और फिर व्रतादि होते हैं। वह सम्यक्त्व स्व-परका श्रद्धान होने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि बनना चाहिए। (७) पहले गुणस्थान मे जिज्ञासु जीवो को शास्त्राभ्यास, अध्ययन-मनन, ज्ञानी पुरुषो का धर्मोपदेश-श्रवण, निरन्तर उनका समागम, देवदर्शन, पूजा, भक्तिदान आदि शुभभाव होते हैं। किन्तु पहले गुणस्थान मे सच्चे व्रत, तप आदि नही होते हैं।

प्रश्न १८—उभयाभासी के दोनो नयो का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह क्या करे? (दोनो नयो को किस प्रकार समझें?)

उत्तर—निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्रश्न १९—व्यवहारनय का त्याग करके निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कहीं भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है?

उत्तर—हा, दिया है। समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि "सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि मे अध्यवसाय है सो समस्त ही छोडना—ऐसा जिनदेवो ने कहा है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि—इसलिये मैं ऐसा मानता हू कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही

छुडाया है तो फिर सन्तपुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अगीकार करके शुद्धज्ञानघनरूप निज महिमा मे स्थिति क्यो नहीं करते ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रकट किया है।

प्रश्न २०—निश्चयनय को अंगीकार करने और व्यवहारनय के त्याग के विषय मे भगवान कुन्द-कुन्द आचार्य ने मोक्षप्राभृत गाथा ३१ मे क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार की श्रद्धा छोडता है वह योगी अपने आत्म कार्य मे जागता है तथा जो व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य में सोता है। इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है। यही बात समाधितन्त्र गाथा ७८ मे भगवान पूज्यपाद आचार्य ने बताई है।

प्रश्न २१—व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—व्यवहारनय (१) स्वद्रव्य, परद्रव्य को (२) तथा उनके भावो को (३) तथा कारण-कार्यादि को, किसी को किसी मे मिला कर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए और निश्चयनय उन्ही का यथा-वत निरूपण करता है। तथा किसी को किसी मे नही मिलाता और ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। इसलिये उसका श्रद्धान करना चाहिए।

प्रश्न २२—आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिनमार्ग मे दोनों नयो का ग्रहण करना कहा है। उसका क्या कारण है ?

उत्तर—जिनमार्ग मे कही तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना तथा कही

व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है। उसे "ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्रश्न २३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार दोनो नयो का ग्रहण करना चाहिये; क्या उन महानुभावों का कहना गलत है ?

उत्तर—हा, बिल्कुल गलत है, क्योंकि उन्हे जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्त्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्रश्न २४—व्यवहारनय असत्यार्थ है। तो उसका उपदेश जिनमार्ग मे किसलिये दिया ? एक मात्र निश्चयनय ही का निरूपण करना था।

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ यह उत्तर दिया है—जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार मे ससारी भाषा बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इस लिये व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते है। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, परन्तु वह अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २५—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता है। इसके पहले प्रकार को समझाइए ?

उत्तर—निश्चय से आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न स्वभावो से अभिन्न स्वयसिद्ध वस्तु है। उसे जो नही पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये। इसलिये उनको व्यवहारनय से शरीरादिक पर द्रव्यो की सापेक्षता द्वारा नर-नारक

पृथ्वीकायादिकरूप जीव के विशेष किये, तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है। इत्यादि प्रकार सहित उन्हे जीव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना (शरीर के सयोग बिना) निश्चय के (आत्मा के) उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २६—प्रश्न २५ मे व्यवहारनय से शरीरादिक सहित जीव की पहचान कराई तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिए ? सो समझाइए।

उत्तर—व्यवहारनय से नर-नारक आदि पर्याय ही को जीव कहा सो पर्याय ही को जीव नही मान लेना। वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के सयोगरूप है। वहा निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न है—उस ही को जीव मानना। जीव के सयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा सो कथनमात्र ही है। परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नही, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय (शरीरादि वाला जीव) अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २७—व्यवहार बिना (भेद बिना) निश्चय का (अभेद आत्मा का) उपदेश कैसे नहीं होता ? इस दूसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है। उसे जो नही पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तो वे समझ नही पाये। तब उनको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये। तब जानने वाला जीव है, देखने वाला जीव है। इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहचान हुई। इस प्रकार भेद बिना अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न २८—प्रश्न २७ मे व्यवहारनय से ज्ञान-दर्शन भेद द्वारा जीव की पहचान कराई। तब ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये ? सो समझाइये।

उत्तर—अभेद आत्मा मे ज्ञान-दर्शनादि भेद किये सो उन्हे भेद

रूप ही नही मान लेना क्योकि भेद तो समझाने के अर्थ किये है। निश्चय से आत्मा अभेद ही है। उस ही को जीववस्तु मानना। सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से द्रव्यगुण भिन्न-भिन्न नही है, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार भेदरूप व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्रश्न २९—व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसके तीसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर—निश्चय से वीतराग भाव मोक्षमार्ग है। उसे जो नही पहचानते उनको ऐसे ही कहते रहे तो वे समझ नही पाये। तब उनको तत्त्व श्रद्धान ज्ञानपूर्वक, परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा व्यवहारनय से व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेष बतलाये तब उन्हे वीतरागभाव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना निश्चय मोक्ष मार्ग के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न ३०—प्रश्न २९ में व्यवहारनय से मोक्ष मार्ग की पहचान कराई। तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नहीं करना चाहिये ? सो समझाइए।

उत्तर—परद्रव्य का निमित्त मिलने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्षमार्ग कहा। सो इन्ही को मोक्षमार्ग नही मान लेना, क्योकि (१) परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नही है। (२) इसलिए आत्मा अपने भाव जो रागादिक हैं, उन्हे छोडकर वीतरागी होता है। (३) इसलिए निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। (४) वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित कार्य-कारणपना (निमित्त-नैमित्तकपना) है, इसलिए, व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे सो कथनमात्र ही है। परमार्थ से बाह्यक्रिया

मोक्षमार्ग नही है—ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही हैं, ऐसा जानना।

प्रश्न ३१—जो जीव व्यवहारनय के कथन को ही सच्चा मान लेता है उसे जिनवाणी में किन-किन नामो से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—(१) पुरुषार्थ सिद्धयुपाय गाथा ६ मे कहा है कि "तस्य देशना नास्ति"। (२) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि "अज्ञान-मोह अन्धकार है उसका सुलटना दुर्निवार है"। (३) प्रवचनसार गाथा ५५ मे कहा है कि "वह पद-पद पर धोखा खाता है"। (४) आत्मावलोकन मे कहा है कि "यह उसका हरामजादीपना है"। इत्यादि सब शास्त्रो मे मूर्ख आदि नामो से सम्बोधन किया है।

प्रश्न ३२—परमागम के अमूल्य ११ सिद्धान्त क्या-क्या हैं, जो मोक्षार्थी को सदा स्मरण रखना चाहिए और वे जिनवाणी मे कहाँ-कहाँ बतलाये हैं ?

उत्तर—(१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नही करता है। [समयसार गाथा ३] (२) प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है। [समयसार गाथा ३०८ से ३११ तक] (३) उत्पाद, उत्पाद से है व्यय या ध्रुव से नही है। [प्रवचनसार गाथा १०१] (४) प्रत्येक पर्याय अपने जन्मक्षण मे ही होती है। [प्रवचनसार गाथा १०२] (५) उत्पाद अपने षटकारक के परिणमन से ही होता है [पचास्तिकाय गाथा ६२] (६) पर्याय और ध्रुव के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं [समयसार गाथा १८१ से १८३ तक] (७) भाव शक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी पडती नही। [समयसार ३३वी शक्ति] (८) निज भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। [समयसार गाथा ११] (९) चारो अनुयोगो का तात्पर्य मात्र वीत-रागता है। [पँचास्तिकाय गाथा १७२] (१०) स्वद्रव्य मे भी द्रव्य गुण-पर्याय का भेद विचारना वह अन्यवशपणा है। [नियमसार

१४५] (११) ध्रुव का आलम्बन है वेदन नही है और पर्याय का वेदन है, परन्तु आलम्बन नही है।

प्रश्न ३३—पर्याय का सच्चा कारण कौन है और कौन नहीं है?

उत्तर—पर्याय का कारण उस समय पर्याय की योग्यता है। वास्तव मे पर्याय की एक समय की सत्ता ही पर्याय का सच्चा कारण है। [अ] पर्याय का कारण पर तो हो ही नही सकता है, क्योकि परका तो द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक हैं। [आ] पर्याय का कारण त्रिकाली द्रव्य भी नही हो सकता है क्योकि पर्याय एक समय की है यदि त्रिकाली कारण हो तो पर्याय भी त्रिकाल होनी चाहिए सो है नही। [इ] पर्याय का कारण अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय भी नही हो सकती है क्योकि अभाव मे से भाव की उत्पत्ति नही हो सकती है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि पर्याय का सच्चा कारण उस समय पर्याय की योग्यता ही है।

प्रश्न ३४—मुझ निज आत्मा का स्वद्रव्य-परद्रव्य क्या-क्या है, जिसके जानने-मानने से चारो गतियो का अभाव हो जावे?

उत्तर—(१) स्वद्रव्य अर्थात निर्विकल्प मात्र वस्तु परद्रव्य अर्थात सविकल्प भेद कल्पना, (२) स्वक्षेत्र अर्थात आधार मात्र वस्तु का प्रदेश, पर क्षेत्र अर्थात प्रदेशो मे भेद पडना (३) स्वकाल अर्थात वस्तुमात्र की मूल अवस्था, परकाल अर्थात एक समय की पर्याय, (४) स्वभाव अर्थात वस्तु के मूल की सहज शक्ति, परभाव अर्थात गुणभेद करना। [समयसार कलश २५२]

प्रश्न ३५—किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी बन सकता है और किस कारण से सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं बन सकता?

उत्तर—देखो! तत्त्व विचार की महिमा! तत्त्व विचार रहित देवादिक की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रो का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तत्पश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नही और

तत्त्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६०]

प्रश्न ३६—जीव का कर्तव्य क्या है ?

उत्तर—जीव का कर्तव्य तो तत्त्व निर्णय का अभ्यास ही है इसी से दर्शन मोह का उपशम तो स्वमेव होता है उसमे (दर्शनमोह के उपशम मे) जीव का कर्त्तव्य कुछ नही है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३१४]

प्रश्न ३७—जिनधर्म की परिपाटी क्या है ?

उत्तर—जिनमत मे तो ऐसी परिपाटी है कि प्रथम सम्यक्त्व होता है फिर व्रतादि होते हैं। सम्यक्त्व तो स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है, तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्य-गुण पर्याय का अभ्यास करके सम्यग्दृष्टि बनना प्रत्येक भव्य जीव का परम कर्तव्य है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २९३]

प्रश्न ३८—किन-किन ग्रन्थो का अभ्यास करे तो एक भूतार्थ स्वभाव का आश्रय बन सके ?

उत्तर—मोक्षमार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भागो का सूक्ष्मरीति से अभ्यास करे तो भूतार्थ स्वभाव का आश्रय लेना बने।

प्रश्न ३९—मोक्ष मार्ग प्रकाशक व जैन सिद्धांत प्रवेश रत्नमाला में क्या-क्या विषय बताया है ?

उत्तर—छह द्रव्य, सात तत्त्व, छह सामान्य गुण, चार अभाव, छह कारक, द्रव्य-गुण पर्याय की स्वतन्त्रता, उपादान-उपादेय, निमित्त नैमित्तिक, योग्यता, निमित्त, समयसार सौवी गाथा के चार बोल, औपशमकादि पाच भाव, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप तथा प्रगट करने योग्य सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप तथा एक निज भूतार्थ के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति हो सकती है, आदि विषयो का सूक्ष्म

रीति से वर्णन किया है ताकि जीव निज स्वभाव का आश्रय लेकर मोक्ष का पथिक बने।

प्रश्न ४०—क्या जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सातभाग आपने बनाये है ?

उत्तर—जन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सात भाग तो आहार वर्गणा का कार्य है। व्यवहारनय से निरूपण किया जाता है कि मैंने बनाये है। अरे भाई। चारो अनुयोगो के ग्रन्थो मे से परमागम का मूल निकालकर थोडे मे सग्रह कर दिया है। ताकि पात्र भव्य जीव सुगमता से धर्म की प्राप्ति के योग्य हो सके। इन सात भागो का एक मात्र उद्देश्य मिथ्यात्वादि का अभाव करके सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रमश. मोक्ष का पथिक बनना ही है।

भवदीय

कैलाश चन्द्र जैन

बन्ध और मोक्ष के कारण

परद्रव्य का चिन्तन ही बन्ध का कारण है और केवल विशुद्ध स्वद्रव्य का चिन्तन ही मोक्ष का कारण है।

[तत्वज्ञानतरगिणी १५-१६]

सम्यक्त्वी सर्वत्र सुखी

सम्यग्दर्शन सहित जीव का नरकवास भी श्रेष्ठ है, परन्तु सम्यग्दर्शन रहित जीव का स्वर्ग मे रहना भी शोभा नही देता; क्योकि आत्मज्ञान विना स्वर्ग मे भी वह दुःखी है। जहाँ आत्मज्ञान है वहीं सच्चा सुख है।

[सारसमुच्चय-३९]

॥ श्री वीतरागायनम ॥

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

चौथा भाग

मंगलाचरण

णमो अरहन्ताण, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाण;
णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्व साहूण ॥१॥

आत्मा सो अर्हन्त है, निश्चय सिद्ध जु सोहि।
आचारज उवझाय अरु, निश्चय साधु सोहि ॥२॥

स्याद्वाद अधिकार अब, कहौं जैन को मूल।
जाकें जानत जगत जन, लहैं जगत-जल-कूल ॥३॥

देव गुरु दोनो खड़े किसके लागू पांव।
बलिहारी गुरुदेव की भगवान दियो बताय ॥४॥

करुणानिधि गुरुदेव श्री दिया सत्य उपदेश।
ज्ञानी माने परख कर, करे मूढ सक्लेश ॥५॥

अनेकान्त और स्याद्वाद प्रथम अधिकार

प्रश्न १—स्याद्वाद-अनेकान्त के विषय मे समयसार कलश चार में क्या बताया है ?

उत्तर—उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदाके,
जिनवचसि रमन्ते ये स्वय वान्तमोहाः।
सपदि समयसार ते पर ज्योतिरुच्चै—
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव ॥४॥

श्लोकार्थ—[उभय-नय-विरोध-ध्वसिनि] निश्चय और व्यवहार—इन दो नयो के विषय के भेद से परस्पर विरोध है, उस विरोध का *नाश करने वाला* [*स्यात्-पद-अके*] '*स्यात्*'—पद से *चिह्नित* [*जिन*-वचसि] जो जिन भगवान का वचन (वाणी) उसमे है [ये रमन्ते] जो पुरुष रमते हैं (रग, राग, भेद का आश्रय छोड कर त्रिकाली अपने भगवान का आश्रय लेते है) [ते] वे पुरुष [स्वय] अपने आप ही (अन्य कारण के विना) [वान्तमोहा] मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके [उच्चै पर ज्योति समयसार] इस अतिशयरूप परमज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को [सपदि] तत्काल (उसी क्षण) [ईक्षन्ते एव] देखते ही हैं (अनुभव करते है)। कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा ? [अनवम्] नवीन उत्पन्न नही हुआ, किन्तु कर्मों से आच्छादित था, सो ज्ञायक की ओर दृष्टि करने से प्रगट व्यक्ति रूप हो गया है और समयसाररूप शुद्ध आत्मा कैसा है ? [अनय-पक्ष-अक्षुण्णम्] सर्वथा एकान्तरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नही होता, निर्बाध है।

प्रश्न २—स्यादवाद्-अनेकान्त के विषय मे नाटक समयसार में क्या बताया है ?

उत्तर—निहचैमै रूप एक विवहारमें अनेक,
याही नै विरोधमैं जगत भरमायो है।

जगके विवाद नासिबे कौं जिन आगम है,
जामैं स्याद्वाद नाम लच्छन सुहायो है ।।
दरसनमोह जाको गयो है सहजरूप,
आगम प्रमान ताके हिरदैमें आयो है ।
अनैसौं अखंडित अनूतन अनंत तेज,
ऐसौ पद पूरन तुरन्त तिनि पायो है ।।

अर्थ—निश्चयनय मे पदार्थ एकरूप है और व्यवहार मे अनेकरूप है। इस नय-विरोध मे ससार भूल रहा है, सो इस विवाद को नष्ट करने वाला जिनागम है । जिसमे स्याद्वाद् का शुभ चिह्न है । (मुहर-छाप लगी है—स्याद्वाद् से ही पहिचाना जाता है कि यह जिनागम है)। जिस जीव को दर्शनमोहनीय का उदय नही होता उसके हृदय मे स्वत स्वभाव यह प्रमाणिक जिनागम प्रवेश करता है और उसे तत्काल ही नित्य, अनादि और अनन्त प्रकाशमान मोक्षपद प्राप्त होता है ।

प्रश्न ३—स्याद्वाद, अनेकान्त के विषय में पुरुषार्थ सिद्धयुपाय श्लोक २२५ में अमृतचन्द्राचार्य जी ने क्या बताया है ?

उत्तर—एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण ।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थान नेत्रमिव गोपी ।।

अर्थ—मथनी को रस्सी खीचने वाली ग्वालिन की भाँति, जिनेन्द्र भगवान की जो नीति अर्थ नय-विवक्षा है वह वस्तु स्वरूप को एक नय-विवक्षा से खीचती है और दूसरो नय-विवक्षा से ढील देती हुई अन्त अर्थात् दोनो विवक्षा द्वारा जयवत रहे ।

भावार्थ—भगवान की वाणी स्याद्वादरूप अनेकान्तात्मक है, वस्तु का स्वरूप प्रधानतया-गौणनय की विवक्षा से किया जाता है । जैसे कि—जीव द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है, द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा से नित्य है और पर्यायार्थिकनय की विवक्षा से अनित्य है यह नय विवक्षा है ।

प्रश्न ४—नाटक समयसार मे जैन मत का मूल सिद्धान्त क्या है, जिससे जीव संसार से पार होते हैं ?

उत्तर—स्याद्वाद अधिकार अब, कहौं जैन को मूल।
जाके जानत जगत जन, लहैं जगत-जल-कूल॥

अर्थ—जैनमत का मूल सिद्धान्त 'अनेकान्त स्याद्वाद' है। जिसका ज्ञान होने से जगत के मनुष्य ससार-सागर से पार होते हैं।

प्रश्न ५—अनेकान्तमयी जिनवाणी का स्वरूप, श्री प्रवचनसार कलश दो में क्या बताया है ?

उत्तर—"जो महामोहरूपी अन्धकार समूह को लीलामात्र मे नष्ट करता है। और जगत के स्वरूप को प्रकाशित करता है। वह अनेकान्तमय ज्ञान सदा जयवन्त रहो" ऐसा बताया है।

प्रश्न ६—समयसार कलश दो मे प० जयचन्द्र ने सरस्वती की अनेकान्तमयी सत्यार्थमूर्ति किसे कहा है ?

उत्तर—"सम्यग्ज्ञान ही सरस्वती की सत्यार्थ मूर्ति है। उसमे भी सम्पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है, जिसमे समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भासित होते हैं। केवलज्ञान अनन्तधर्म और गुणसहित आत्मतत्व को प्रत्यक्ष देखता है, इसलिये वह सरस्वती की मूर्ति है और केवलज्ञान के अनुसार जो भावश्रुतज्ञान है वह आत्मतत्व को परोक्ष देखता है—इसलिए भावश्रुतज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है। द्रव्यश्रुत-वचनरूप है, वह भी निमित्तरूप उसकी मूर्ति है, क्योकि वह वचनो के द्वारा अनेक धर्म वाले आत्मा को बतलाती है इस प्रकार समस्त पदार्थों के तत्व को बताने वाली सम्यग्ज्ञानरूप (उपादान) तथा वचनरूप (निमित्त) अनेकान्त-मयी सरस्वती की मूर्ति है"।

प्रश्न ७—पुरुषार्थसिद्धयुपाय के दूसरे श्लोक मे कैसे अनेकान्त को नमस्कार किया है ?

उत्तर—(१) जो परमागम का जीवन है (२) जिसने अन्य एकान्त मतियो की भिन्न-भिन्न एकान्त मान्यताओ का खण्डन कर दिया है

और (३) जिसने समस्त नयो द्वारा प्रकाशित जो वस्तु का स्वभाव है, उसके विरोध को नष्ट कर दिया है। मैं उस अनेकान्त को अर्थात् एक पक्ष रहित स्याद्वादरूप भाव श्रुतज्ञान को नमस्कार करता हूँ' ऐसा कहा है।

प्रश्न ८—अनेकान्त-स्याद्वाद परमागम का जीवन क्यो है ?

उत्तर—जगत का प्रत्येक सत् अनेकान्तरूप है। अस्ति-नास्ति, तत्-अत्तत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि युगलो से गुंथित है। जब पदार्थ ही स्वत सिद्ध अनेकान्तरूप है, तो उसको जानने वाला वही ज्ञान प्रणाम कोटि मे आ सकता है कि जो अनेकान्त को अनेकान्तरूप ही जाने। इसलिए अनेकान्त स्याद्वाद को परमागम का जीवन कहा है—

एक काल मे देखिये अनेकान्त का रूप।
एक वस्तु मे नित्य ही विधि निषेध स्वरूप॥

प्रश्न ९—अनेकान्त-स्याद्वाद को समझने समझाने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर—अज्ञानियो मे अनादिकाल से एक-एक समय करके जो पर पदार्थों मे, शुभाशुभ विकारी भावो मे कर्ता-भोक्ता की खोटी बुद्धि है, उसका अभाव करने के लिए और अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति के निमित्त अनेकान्त-स्याद्वाद को समझने-समझाने की आवश्यकता है।

प्रश्न १०—अनेकान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु मे वस्तुपने की सिद्धि करने वाली अस्ति-नास्ति आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियो का एक ही साथ प्रकाशित होना—उसे अनेकान्त कहते हैं।

प्रश्न ११—प्रत्येक वस्तु मे किस-किस का ग्रहण होता है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य का, प्रत्येक गुण का, प्रत्येक पर्याय का, प्रत्येक अविभाग प्रतिच्छेद का ग्रहण होता है।

प्रश्न १२—अनेकान्त की व्याख्या मे 'आदि' शब्द आया है, उससे क्या-क्या समझना ?

उत्तर—एक-अनेक, नित्य-अनित्य, अभेद-भेद, सत-असत, तत्-अतत् आदि अनेक युगल समझ लेना।

प्रश्न १३—सत्-असत् आदि युगल किस-किस में लग सकते हैं ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे, प्रत्येक गुण मे, प्रत्येक पर्याय मे, प्रत्येक अविभाग प्रतिच्छेद मे लग सकते है।

प्रश्न १४—एक-अनेक, नित्य-अनित्य, सत्-असत् आदि क्या हैं ?

उत्तर—धर्म है, गुण नही है।

प्रश्न १५—धर्म और गुण मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—गुणो को धर्म कह सकते है, परन्तु धर्मो को गुण नही कह सकते हैं। क्योकि :—(१) अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य और विशेष गुण होते हैं उनकी पर्यायें होती है। (२) नित्य-अनित्य, तत्-अतत् आदि धर्म है उनकी पर्याये नही होती है यह अपेक्षित धर्म है।

प्रश्न १६—प्रत्येक द्रव्य मे सत्-असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि अनेक अपेक्षित धर्म हैं, वह किस प्रकार है ?

उत्तर—जैसे-एक आदमी को कोई पिताजी, कोई बेटा जी, कोई मामा जी, कोई चाचा जी, कोई ताऊ जी कहता है, तो क्या वह झगडा करेगा ? नही करेगा, क्योकि वह समझता है इस अपेक्षा मामा हूँ इस अपेक्षा पिता जी हूँ, उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य मे नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि अनेक अपेक्षित धर्म हैं। उनमे अपेक्षा समझने से कभी भी झगडा नही होगा और अनेकान्त-स्याद्वाद धर्म की सिद्धि हो जावेगी।

प्रश्न १७—अनेकान्त-स्याद्वाद किसमे लग सकता है और किसमे नहीं लग सकता है ?

उत्तर—जिसमे जो धर्म हो उसी मे लग सकता है। जिसमे जो धर्म नही हो उसमे नही लग सकता है। जैसे—परमाणु निश्चय से अप्रदेशी (एक प्रदेशी) है, व्यवहार से बहुप्रदेशी है, उसी प्रकार काल

द्रव्य निश्चय से अप्रदेशी (एक प्रदेशी) है, व्यवहार से काल द्रव्य मे बहुप्रदेशी हो—ऐसा नही है।

प्रश्न १८—अनेकान्त का द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है ?

उत्तर—आत्मा द्रव्य है, ज्ञान गुण है, अनेकान्त ज्ञानरूप पर्याय है।

प्रश्न १९—अनेकान्त का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है ?

उत्तर—अन्=नही, एक=एक, अन्त=धर्म, अर्थात् एक धर्म नही, दो धर्म हो यह अनेकान्त का व्युत्पत्ति अर्थ है।

प्रश्न २०—अनेकान्त क्या बताता है ?

उत्तर—दो धर्म हो, वे परस्पर विरुद्ध हो और वस्तु को सिद्ध करते हो, यह अनेकान्त बताता है।

प्रश्न २१—क्या नित्य-अनित्य आदि विरोधी धर्म हैं ?

उत्तर—नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि विरोधी धर्म नही परन्तु विरोधी प्रतीत होने वाले धर्म है। वे परस्पर विरोधी प्रतीत होते है, है नही क्योकि उनकी सत्ता एक द्रव्य मे एक साथ पाई जाती है।

प्रश्न २२—वस्तु किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जिनमे गुण-पर्याय बसते हो उसे वस्तु कहते है। (२) जिसमे सामान्य-विशेषपना पाया जावे उसे वस्तु कहते हैं। (३) जो अपना-अपना प्रयोजनभूत कार्य करता हो उसे वस्तु कहते हैं।

प्रश्न २३—यह तीन वस्तु की व्याख्या किसमे पाई जाती है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे पाई जाती है। अत जाति अपेक्षा छह द्रव्य और सख्या अपेक्षा जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असख्यात काल द्रव्य सब वस्तु हैं।

प्रश्न २४—वस्तु को जानने से हमे क्या लाभ रहा ?

उत्तर—जब प्रत्येक द्रव्य वस्तु है, तो मै भी एक वस्तु हूँ। मैं अपने गुण-पर्यायो मे बसता हूँ, पर मे नही बसता हूँ। ऐसा जानकर अपनी

वस्तु की ओर दृष्टि करे तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रम से निर्वाण की प्राप्ति हो, यह वस्तु को जानने का लाभ है।

प्रश्न २५—मैं किसमे नहीं वसता हूं। और किस मे वसता हूं ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों मे नही वसता हूँ अपने गुण-पर्यायो में वसता हूँ। (२) आँख-नाक-कान आदि औदारिक शरीर मे नही वसता हूँ, अपने गुण-पर्यायो मे वसता हूँ (३) तैजस-कार्माण शरीर मे नही वसता हूँ, अपने गुण-पर्यायो मे वसता हूँ। (४) भाषा और मन मे नहीं वसता हूँ, अपने गुण पर्यायो मे वसता हूँ। (५) शुभाशुभभावो मे नही वसता हूँ, अपने गुण-पर्यायो मे वसता हूँ। (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायो रूप भेद कल्पना मे नही वसता हूँ, अपने गुण पर्यायो मे वसता हूँ। (७) भेद नय के पक्ष मे नही वसता हूँ, अपने गुण-पर्यायो मे वसता हूँ। (८) अभेद नय के पक्ष मे नही वसता हूँ अपने गुण-पर्यायो मे वसता हूँ। (९) भेदाभेद नय के पक्ष मे नही वसता हूँ, अपने गुण-पर्यायो मे वसता हूँ।

प्रश्न २६—प्रत्येक वस्तु अपने-अपने मे ही वसती है, पर मे नही वसती, यह महामन्त्र किन-किन शास्त्रो मे आया है ?

उत्तर–(अ) अनादिनिधन वस्तुये भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के अधीन नही है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती।" [मोक्ष-मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ५२] (आ) सर्व पदार्थ अपने द्रव्य मे अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्वन करते है—स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नही करते [समयसार गा० ३]। (इ) अपने-अपने सत्वकूं, सर्व वस्तु विलसाय। ऐसे चितवै जीव तव, परतें ममत न थाय। [जयचन्द्र जी अन्यत्व भावना] (ई) अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य के गुण की उत्पत्ति नही की जा सकती, क्योकि सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते है। [समयसार गा० ३७२] (उ) सत् द्रव्य लक्षणम्-उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तसत् [तत्त्वार्थसूत्र] (ऊ)

जिनेन्द्र भगवान को वाणी से कथित् सर्व पदार्थो का द्रव्य-गुण पर्याय स्वरूप ही यथार्थ है यह पारमेश्वरी व्यवस्था है। [प्रवचनसार गा० ९३] यह सब महामन्त्र हैं।

प्रश्न २७—विरोध कितने प्रकार का है ?

उत्तर—दो प्रकार का है। (१) एक विरोध-बिल्लो-चूहे की तरह, नेवला-साँप की तरह, अन्धकार प्रकाश की तरह, सम्यक्त्व के समय ही मिथ्यात्व का सद्‌भाव मानना आदि विरोध वस्तु को नाश करने वाला है। (२) दूसरा विरोध—अस्ति-नास्ति आदि वस्तु को सिद्ध करने वाला है।

प्रश्न २८—बिल्ली-चूहे की तरह विरोध वस्तु का नाश करने वाला कैसे है ?

उत्तर—वस्तु अनेकान्त रूप है, परन्तु जो वस्तु को सर्वथा एकरूप ही मानते है वह विरोध वस्तु का नाश करने वाला है। जैसे—कोई वस्तु को सर्वथा सामान्यरूप ही मानता है। कोई वस्तु को सर्वथा विशेप रूप ही मानता है। कोई वस्तु को सर्वथा असत् ही मानता है। कोई वस्तु को सर्वथा एकरूप मानकर द्रव्य-गुण-पर्याय के भेदो को नाश करता है। कोई वस्तु को सर्वथा भेदरूप ही मानकर स्वत सिद्ध अखण्ड वस्तु को खण्ड-खण्ड ही मानता है। ऐसी मान्यतायें बिल्ली-चूहे की तरह का विरोध वस्तु को नाश करने वाला है।

प्रश्न २९—क्या कहीं छहढाला मे वस्तु का नाश करने वाला विरोध बताया है ?

उत्तर—

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त;
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहुदेनत्रास॥

(१) जो शास्त्र जगत मे सर्वथा नित्य, एक, अद्वैत और सर्व-व्यापक ब्रह्म मात्र वस्तु है, अन्य कोई पदार्थ नही है। (२) वस्तु को सर्वथा क्षणिक-अनित्य बतलाये। (३) गुण-गुणी सर्वथा भिन्न है किसी

गुण के सयोग से वस्तु है। (४) जगत का कोई कर्ता-हर्ता तथा नियता है । (५) दया-दान महाव्रतादि शुभराग से मोक्ष होना वतलाये । (६) निमित्त से उपादान मे कार्य होता है। (७) शुभभाव मोक्षमार्ग है आदि सर्वथा एकान्त विरोध वस्तु का नाश करने वाला है ऐसा छहढाला मे से वताया है।

प्रश्न ३०—अस्ति-नास्ति आदि विरोध वस्तु को सिद्ध करने वाला किस प्रकार है ?

उत्तर—नय विवक्षा से वस्तु मे अनेक स्वभाव है और उनमे परस्पर विरोध है। जैसे—अस्ति है, वह नास्ति का प्रतिपक्षीपना है, परन्तु जव स्याद्वाद अनेकान्त से स्थापन करे तो सर्व विरोध दूर हो जाता है।

प्रश्न ३१—नित्य-अनित्य विरोध वस्तु को कैसे सिद्ध करता है ?

उत्तर—क्या वस्तु नित्य है ? उत्तर हाँ। क्या वस्तु अनित्य भी है ? उत्तर हाँ। देखो, दोनो प्रश्नो के उत्तर मे 'हाँ' है। विरोध लगता है। परन्तु वस्तु द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है ऐसा स्याद्वाद-अनेकान्त वतलाकर वस्तु को सिद्ध करता है।

प्रश्न ३२—तत्-अतत् विरोध वस्तु को कैसे सिद्ध करता है ?

उत्तर—जो (वस्तु) तत् है वही अतत् है। आत्मा स्वरूप से (ज्ञान रूप से) तत् है, वही ज्ञेयरूप से अतत् है। स्याद्वाद अनेकान्त वस्तु को तत्-अतत् स्वभाव वाली वतलाकर इनके विरोध को मेटकर वस्तु को सिद्ध करता है।

प्रश्न ३३—एक-अनेक का विरोध वस्तु को कैसे सिद्ध करता है ?

उत्तर—एक नय अखण्ड वस्तु की स्थापना करके द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद को इन्कार करता है किन्तु अनेक नय द्रव्य-गुण-पर्याय का भिन्न-भिन्न लक्षण वतलाकर वस्तु को भेदरूप स्थापित करता है। इस प्रकार इनमे विरोध दिखते हुए भी स्याद्वाद-अनेकान्त वस्तु को

एक-अनेक बतलाकर इनके विरोध को मेट कर वस्तु को सिद्ध करता है।

प्रश्न ३४—उपादान और निमित्त में एकान्ती और अनेकान्ती की मान्यता किस प्रकार हैं ?

उत्तर—(१)उपादान कुछ नही करता, केवल निमित्त ही उसे परिणमाता है, वह भी एक धर्म को मानने वाला एकान्ती है। तथा जो यह मानता है कि निमित्त की उपस्थिति ही नही होती वह भी एक धर्म का लोप करने वाला एकान्ती है (२) परन्तु जो यह मानता है कि परिणमन तो सब निरपेक्ष अपना-अपना चतुष्टय मे स्वकाल की योग्यता से करते हैं। किन्तु जहाँ आत्मा विपरीत दशा मे परिणमता है वहाँ योग्य कर्म का उदयरूप निमित्त की उपस्थिति होती है। तथा जहाँ आत्मा पूर्ण स्वभावरूप परिणमता है वहाँ सम्पूर्ण कर्म का अभावरूप निमित्त होता है, वह दोनो धर्मों को मानने वाला अनेकान्ती है।

प्रश्न ३५—व्यवहार-निश्चय में एकान्ती और अनेकान्ती की मान्यता किस प्रकार हैं ?

उत्तर—(१) जो निश्चय रत्नत्रय से अनभिज्ञ है और मात्र देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन, शास्त्र ज्ञान को सम्यग्ज्ञान, अणुव्रतादिक को श्रावकपना, और महाव्रतादिक को मुनिपना मानता है, वह व्यवहाराभासी एकान्ती है। जो भूमिकानुसार राग को पूर्वचर या सहचररूप से नही मानता, वह निश्चयाभासी एकान्ती है। (२) किन्तु जो मोक्षमार्ग तो निरपेक्ष शुद्ध रत्नत्रय को ही मानता है और भूमिकानुसार पूर्वचर या सहचर व्यवहार भी साधक के होता है ऐसा मानता है वह स्याद्वाद्-अनेकान्त का मर्मी अनेकान्ती है।

प्रश्न ३६—द्रव्य और पर्याय के विषय में एकान्ती कौन है और अनेकान्ती कौन है ?

उत्तर—(१) जो सांख्यवत् त्रिकाली शुद्ध द्रव्य को त्रिकाल शुद्ध

मानता है किन्तु पर्याय को नही मानता है। वह एक धर्म का लोप करने वाला एकान्ती है। तथा जो बौद्धवत् पर्याय को ही मानता है उसमे अन्वय रूप से पाया जाने वाला द्रव्य को नही मानता, वह भी एक धर्म का लोप करने वाला एकान्ती है। (२) किन्तु जो द्रव्य और पर्याय दोनो को मानता है तथा पर्याय का आश्रय छोडकर द्रव्य का ही आश्रय करता है। वह स्याद्वाद अनेकान्त का मर्मी अनेकान्ती है।

प्रश्न ३७—जो पर की क्रिया को अपनी मानता है वह कौन है। और प्रत्येक द्रव्य मे स्वतंत्रतया अपनी-अपनी क्रिया होती है ऐसा मानता है वह कौन है ?

उत्तर—(१) मन-वचन-काय, पर वस्तु की क्रिया का कर्ता आत्मा को मानता है वह एक पदार्थ की क्रिया का लोप करने वाला एकान्ती है। (२) जो यह मानता है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र रूप से अपने-अपने परिणाम को करता है वह स्याद्वाद-अनेकान्त का मर्मी अनेकान्ती है।

प्रश्न ३८—विरोध होते हुये भी विरोध वस्तु को सिद्ध करता है इसमें करुणानुयोग का दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर—क्या अपनी मूर्खता चक्कर खिलाती है ? उत्तर—हाँ ! क्या कर्म भी चक्कर खिलाता है ? उत्तर—हाँ ! दोनो प्रश्नो के उत्तर मे 'हाँ' है, विरोध लगता है। परन्तु आत्मा अपनी मूर्खता से चक्कर काटता है यह निश्चयनय का कथन है। और कर्म चक्कर कटाता है यह व्यवहारनय का कथन है—ऐसा स्याद्वादी-अनेकान्ती जानता है क्योकि वह चारो अनुयोगो के रहस्य का मर्मी है।

प्रश्न ३९—क्या मुख्य-गौण वस्तु के भेद हैं ?

उत्तर—वस्तु के भेद नही है, क्योकि मुख्य-गौण वस्तु मे विद्यमान धर्मों की अपेक्षा नही है किन्तु वक्ता की इच्छानुसार है। मुख्य-गौण कथन के भेद हैं वस्तु के नही है।

प्रश्न ४०—शास्त्रों में 'ही' का प्रयोग किस-किस दृष्टि से किया है ?

उत्तर—(१) एक दृष्टि से कथन करने मे 'ही' आता है। (२)'ही' दृढता सूचक है। (३) जहां अपेक्षा स्पष्ट बतानी हो वहाँ 'ही' अवश्य लगाया जाता है। (४) 'ही' अपने विषय के बारे मे सब शकाओ का अभाव कर दृढता बताता है। जैसे—आत्मा द्रव्यदृष्टि से शुद्ध ही है। (५) 'ही' सम्यक् एकान्त को बताता है।

प्रश्न ४१—शास्त्रो में 'भी' का प्रयोग किस-किस दृष्टि से किया जाता है ?

उत्तर—(१) प्रमाण की दृष्टि से कथन मे 'भी' आता है ? जैसे—आत्मा शुद्ध भी है और अशुद्ध भी है। (२) अपूर्ण को पूर्ण न समझ लिया जावे, इसके लिए 'भी' का प्रयोग होता है (३) जो बात अश के विषय मे कही जा रही है। उसे पूर्ण के विपय मे ना समझ लिया जावे, इसके लिए 'भी' का प्रयोग होता है। **दूसरे प्रकार के शब्दो में कहा जावे।** (१) (सापेक्ष) जहाँ कोई अपेक्षा ना दिखाई जावे वहाँ पर 'भी' का प्रयोग होता है। जैसे—द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है। (२) (सम्भावित) जितनी वस्तु कही है उतनी ही वस्तु मात्र नही है दसरे धर्म भो उसमे हैं यह बताने के लिए 'भी' का प्रयोग होता है। (३) (अनुक्त) अपनी मनमानी कल्पना से कैसा भी धर्म वस्तु मे फिट कर लिया जावे, ऐसे मनमानी के कल्पना के धर्मों को निषेध के लिए 'भी' का प्रयोग होता है।

प्रश्न ४२—व्यवहार उपचार कब कहा जा सकता है ?

उत्तर—(१) जिसको निश्चय प्रगटा हो उसी को उपचार लागू होता है, क्योंकि अनुपचार हुए बिना उपचार लागू नही होता है। (२) व्यवहार या उपचार यह झूठा कथन है, क्योंकि व्यवहार किसी को किसी मे मिलाकर निरुपण करता है इसके श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए इसका त्याग करना। जहाँ-जहाँ व्यवहार या उपचार

कथन हो वहाँ "ऐसा नही है निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है" ऐसा जानने को व्यवहार-उपचार कहा जा सकता है।

प्रश्न ४३—सम्यक् अनेकान्ती कौन है ?

उत्तर—वस्तु द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा सामान्य है विशेष नही है। तथा वस्तु पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा विशेष है सामान्य नही है, यह दोनो सम्यक् अनेकान्ती है।

प्रश्न ४४—मिथ्या अनेकान्ती कौन है ?

उत्तर—वस्तु द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा सामान्य भी है और विशेष भी है। तथा पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा वस्तु विशेष भी है और सामान्य भी है, यह दोनो मान्यता वाले मिथ्या अनेकान्ती हैं।

प्रश्न ४५—अपनी आत्मा का श्रद्धान-सम्यग्दर्शन है। और देव, गुरु, शास्त्र का श्रद्धान-सम्यग्दर्शन है। इसमे सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त किस प्रकार है ?

उत्तर—अपनी आत्मा का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है और देव, गुरु, शास्त्र का श्रद्धान सम्यग्दर्शन नही है यह सच्चा अनेकान्त है। और अपनी आत्मा का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन है और देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन है यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न ४६—(१) देशचारित्ररूप शुद्धि भी श्रावकपना है और १२ अणुव्रतादिक भी श्रावकपना है। (२) सकलचारित्ररूप शुद्धि भी मुनिपना है और २८ मूलगुण पालन भी मुनिपना है। (३) सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय से भी होता है और दर्शनमोहनीय के अभाव से भी होता है। इन तीनो वाक्यों में सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त क्या है ?

उत्तर—देशचारित्ररूप शुद्धि ही श्रावकपना है और १२ अणुव्रतादिक श्रावकपना नही है, यह सच्चा अनेकान्त है। देशचारित्ररूप शुद्धि भी श्रावकपना है और १२ अणुव्रतादिक भी श्रावकपना है यह मिथ्या

अनेकान्त है। इसी प्रकार बाकी दो वाक्यो मे सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त लगाकर बताओ।

प्रश्न ४७—अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा, इसके कुछ दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—(१) आत्मा अपने रूप से है और पर रूप से नही है तो अनेकान्त को समझा है। आत्मा अपने रूप से भी है और पर रूप से भी है तो अनेकान्त को नही समझा। (२) आत्मा अपना कर सकता है और पर का नही कर सकता तो अनेकान्त को समझा है। आत्मा अपना भी कर सकता है और पर का भी कर सकता है तो अनेकान्त को नही समझा। (३) आत्मा के आश्रय से शुद्धभाव से धर्म होता है और शुभभाव से नही होता तो अनेकान्त को समझा है। आत्मा के आश्रय से शुद्धभाव से भी धर्म होता है और शुभभाव से भी धर्म होता है तो अनेकान्त को नही समझा। (४) ज्ञान का कार्य ज्ञान से होता है और दूसरे गुणो से नही तो अनेकान्त को समझा है। ज्ञान का कार्य ज्ञान गुण से भी होता है और दूसरे गुणो से भी होता है तो अनेकान्त को नही समझा। (५) एक पर्याय अपना कार्य करती है और दूसरी पर्याय का कार्य नही करती तो अनेकान्त को समझा है। एक पर्याय अपना भी कार्य करती है और पर का भी कार्य करती है तो अनेकान्त को नही समझा। (६) ज्ञान आत्मा से होता है और शरीर, इन्द्रियाँ, द्रव्य कर्म और शुभाशुभ भावो से नही होता, तो अनेकान्त को समझा है। ज्ञान आत्मा से भी होता है और शरीर, इन्द्रियाँ, द्रव्यकर्म और शुभाशुभ भावो से भी होता है तो अनेकान्त को नही समझा।

प्रश्न ४८—निश्चय-व्यवहार के अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—(१) निश्चय निश्चय से है व्यवहार से नही है और व्यवहार व्यवहार से है निश्चय से नही है तो निश्चय-व्यवहार के अनेकान्त को समझा है। (२) निश्चय निश्चय से भी है व्यवहार से

भी है और व्यवहार व्यवहार से भी है निश्चय से भी है तो निश्चय-व्यवहार के अनेकान्त को नही समझा है।

प्रश्न ४९—उपादान-निमित्त के अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—(१) उपादान उपादान से निमित्त से नही है और निमित्त निमित्त से है उपादान से नही है तो उपादान-निमित्त के अनेकान्त को समझा है। (२) उपादान उपादान से भी है निमित्त से भी है और निमित्त निमित्त से भी है उपादान से भी है तो उपादान-निमित्त के अनेकान्त को नही समझा है।

प्रश्न ५०—कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपना कल्याण किया और साथ मे दूसरों का भी कल्याण किया—इसमे अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—(१) कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वय अपना कल्याण किया दूसरों का कल्याण नही किया तो अनेकान्त को समझा है। (२) कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वय अपना कल्याण किया और साथ मे दूसरो का भी कल्याण किया तो अनेकान्त को नही समझा।

प्रश्न ५१—मानतुंगाचार्य ने ४८ ताले तोड़े, इसमे अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—(१) ताले अपनी योग्यता से टूटे है मानतुगाचार्य से नही तो अनेकान्त को समझा है। (२) ताले अपनी योग्यता से भी टूटे है और मानतुगाचार्य से भी टूटे हैं तो अनेकान्त को नही समझा।

प्रश्न ५२—सीता के ब्रह्मचर्य से अग्नि शीतल हो गई—इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—प्रश्न ५० या ५१ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५३—मनोरमा के शील से दरवाजा खुल गया—इसमे अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—प्रश्न ५० या ५१ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५४—श्रीपाल के शरीर का कुष्ट रोग गन्दोदक से ठीक हुआ—इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नही समझा ?

उत्तर—प्रश्न ५० या ५१ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५५—विषापहार स्तोत्र के पढने से विष दूर हो गया—इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—प्रश्न ५० या ५१ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५६—कर्मों के अभाव से सिद्ध दशा की प्राप्ति हुई—इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—(१) सिद्धदशा की प्राप्ति १४वे गुणस्थान का अभाव करके आत्मा मे से हुई है कर्मों के अभाव से नही हुई है तो अनेकान्त को समझा है (२) सिद्धदशा की प्राप्ति १४वे गुणस्थान का अभाव करके आत्मा मे से भी हुई है और कर्मों के अभाव मे से भी हुई है तो अनेकान्त को नही समझा है।

प्रश्न ५७—दर्शनमोहनीय के अभाव से क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई—इसमे अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—५६वें प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५८—केवलज्ञान होने से केवल ज्ञानावरणीय कर्म का अभाव हुआ, इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—५६वें प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ५९—कुत्ता णमोकार मत्र सुनने से स्वर्ग में देव हुआ, इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—(१) कुत्ता शुभभाव से स्वर्ग मे देव हुआ णमोकार मत्र सुनने से नही हुआ तो अनेकान्त को समझा है। (२) कुत्ता शुभभाव से भी स्वर्ग मे देव हुआ और णमोकार मत्र सुनने से भी देव हुआ तो अनेकान्त को नही समझा।

प्रश्न ६०—कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार बनाया—इसमें नेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—५९व प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न ६१—(१) बाई ने रोटी बनाई, (२) मैंने दरी बिछाई, (३) मैंने रुपया कमाया, (४) मैंने किताब उठाई, (५) धर्मद्रव्य ने जीव-पुद्गल को चलाया, (६) अधर्मद्रव्य ने जीव-पुद्गल को ठहराया, (७) मैंने दांत साफ किये, (८) आकाश ने सब द्रव्यों को जगह दी, (९) कालद्रव्य ने सब द्रव्यो को परिणमाया, (१०) मैं रोटी खाता हूं, (११) बढई ने अलमारी बनाई, (१२) मैंने मकान बनाया, (१३) मैंने कपड़े धोये, (१४) इन्द्रभूति को समोशरण के देखते ही सम्यग्दर्शन हुआ आदि वाक्यो मे अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा?

उत्तर—(१) रोटी लोई का अभाव करके आटे मे से बनी है और बाई से नही बनी है तो अनेकान्त को ना समझा है। (२) रोटी लोई का अभाव करके आटे मे से बनी है और बाई से भी बनी है तो अनेकान्त को नही समझा है। इसी प्रकार बाकी १४ प्रश्नोत्तरो के उत्तर दो।

प्रश्न ६२—दर्शनावरणीय कर्म के अभाव से केवलदर्शन की प्राप्ति हुई—इस वाक्य मे अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा?

उत्तर—केवलदर्शन आत्मा के दर्शन गुण मे से अचक्षुदर्शन का अभाव करके उस समय पर्याय की योग्यता से हुआ है और दर्शनावरणीय कर्म के अभाव से तथा आत्मा के दर्शन गुण को छोडकर दूसरे गुणो से नही हुआ है तो अनेकान्त को समझा है। (२) केवलदर्शन आत्मा के दर्शन गुण मे से अचक्षुदर्शन का अभाव करके उस समय पर्याय की योग्यता से भी हुआ है और दर्शनावरणीय कर्म के अभाव से तथा आत्मा के दर्शन गुण को छोडकर दूसरे गुणो से भी हुआ है तो अनेकान्त को नही समझा है।

प्रश्न ६३—(१) अनन्तानुबधी क्रोधादि द्रव्यकर्म के अभाव से स्वरूपाचरण चारित्र की प्राप्ति हुई। (२)अन्तराय कर्म के अभाव से क्षायिक वीर्य की प्राप्ति हुई। (३) वेदनीय कर्म के अभाव से अव्या-

बाघ प्रतिजीवि गुण में शुद्धता प्रगटी। (४) आयुकर्म के अभाव से अवगाह प्रतिजीवी गुण में शुद्धता प्रगटी। (५) नामकर्म के अभाव से सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण में शुद्धता प्रगटी। इन छह वाक्यो में अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—६२वे प्रश्नोत्तर के अनुसार छहो प्रश्नो के उत्तर दो।

प्रश्न ६४—जो कोई भी पर्याय होती है भूतकाल-भविष्यत् काल की पर्यायो के सम्बन्ध से ही होती हैं—इस वाक्य में अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर—(१) जाति अपेक्षा छह द्रव्यो मे तथा प्रत्येक द्रव्य के गुणो मे जो भी पर्याय होती है वह उस समय पर्याय की योग्यता से ही होती है और भूतकाल-भविष्यत् काल की पर्यायो के सबध से नही होती है तो अनेकान्त को समझा है। (२) जाति अपेक्षा छह द्रव्यो मे तथा प्रत्येक द्रव्य मे गुणो मे जो भी पर्याय होती है, वह उस समय पर्याय की योग्यता से होती है और भूतकाल-भविष्यत् काल की पर्यायो से भी होती है तो अनेकान्त को नही समझा है।

प्रश्न ६५—व्रतादि मोक्षमार्ग है, इसमें सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त कैसे है ?

उत्तर—शुद्ध भाव मोक्षमार्ग है और व्रतादि मोक्षमार्ग नही है यह सच्चा अनेकान्त है। शुद्ध भाव भी मोक्षमार्ग है और शुभभाव भी मोक्षमार्ग है, यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न ६६—(१) शास्त्र से ज्ञान होता है। (१) दर्शनमोहनीय के उपशम से औपशमिक सम्यक्त्व होता है। (३) शुभभावो से धर्म होता है। (४) कुम्हार ने घड़ा बनाया। (५) धर्म द्रव्य ने मुझे चलाया। (६) कर्म मुझे चक्कर कटाते हैं। (७) शरीर ठीक रहे, तो आत्मा को सुख मिलता है। (८) सम्यग्दर्शन के कारण ज्ञान-चारित्र मे शुद्धि होती है। (९) केवलज्ञानावरणीय कर्म के अभाव से केवलज्ञान होता है। (१०) केवलज्ञान होने से केवलज्ञानावरणीय कर्म का अभाव

होता है। इन सब वाक्यों मे अनेकान्त को कब माना और कब नहीं माना, स्पष्ट खुलासा करो ?

उत्तर—(१) ज्ञान गुण से ज्ञान होता है और शास्त्र से नही होता है तो अनेकान्त को माना। (२) ज्ञान गुण से भी ज्ञान होता है और शास्त्र से भी होता है तो अनेकान्त को नही माना। इसी प्रकार बाकी नौ प्रश्नो के उत्तर दो।

प्रश्न ६७—सच्चे अनेकान्त के जानने वाले को कैसे-कैसे प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं ?

उत्तर—(१) मैं किसी का भला-बुरा कर दूं। (२) मेरा कोई भला-बुरा कर दे, (३) शरीर की क्रिया से धर्म होगा, (४) शुभभाव से धर्म होगा या शुभभाव करते-करते धर्म होगा, (५) निमित्त से उपादान मे कार्य होता है, (६) एक गुण का कार्य दूसरे गुण से होता है, (७) एक पर्याय दूसरो पर्याय मे कुछ करे, आदि प्रश्न सच्चे अनेकान्ती को नही उठते हैं; क्योकि वह जानता है कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। एक गुण का दूसरे गुण से तथा एक पर्याय का दूसरी पर्याय से कुछ सम्बन्ध नही है, इसलिए सच्चे अनेकान्ती को ऐसे प्रश्न नही उठते हैं।

प्रश्न ६८—मिथ्यादृष्टि को कैसे-कैसे प्रश्न उठते हैं ?

उत्तर—(१) मैं दूसरो का भला-बुरा या दूसरे मेरा भला-बुरा कर सकते हैं; (२) शरीर मेरा है, (३) शरीर का कार्य मैं कर सकता हूँ, (४) निमित्त से उपादान मे कार्य होता है, (५) शुभभावो से धर्म होता है आदि खोटे प्रश्न उपस्थित होते हैं, क्योकि वह स्याद्वाद-अनेकान्त का रहस्य नही जानता है।

प्रश्न ६९—स्व से अस्ति और पर से नास्ति क्या बताता है ?

उत्तर—मैं अपने स्वभाव से हूँ और पर से नही हूँ ऐसा अनेकान्त बताता है।

प्रश्न ७०—मैं अपने स्वभाव से हूँ और पर से नहीं हूं "पर मे" क्या-क्या आया ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ, (२) आँख-नाक-कान आदि औदारिक शरीर, (३) तैजस कार्माणशरीर, (४) भाषा और मन, (५) शुभाशुभ भाव, (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय का पक्ष, (७) भेदनय का पक्ष, (८) अभेदनय का पक्ष, (९) भेदाभेद नय का पक्ष; यह सब पर मे आते है।

प्रश्न ७१—मैं अपने स्वभाव से हूँ और पर से नहीं हूँ—इसको जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—मैं अपने स्वभाव से हूँ और पर से नही हूँ। ऐसा निर्णय करते ही अनादिकाल से जो पर मे कर्ता-भोक्ता की बुद्धि थी, उसका अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रम से अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति हो जाती है और स्याद्वाद अनेकान्त का मर्मी बन जाता है।

प्रश्न ७२—अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति किसको है और अनन्त चतुष्टय क्या है ?

उत्तर—अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति अर्हंत भगवान को हुई है और अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य यह चार अनन्त-चतुष्ट्य कहलाते हैं।

प्रश्न ७३—भगवान को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति कैसे हुई ?

उत्तर—भगवान ने अपने स्वचतुष्ट्य की ओर दृष्टि दी, तो उनको अनन्तचतुष्ट्य की प्राप्ति हुई।

प्रश्न ७४—भगवान ने कैसे स्वचतुष्टय की ओर दृष्टि दी तो उनको अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई ?

उत्तर—"(१) स्वद्रव्य=निर्विकल्प 'मात्र वस्तु। परद्रव्य= सविकल्प भेद करना। (२) स्वक्षेत्र=आधारमात्र वस्तु का प्रदेश। परक्षेत्र=जो वस्तु का आधारभूत प्रदेश निर्विकल्प वस्तु मात्र रूप से कहा था वही प्रदेश सविकल्प भेद कल्पना से परप्रदेश बुद्धि गोचर रूप

से कहा जाता है। (३) स्वकाल=वस्तु मात्र की मूल अवस्था। पर-काल=द्रव्य की मूल की निर्विकल्प अवस्था, वही अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना से पर काल कहा जाता है। (४) स्वभाव=वस्तु की मूल की सहज शक्ति। परभाव=द्रव्य की सहज शक्ति के पर्याय रूप (भेदरूप) अनेक अंश द्वारा भेद कल्पना, उसे परभाव कहा जाता है।" इस प्रकार स्व के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की ओर दृष्टि करने से पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की ओर दृष्टि ना करने से भगवान को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई। [समयसार कलश २५२]

प्रश्न ७५—हमें अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति कैसे होवे ?

उत्तर—जैसे—भगवान ने किया और वैसा ही उपदेश दिया है। जो जीव भगवान के कहे अनुसार चलता है उसे अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती है।

प्रश्न ७६—स्वचतुष्टय, परचतुष्टय कितने द्रव्यो में पाया जाता है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे पाया जाता है।

प्रश्न ७७—जो मूढ मिथ्यादृष्टि हैं वह कैसा भेद विज्ञान करे, तो अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हो ?

उत्तर—(१) मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरा स्वद्रव्य, इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यो के गुण-पर्यायो के पिण्ड परद्रव्य है। (२) मेरा असख्यात प्रदेशी आत्मा स्वक्षेत्र है, इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यो का क्षेत्र पर-क्षेत्र है। (३) मेरी पर्यायो का पिण्ड स्वकाल है, इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यो की पर्यायो का पिण्ड परकाल है। (४) मेरे अनन्त गुण मेरा स्वभाव है, इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यो के अनन्त गुण पर भाव हैं पात्र जीव को प्रथम प्रकार का भेद विज्ञान करने से अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति का अवकाश है।

प्रश्न ७८—दूसरे प्रकार का भेदविज्ञान क्या है ?

उत्तर—(१) मेरे गुण-पर्यायो का पिण्ड स्वद्रव्य है, इसकी अपेक्षा

गुण-पर्यायो का भेद परद्रव्य है। (२) असख्यातप्रदेशी क्षेत्र मेरा स्वक्षेत्र है, इसकी अपेक्षा प्रदेश भेद परक्षेत्र है। (३) कारण शुद्ध पर्याय मेरा स्वकाल है, इसकी अपेक्षा पर्याय का भेद परकाल है। (४) अभेद गुणो का पिण्ड स्वभाव है, इसकी अपेक्षा ज्ञान-दर्शन का भेद परभाव है। पात्र जीव को दूसरे प्रकार का भेद विज्ञान करने से अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति का अवकाश है।

प्रश्न ७९—तीसरे प्रकार का भेदविज्ञान क्या है ?

उत्तर—(१) अनन्त गुण पर्यायो का पिण्डरूप अभेद द्रव्य मैं हूँ ऐसा विकल्प परद्रव्य है, की अपेक्षा 'है सो है' वह स्वद्रव्य है। (२) असख्यात प्रदेशी अभेद क्षेत्र का विकल्प परक्षेत्र है, इसकी अपेक्षा 'जो क्षेत्र है सो है' जिसमे विकल्प का भी प्रवेश नही, वह स्वक्षेत्र है। (३) कारण शुद्ध पर्याय 'अभेद मै' यह विकल्प परकाल है, इसकी अपेक्षा 'जो है सो है' जिसमे विकल्प भी नही है वह स्वकाल है। (४) अभेद गुणो के पिण्ड का विकल्प परभाव है, इसकी अपेक्षा जिसमे गुणो का विकल्प भी नही है 'वह स्वभाव' है। पात्र जीवो को तीसरे प्रकार के भेद विज्ञान से अनन्तचतुष्ट्य की प्राप्ति नियम से होती है।

प्रश्न ८०—जैसा आपने तीन प्रकार का भेदविज्ञान बताया है ऐसा तो हमने हजारो बार किया है परन्तु हमे अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति क्यो नहीं हुई ?

उत्तर—वास्तव मे इस जीव ने एक बार भी भेदविज्ञान नही किया है, क्योकि अनुभव होने पर भूत नैगमनय से तीन प्रकार का भेद-विज्ञान किया, तब उपचार नाम पाता है, क्योकि अनुपचार हुए बिना उपचार नाम नही पाता है।

प्रश्न ८१—अस्ति-नास्ति अनेकान्त को वास्तव मे कब समझा कहा जा सकता है ?

उत्तर—अपने आत्मा का अनुभव होने पर अस्ति-नास्ति का अनेकान्त समझा कहा जा सकता है।

प्रश्न ८२—११अंग ६ पूर्व का पाठी द्रव्यलिंगी मुनि भी क्या अस्ति-नास्ति का भेद विज्ञानी नहीं कहा जा सकता है ?

उत्तर—बिल्कुल नही कहा जा सकता, क्योकि अपना अनुभव होने पर ही भेद विज्ञानी नाम पाता है।

प्रश्न ८३—'अस्ति' मे कौन आया ?

उत्तर—अपना परम पारिणामिक भाव ज्ञायक स्वभाव 'अस्ति मे' आया। वह भी अस्ति मे कब आया ? जब अपने अभेद के आश्रय से निर्विकल्पता हुई, तब।

प्रश्न ८४—मोटे रूप से 'नास्ति' मे कौन-कौन आया ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ। (२) आँख-नाक-कान रूप औदारिकशरीर। (३) तैजस-कार्माणशरीर। (४) भाषा और मन (५) शुभाशुभ भाव (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायो का पक्ष। (७) भेद नय का पक्ष। (८) अभेद नय का पक्ष। (९) भेदाभेद नय का पक्ष।

प्रश्न ८५—द्रव्य से अस्ति-नास्ति क्या है ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव से ही सामान्य-विशेषरूप है। उसे सामान्य-रूप से देखना, अस्ति है। भेदरूप, विशेषरूप, देखना, नास्तिरूप है। प्रदेश दोनो के एक ही है।

प्रश्न ८६—द्रव्य से अस्ति-नास्ति जानने क्या लाभ है ?

उत्तर—विशेष को गौण करके अपने सामान्य अस्ति की ओर दृष्टि करे तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो—यह 'अस्ति-नास्ति' जानने से लाभ हुआ।

प्रश्न ८७—क्षेत्र से 'अस्ति-नास्ति क्या है ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव से देश-देशाश रूप है। देश दृष्टि से देखना सामान्य दृष्टि है इससे वस्तु मे भेद नही दिखाता है। देशांशदृष्टि से देखना विशेषदृष्टि है। इस प्रकार सामान्यदृष्टि क्षेत्र से अस्ति और विशेषदृष्टि क्षेत्र से नास्ति है।

प्रश्न ८८—'क्षेत्र से' अस्ति-नास्ति जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—क्षेत्र से नास्ति की दृष्टि गौण करके सामान्य क्षेत्र के अस्ति पर दृष्टि करे तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो—यह क्षेत्र से 'अस्ति-नास्ति' जानने का लाभ है।

प्रश्न ८९—'काल से' अस्ति नास्ति क्या है ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव से ही काल-कालाश रूप है। काल से देखना सामान्यदृष्टि और कालाशदृष्टि से देखना विशेष-दृष्टि है। इस प्रकार सामान्यदृष्टि काल से अस्ति है और विशेषदृष्टि काल से नास्ति है।

प्रश्न ९०—'काल से' अस्ति-नास्ति जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—विशेपदृष्टि कालाश को गौण करके, सामान्यदृष्टि काल पर दृष्टि करे, तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो, यह काल से अस्ति-नास्ति जानने का लाभ हुआ।

प्रश्न ९१—'भाव से' अस्ति-नास्ति क्या है ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव से ही भाव-भावाश रूप है। भाव की दृष्टि से देखना सामान्यदृष्टि और भावाश की दृष्टि से देखना विशेषदृष्टि है। इस प्रकार भाव से सामान्यदृष्टि भाव से अस्ति है और भावाश विशेष दृष्टि भाव से नास्ति है।

प्रश्न ९२—'भाव से' अस्ति-नास्ति जानने का क्या फल है ?

उत्तर—भाव से नास्ति की दृष्टि को गौण करके, सामान्य अस्ति की ओर दृष्टि करे, तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो, यह भाव से अस्ति-नास्ति जानने का फल है।

प्रश्न ९३—वस्तु अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है और पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से नहीं है, इस बात का सार क्या है ?

उत्तर—वस्तु सत् सामान्य की दृष्टि से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से हर प्रकार अखण्ड है। और वही वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अशो मे विभाजित हो जाती है इसलिए खडरूप है। वस्तु के दोनो रूप हैं। वस्तु सारी की सारी जिस रूप मे देखना हो उसे मुख्य और दूसरी को गौण कहते है। वस्तु के (आत्मा के, क्योकि तात्पर्य हमें

आत्मा से है) दोनो पहलू को जानकर सामान्य पहलू की ओर दृष्टि करने से जन्म-मरण का अभाव हो जाता है। ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति हुई, तो अस्ति-नास्ति का ज्ञान सच्चा है अन्यथा झूठा है।

प्रश्न ९४—अस्ति-नास्ति का ज्ञान किसको है और किसको नहीं है ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान से सब ज्ञानियो को है। और निगोद से लगाकर द्रव्यलिंगी मुनि तक को अस्ति-नास्ति का ज्ञान नही है।

प्रश्न ९५—नित्य-अनित्य का रहस्य क्या है ?

उत्तर—(१) वस्तु जैसे स्वभावत स्वतः सिद्ध है, वैसे ही वह स्वभाव से परिणमन शील भी है। (२) स्वत स्वभाव के कारण उस मे नित्यपना है और परिणमन स्वभाव के कारण उसमे अनित्यपना है। (३) नित्य-अनित्यपना दोनो एक समय मे ही होते हैं। (४) पात्र जीव अनित्य पर्याय को गौण करके नित्य स्वभाव की ओर दृष्टि कर के जन्म-मरण के दुख का अभाव करे। यह नित्य-अनित्य के जानने का रहस्य है।

प्रश्न ९६—नित्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय पर दृष्टि ना देकर, जब द्रव्यदृष्टि से केवल अविनाशी त्रिकाली स्वभाव को देखा जाता है, तो वस्तु नित्य प्रतीत होती है।

प्रश्न ९७—नित्य स्वभाव की सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर—'यह वही है' इस प्रत्यभिज्ञान से इसकी सिद्धि होती है। जैसे—जो मारीच था वह ही शेर था, वह ही नन्दराजा था, और वह ही महावीर बना, "यह तो वही है" इससे नित्य स्वभाव का पता चलता है।

प्रश्न ९८—अनित्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रिकाली स्वत सिद्ध स्वभाव पर दृष्टि ना देकर, जब

पर्याय से मात्र क्षणिक अवस्था देखी जाती है, तो वस्तु अनित्य प्रतीत होती है।

प्रश्न ९९—अनित्य की सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर—"'यह वह नही है" इस ज्ञान से इसकी सिद्धि होती है, जैसे—जो मारीच है वह शेर नही, जो शेर है वह महावीर नही, इससे अनित्य की सिद्धि होती है।

प्रश्न १००—आत्मा नित्य भो है और अनित्य भी है इसमें अनेकान्त किस प्रकार है ?

उत्तर—आत्मा द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य है और आत्मा पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।

प्रश्न १०१—नित्य-अनित्य मे अनेकान्त कहाँ आया ?

उत्तर—आत्मा द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य ही है अनित्य नही है यह अनेकान्त है और आत्मा पर्याय की अपेक्षा अनित्य ही हैं नित्य नही है यह अनेकान्त है।

प्रश्न १०२—कोई कहे आत्मा द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य भी है और अनित्य भी है ?

उत्तर—यह मिथ्याअनेकान्त है।

प्रश्न १०३—कोई कहे आत्मा पर्याय को अपेक्षा अनित्य भी है और नित्य भी है ?

उत्तर—यह मिथ्याअनेकान्त है।

प्रश्न १०४—नित्य-अनित्यपना किसमें होता है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य गुण मे अनादिअनन्त नित्य-अनित्यपना होता है।

प्रश्न १०५—नित्य-अनित्य पर तीनों प्रकार के भेद विज्ञान लगा कर समझाइये ?

उत्तर—७७-७८-७९ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १०६—नित्य-अनित्य अनेकान्त को समझने से क्या लाभ है ?

उत्तर—मेरा आत्मा नित्य है बाकी सब पर अनित्य है ऐसा जानकर अपने नित्य त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति होना, यह नित्य-अनित्य को समझने का लाभ है। अत अनित्य को गौण करके नित्य स्वभाव का आश्रय लेना पात्र जीवो का परम कर्तव्य है।

प्रश्न १०७—मेरा आत्मा नित्य है और पर अनित्य है तो 'पर में' कौन-कौन आता है ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ अनित्य है। (२) आँख, नाक, कान आदि औदारिकशरीर अनित्य है (३) तैजस-कार्माण शरीर अनित्य है। (४) भाषा और मन अनित्य हैं। (५) शुभाशुभ भाव अनित्य है। (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय का पक्ष अनित्य है। (७) भेद नय का पक्ष अनित्य है। (८) अभेद नय का पक्ष अनित्य है। (९) भेदाभेद नय का पक्ष अनित्य है।

प्रश्न १०८—मेरी आत्मा ही नित्य है और नौ बोल तक सब अनित्य है इसको जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—अपने नित्य ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रम से वृद्धि करके पूर्ण सिद्ध दशा की प्राप्ति होती है। और नौ नम्बर तक जो अनित्य है, उनसे लाभ-नुकसान माने तो चारो गतियो मे फिर कर निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १०९—सर्वथा नित्य पक्ष के मानने में क्या नुकसान है ?

उत्तर—सत् को सर्वथा नित्य मानने मे परिणति का अभाव हो जावेगा। (२) परिणति के अभाव मे तत्व, क्रिया, फल, कारक, कारण, कार्य कुछ भी नही बनेगा।

प्रश्न ११०—सर्वथा—नित्य पक्ष मानने से 'तत्त्व' किस प्रकार नहीं बनेगा ?

उत्तर—(१) परिणाम सत् की अवस्था है और आप परिणाम का

अभाव मानते हो तो परिणाम के अभाव मे परिणामी (द्रव्य) का अभाव स्वय सिद्ध है। (२) व्यतिरेक के अभाव मे अन्वय (द्रव्य) अपनी रक्षा नही कर सकता। इस प्रकार "तत्त्व" के अभाव का प्रसग उपस्थित होवेगा।

प्रश्न १११—सर्वथा नित्य पक्ष मानने से क्रिया-फल आदि किस प्रकार नहीं बनेंगे ?

उत्तर—आप तो वस्तु को सर्वथा कूटस्थ मानते हो। क्रिया-फल कार्य आदि तो सब पर्याय मे होते हैं, पर्याय की आप नास्ति मानते हो। इसलिए सर्वथा नित्य पक्ष मानने से क्रिया-फल आदि नही बनने का प्रसग उपस्थित होवेगा।

प्रश्न ११२—सर्वथा नित्य पक्ष मानने से 'तत्त्व और क्रिया' दोनों कैसे नहीं बन सकेंगे ?

उत्तर—(१) मोक्ष का साधन जो सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव है वह परिणाम है। उन शुद्ध भावो का फल मोक्ष है और मोक्ष भी निराकुलतारूप, सुख रूप परिणाम है। (२) मोक्षमार्ग साधन और मोक्ष साध्यरूप यह दोनो परिणाम हैं और परिणाम आप मानते नही हो। (३) क्रिया के अभाव होने का प्रसग उपस्थित हो गया, क्योकि क्रिया पर्याय मे होती है। (४) मोक्षमार्ग और मोक्षरूप परिणाम का कर्ता साधक आत्म-द्रव्य है वह (आत्मा) विशेष के बिना सामान्य भी नही बनेगा। (५) इस प्रकार तत्त्व का अभाव ठहरता है अर्थात् कर्ता, कर्म, क्रिया कोई भी कारक नही बनता है।

प्रश्न ११३—सर्वथा अनित्य पक्ष मानने में क्या नुकसान है ?

उत्तर—(१) सत् को सर्वथा अनित्य मानने वालो के यहाँ सत् तो पहले ही नाश हो जावेगा फिर प्रमाण और प्रमाण का फल नही बनेगा। (२) जिस समय वे सत् को अनित्य सिद्ध करने के लिए अनुमान प्रयोग मे यह प्रतिज्ञा बोलेगे कि "जो सत् है वह अनित्य है" तो यह कहना तो स्वय उनकी पकड़ का कारण हो जावेगा, क्योकि

सत् तो है ही नही फिर "जो सत् है वह" यह शब्द कैसा ? (३) सत् को नही मानने वाला उसका अभाव कैसे सिद्ध करेगे अर्थात् नही कर सकेंगे। (४) सत् को नित्य सिद्ध करने मे जो प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है वह तो क्षणिक एकान्त (सर्वथा) का बाधक है। (५) वस्तु के अभाव मे परिणाम किसका। इसलिए नित्य के अभाव मे अनित्य तो गधे के सीग के समान है।

प्रश्न ११४—नित्य-अनित्य के सम्बन्ध में क्या रहा ?

उत्तर—द्रव्य और पर्याय दोनो को मानना चाहिए, क्योकि पर्याय अनित्य है उसे गौण करके द्रव्य नित्य है उसका आश्रय लेकर धर्म को शुरूआत करके क्रम से पूर्णता की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ११५—अनेकान्त वस्तु को नित्य-अनित्य बताने से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—आत्मा स्वय नित्य है और स्वय ही पर्याय से अनित्य है, उसमे जिस ओर की रुचि, उस ओर का परिणाम होता है। नित्य वस्तु की रुचि करे, तो नित्य स्थायी ऐसी वीतरागता की प्राप्ति होती है। और अनित्य पर्याय की रुचि करे, तो क्षणिक राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न ११६—तत्-अतत् में किस बात का विचार किया जाता है ?

उत्तर—नित्य-अनित्य मे बतलाये हुए परिणमन स्वभाव के कारण वस्तु मे जो समय-समय का परिणाम उत्पन्न होता है वह परिणाम सदृश है या विसदृश है इसका विचार तत्-अतत् मे किया जाता है।

प्रश्न ११७—तत् किसे कहते हैं ?

उत्तर—परिणमन करती हुई वस्तु "वही की वही है, दूसरो नही" इसे तत्भाव कहते हैं।

प्रश्न ११८—अतत् किसे कहते हैं ?

उत्तर—परिणमन करती हुई वस्तु समय-समय मे नई-नई उत्पन्न

हो रही हैं। 'वह की वह नही है' इसको अतत् भाव कहते हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक समय का सत् ही भिन्न-भिन्न रूप हैं।

प्रश्न ११९—तत् धर्म से क्या लाभ है ?

उत्तर—इससे तत्त्व की सिद्धि होती है।

प्रश्न १२०—अतत् धर्म से क्या लाभ है ?

उत्तर—इससे क्रिया, फल, कारक, साधन, साध्य, कारण-कार्य आदि भावो की सिद्धि होती है।

प्रश्न १२१—तत्-अतत् का अनेकान्त क्या है ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु मे वस्तुपने की सिद्धि करने वाली तत्-अतत् आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियो का एक ही साथ प्रकाशित होना उसे अनेकान्त कहते हैं।

प्रश्न १२२—आत्मा में तत्-अतत्पना क्या है ?

उत्तर—आत्मा 'वह का वही है' यह तत्पना है और बदलते-बदलते 'यह वह नही है' यह अतत्पना है।

प्रश्न १२३—तत्-अतत् में तीनो प्रकार के भेद विज्ञान लगाकर समझाइये ?

उत्तर—७७-७८-७९ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १२४—आत्मा तत्रूप से है अतत्रूप से नहीं, इसको जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—आत्मा मे तत्-अतत्पना दोनो धर्म पाये जाते हैं। अतत्पने को गौण करके तत् धर्म की ओर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रम से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १२५—'अतत्' में कौन-कौन आता है ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ अतत् हैं। (२) आँख-नाक-कान औदारिकशरीर अतत् है। (३) तैजस, कार्माणशरीर अतत् है। (४) शब्द और मन अतत् है। (५) शुभाशुभ भाव अतत् है। (६) पूर्ण-अपूर्ण शुद्ध पर्याय का पक्ष अतत् है। (७) भेद नय का पक्ष

अतत् है। (८) अभेद नय का पक्ष अतत् है। (९) भेदाभेद नय का पक्ष अतत् है। (१०) ज्ञान की पर्याय अतत् है। एक मात्र अपना त्रिकाली आत्मा 'वह का वह' तत् है। इस पर दृष्टि देते ही अपने भगवान का पता चल जाता है और क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जाता है। अतत् से मेरा भला है या बुरा है ऐसी मान्यता से चारों गतियो मे घूमकर निगोद का पात्र बन जाता है।

प्रश्न १२६—एक-अनेकपना क्या है ?

उत्तर—अखण्ड सामान्य की अपेक्षा से द्रव्य सत् एक है और अवयवो की अपेक्षा से द्रव्य सत् अनेक भी है।

प्रश्न १२७—सत् एक है इसमे क्या युक्ति है ?

उत्तर—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से, गुण पर्याय का या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अशो का अभिन्न प्रदेशी होने से सत् एक है; इसलिए अखण्ड सामान्य की अपेक्षा से सत् एक है।

प्रश्न १२८—द्रव्य से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—गुण पर्यायो का एक तन्मय पिण्ड द्रव्य एक है, इसलिए द्रव्य से सत् एक है।

प्रश्न १२९—क्षेत्र से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—जिस समय जिस द्रव्य के एक देश मे, जितना जो सत् स्थित है, उसी समय उसी द्रव्य के सब देशो मे (क्षेत्रो मे) भी उतना वही वैसा ही सत् स्थित है। इस अपेक्षा सत् क्षेत्र से एक है।

प्रश्न १३०—काल से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—एक समय मे रहने वाला जो जितना और जिस प्रकार का सम्पूर्ण सत् है वही, उतना और उसी प्रकार का सम्पूर्ण सत् सब समयो मे भी है, वह सदा अखण्ड है। इस अपेक्षा सत् काल से एक है।

प्रश्न १३१—भाव से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—सत् सब गुणो का तादात्म्य एक पिण्ड है। गुणो के अतिरिक्त उसमे और कुछ है ही नही। किसी एक गुण की अपेक्षा

जितना सत् है, प्रत्येक गुण की अपेक्षा भी वह उतना ही है। समस्त गुणो की अपेक्षा भी वह उतना ही है। इस अपेक्षा सत् भाव मे एक है।

प्रश्न १३२—सत् के अनेक होने मे क्या युक्ति है ?

उत्तर—व्यतिरेक बिना अन्वय पक्ष नही रह सकता अर्थात् अवयवो के अभाव मे अवयवी का भी अभाव ठहरता है। अत अवयवो की अपेक्षा से सत् अनेक भी है।

प्रश्न १३३—द्रव्य से सत् अनेक कैसे हैं ?

उत्तर—गुण अपने लक्षण से है पर्याय अपने लक्षण से है। प्रत्येक अवयव अपने-अपने लक्षण से भिन्न-भिन्न है, प्रदेशभेद नही है, अत सत् द्रव्य से अनेक है।

प्रश्न १३४—क्षेत्र से सत् 'अनेक' कैसे हैं ?

उत्तर- प्रत्येक देशाश का सत् भिन्न-भिन्न है। इस अपेक्षा क्षेत्र से अनेक भी है, सर्वथा नही है।

प्रश्न १३५—काल से सत 'अनेक' कैसे हैं ?

उत्तर—पर्याय दृष्टि से प्रत्येक काल (पर्याय) का सत् भिन्न-भिन्न है। इस प्रकार सत् काल की अपेक्षा अनेक है।

प्रश्न १३६—भाव की अपेक्षा सत् 'अनेक' कैसे हैं ?

उत्तर—प्रत्येक भाव (गुण) अपने-अपने लक्षण से भिन्न-भिन्न हैं प्रदेश भेद नही है। इस प्रकार सत् भाव की अपेक्षा अनेक है।

प्रश्न १३७—एक-अनेक पर अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर—आत्मा द्रव्य की अपेक्षा एक है अनेक नही है, यह अनेकान्त हैं। और आत्मा गुण-पर्यायो की अपेक्षा अनेक है एक नही है, यह अनेकान्त है।

प्रश्न १३८—आत्मा द्रव्य की अपेक्षा एक भी है और अनेक भी है क्या यह अनेकान्त नहीं है ?

उत्तर—यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न १३९—द्रव्य गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक भी है और एक भी है, क्या यह अनेकान्त है ?

उत्तर—यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न १४०—एक-अनेक मे तीनो प्रकार के भेद विज्ञान समझाइये ?

उत्तर—७७, ७८, ७९ प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १४१—एक-अनेक को जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—गुण और पर्यायो मे जो अनेकपना है उसे गौण करके एक अभेद का आश्रय ले, तो तुरन्त सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है और क्रम से निर्वाण की ओर गमन होता है।

प्रश्न १४२—अनेकपने मे क्या-क्या आता है, जिसकी ओर दृष्टि करने से चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना पडता है ?

उत्तर—अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ अनेक है। (१) आँख, नाक, कान, औदारिकशरीर अनेक है। (३) तैजस, कार्माण शरीर अनेक हैं। (४) भाषा और मन अनेक है। (५) शुभाशुभ भाव अनेक हैं। (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय का पक्ष अनेक हैं। (७) भेद नय का पक्ष अनेक है। (८) अभेद नय का पक्ष अनेक है। (९) भेदाभेद नय का पक्ष अनेक है। (१०) गुणभेद अनेक है। इसलिए अनेक की ओर दृष्टि करने से मेरा भला है या बुरा है, ऐसी मान्यता चारो गतियो मे घुमाकर निगोद मे ले जाती है। और इन सबसे दृष्टि उठाकर एक अभेद भगवान ज्ञायक पर दृष्टि देने से धर्म की प्राप्ति होकर क्रम से सिद्ध बन जाता है।

प्रश्न १४३—स्याद्वाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के अनेकान्त स्वरूप को समझाने वाली सापेक्ष कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न १४४—स्याद्वाद का अर्थ क्या है ?

उत्तर—स्यात् =कथचित किसी प्रकार से, किसी सम्यक् अपेक्षा से, वाद = कथन करना।

प्रश्न १४५—स्यादवाद कैसा है ?

उत्तर—अनन्त धर्मों वाला द्रव्य है। उसे एक-एक धर्म का ज्ञान करके विवक्षित (मुख्य) अविवक्षित (गौण) की विधि निषेध द्वारा प्रगट होने वाली सप्तभगी सतत् सम्यक् प्रकार से कथन किये जाने वाले "स्यात्" कार रूपी अमोघ मत्र द्वारा "ही" मे भरे हुए सर्व विविध विपय के मोह को दूर करता है।

प्रश्न १४६—स्याद्वाद को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर—एक ही पदार्थ कथचित् स्वचतुष्टय की अपेक्षा से अस्ति रूप है। कथचित् परचतुष्टय की अपेक्षा से नास्तिरूप है। कथचित् समुदाय की अपेक्षा से एकरूप है। कथचित् गुण—पर्याय की अपेक्षा से अनेकरूप है। कथचित् सत् की अपेक्षा से अभेदरूप है। कथचित् द्रव्य अपेक्षा से नित्य है। कथचित् पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। कथचित् नय अपेक्षा से वस्तु स्वभाव का कथन करना उसे स्याद्वाद कहते है।

प्रश्न १४७—स्यात्-पद क्या बताता है और क्या नहीं बताता है ?

उत्तर—स्यात्-पद अविवक्षित धर्मों का गौणपना वताता है, परन्तु अविवक्षित धर्मों का अभाव करना नही बताता है।

प्रश्न १४८—स्याद्वाद और अनेकान्त मे कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर—द्योत्य-द्योतक सम्बन्ध है, वाच्य-वाचक सम्बन्ध नही है।

प्रश्न १४९—वाच्य-वाचक सम्बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—जैसा शब्द हो, वैसा ही पदार्थ हो उसे वाच्य-वाचक सम्बन्ध कहते हैं। जैसे—शक्कर शब्द हुआ यह वाचक है, शक्कर पदार्थ वाच्य है। और जैसे—गुरु ने कहा आत्मा तो यह वाचक है और आत्मा पदार्थ दृष्टि मे आवे वह वाच्य है।

प्रश्न १५०—द्योत्य-द्योतक सम्बन्ध किसमें होता है ?

उत्तर—स्याद्वाद और अनेकान्त मे होता है। स्याद्वाद = द्योतक

वतलाने वाला है। और अनेकान्त=वस्तु स्वरूप है द्योत्य है, बताने योग्य है।

प्रश्न १५१—द्योत्य और द्योतक सम्बन्ध समझ में नहीं आया कृपया जरा स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर—आत्मा स्व की अपेक्षा से अस्ति है और पर की अपेक्षा से नास्ति है। यह अस्ति-नास्ति दोनो धर्म एक साथ पाये जाते हैं परन्तु कथन दोनो का एक साथ नही हो सकता है। जैसे आत्मा स्व की अपेक्षा से है ऐसा कथन किया, वहाँ आत्मा पर की अपेक्षा नही है यह नही कहा गया, परन्तु गौण हो गया—ऐसी कथन शैली को स्याद्वाद कहते है, इसलिए अनेकान्त को द्योत्य और स्याद्वाद को द्योतक कहते हैं।

प्रश्न १५२—द्योत्य-द्योतक सम्बन्ध कब है ?

उत्तर—वस्तु मे अनेक धर्म है। जब एक धर्म का कथन किया जावे, दूसरा धर्म गौण होवे तब द्योत्य-द्योतक सम्बन्ध है।

प्रश्न १५३—सप्तभंगी कैसे प्रगट होती है ?

उत्तर—जिसका कथन करना है उस धर्म को मुख्य करके उसका कथन करने से और जिसका कथन नही करना है उस धर्म को गौण करके उसका निषेध करने से सप्तभगी प्रगट होती है।

प्रश्न १५४—सप्तभगी कितने प्रकार की है ?

उत्तर—दो प्रकार की है। नय सप्तभगी और प्रमाण सप्तभगी।

प्रश्न १५५—नय सप्तभंगी और प्रमाण सप्तभंगी किसे कहते हैं और इनका वर्णन कहाँ किया है ?

उत्तर—वक्ता के अभिप्राय को एक धर्म द्वारा कथन करके वताना हो तो उसे नय सप्तभगी कहते हैं। और वक्ता के अभिप्राय को सारे वस्तु स्वरूप द्वारा कथन करके वताना हो तो प्रमाण सप्तभगी कहते है। प्रवचनसार मे नय सप्तभगी का और पचास्तिकाय मे प्रमाण सप्तभगी का कथन किया है।

प्रश्न १५६—सामान्य और विशेष को जानने से दुख कैसे मिटे और सुख कैसे प्रगटे ?

उत्तर—(१) वस्तु मे नित्य धर्म है जिसके कारण वस्तु अवस्थित है। इस धर्म को जानने से पता चलता है कि द्रव्य रूप से मोक्ष आत्मा मे वर्तमान मे विद्यमान ही है, तो फिर उसका आश्रय करके कैसे प्रगट नही किया जा सकता ? अर्थात् किया जा सकता है। (२) अनित्य धर्म से पता चलता है कि पर्याय मे मिथ्यात्व है, राग है, द्वेष है, दुख है। साथ ही यह पता चल जाता है कि परिणमन स्वभाव द्वारा वदल कर सम्यक्त्व, वीतरागता और सुखरूप परिवर्तित किया जा सकता है। (३) भव्य जीव नित्य स्वभाव का आश्रय करके पर्याय के दुख को सुख मे वदल देता है। इसलिए सामान्य और विशेप को जानने से दुख का अभाव और सुख की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १५७—कोई वस्तु को सर्वथा नित्य ही मान ले तो क्या नुकसान होगा ?

उत्तर—निश्चयभापी वन जावेगा।

प्रश्न १५८—कोई वस्तु को सर्वथा अनित्य ही मान ले तो क्या नुकसान होगा ?

उत्तर—मूलतत्व ही जाता रहेगा और बौद्धमत का प्रसग वनेगा।

प्रश्न १५९—नित्य-अनित्य को जानकर पात्र जीव को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—सामान्य-विशेप दोनो को जान कर पर्याय को गौण करके द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेकर धर्म प्रगट करना पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न १६०—क्या प्रमाण सप्तभगी को जानने से कल्याण नहीं होता है ?

उत्तर—अवश्य होता है।

प्रश्न १६१—प्रमाण सप्तभगी को जानने से कल्याण कैसे होता है ?

उत्तर—[अ] (१) मेरी आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मे अस्ति है। (२) मेरी आत्मा तत् है। (३) मेरी आत्मा नित्य है। (४) मेरी आत्मा एक है। [आ] (१) मेरी आत्मा की अपेक्षा वाकी वचे हुए अनन्त आत्मा, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक प्रमाण असख्यात कालद्रव्य-पर द्रव्य-क्षेत्र, काल, भाव नास्ति है। (२) सव पर अतत् है। (३) सव पर अनित्य है। (४) सव पर अनेक है। ऐसा जानते ही दृष्टि एकमात्र अपने स्वभाव पर आ जाती है ऐसा ज्ञानी मानते है, क्योकि जब पर की ओर देखना नही रहा तो पर्याय मे राग-द्वेष भी उत्पन्न नही होगा। दृष्टि एकमात्र स्वभाव पर होने से धर्म की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रथम प्रकार के भेद विज्ञान मे पर्याय का भी भेद विज्ञान आ जाता है ऐसा ज्ञानी जानते हैं मिथ्यादृष्टि नही जानते है। इस प्रकार पात्र जीव प्रमाण सप्तभगी को जानने से धर्म की प्राप्ति करके क्रम से निर्वाण का पात्र वन जाता है।

प्रश्न १६२—नयसप्तभंगी जानने से कैसे कल्याण हो ?

उत्तर—नय सप्तभगी वह कर सकता है जिसने मोटे रूप से पर द्रव्यो से तो मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है—

[अ] (१) अनन्त गुण सहित अभेद परम पारिणामिक ज्ञायक भाव अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अस्ति है, (२) ज्ञायक भाव तत् है, (३) ज्ञायक भाव नित्य है, (४) ज्ञायक भाव एक है। [आ] (१) इस त्रिकाली ज्ञायक की अपेक्षा पर्याय मे विकारी भाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय, गुणभेद कल्पना आदि परद्रव्य क्षेत्र-काल-भाव से नास्ति है, (२) विकारी भाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय, गुण भेद कल्पना आदि सब अतत् है, (३) विकारी भाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय, गुणभेद कल्पना आदि अनित्य है, (४) विकारी भाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय, गुणभेद

कल्पना आदि अनेक हैं। ऐसा अपनी आत्मा का एक-अनेकात्मक स्थिति जानकर पात्र जीव तुरन्त अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति, तत्, नित्य, एक स्वभाव की ओर दृष्टि करके सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति करके क्रम से अपने मे एकाग्रता करके परम मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न १६३—प्रमाण सप्तभंगी और नयसप्तभंगी का ज्ञान किसको होता है और किसको नहीं होता है?

उत्तर—ज्ञानियो को ही इन दोनो का ज्ञान वर्तता है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि आदि को इनमे से एक का भी ज्ञान नही वर्तता है।

प्रश्न १६४—एकान्त के कितने भेद हैं?

उत्तर—दो भेद हैं, सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त।

प्रश्न १६५—सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त क्या है, जरा खोलकर समझाइये?

उत्तर—(१) अपने स्वरूप से अस्तित्व और पर रूप से नास्तित्व आदि जो वस्तु स्वरूप है, उसकी अपेक्षा रखकर प्रमाण द्वारा जाने हुए पदार्थ के एक देश का (पक्ष का) विषय करने वाला नय सम्यक् एकान्त है। (थोडे मे सापेक्षनय सम्यक् एकान्त है।) (२) किसी वस्तु के एक धर्म का निश्चय करके उसमे रहने वाले अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध करना वह मिथ्या एकान्त है। (निरपेक्ष नय मिथ्या एकान्त है।)

प्रश्न १६६—सम्यक् एकान्त के और मिथ्या एकान्त के दृष्टान्त दीजिए?

उत्तर—(१) "सिद्ध भगवान एकान्त सुखी है" ऐसा जानना वह सम्यक् एकान्त है, क्योकि "सिद्ध जीवो को बिल्कुल दुःख नही है" ऐसा गर्भित रूप से उसमे आ जाता है। और 'सर्वजीव एकान्तः सुखी हैं" ऐसा जानना मिथ्या एकान्त है, क्योकि वर्तमान मे अज्ञानी जीव दुःखी है, इसका उसमे अस्वीकार है। (२) "सम्यग्ज्ञान ही धर्म है"

ऐसा जानना सम्यक् एकान्त है, क्योकि "सम्यग्ज्ञान पूर्वक वैराग्य होता है" ऐसा उसमे गर्भित रूप से आ जाता है। और "स्त्रीपुत्रादिक का त्याग ही" धर्म है ऐसा जानना वह मिथ्या एकान्त है, क्योकि त्याग के साथ सम्यग्ज्ञान होना ही चाहिए ऐसा इसमे नही आता है (३) सम्यग्दर्शनादि से ही मुक्ति होती है यह सम्यक् एकान्त है क्योकि पर से, महाव्रतादि से नही होती है यह गौण है। और महाव्रतादि से ही मुक्ति होती है यह मिथ्या एकान्त है, क्योकि सम्यग्दर्शनादि से मुक्ति होती है ऐसा इसमे नही आता है।

प्रश्न १६७—क्या आत्मा को शुभभाव से ही धर्म होता है वह सम्यक् एकान्त है ?

उत्तर—बिल्कुल नही, यह तो मिथ्या एकान्त है, क्योकि इसमे शुद्धभाव का निषेध किया है।

प्रश्न १६८—क्या शुद्ध भाव से ही धर्म होता है यह तो मिथ्या-एकान्त है ?

उत्तर—बिल्कुल नही, यह तो सम्यक् एकान्त है। शुद्धभाव से ही धर्म होता है यह अर्पित कथन है और शुभभाव से नही यह अनर्पित कथन इसमे आ ही जाता है।

प्रश्न १६९—मिथ्या एकान्त के दृष्टान्त दीजिए ?

उत्तर—(१) आत्मा सर्वथा नित्य ही है। (२) आत्मा सर्वथा अनित्य ही है। (३) आत्मा सर्वथा एक ही है। (४) आत्मा सर्वथा अनेक ही है। (५) आत्मा को शुभभाव से ही धर्म होता है। (६) भगवान का दर्शन ही सम्यक्त्व है। (७) अणुव्रतादिक का पालन करना ही श्रावकपना है। (८) २८ मूलगुण पालन करना ही मुनिपना है। (९) चार हाथ जमीन देखकर चलना ही ईर्यासमिति है। (१०) भूखा रहना ही क्षुधा परिपहजय है। यह सब मिथ्या एकान्त है, क्योकि इनमे अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध पाया जाता है।

प्रश्न १७०—सम्यक् एकान्ती कौन है ?

उत्तर—वस्तु सामान्य-विशेप स्वरूप है। ऐसा जिसको प्रमाण ज्ञान हुआ हो, वह वस्तु को द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा सामान्य ही है तथा वस्तु को पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा विशेष ही है ऐसी मान्यता वाले सम्यक् एकान्ती है।

प्रश्न १७१—मिथ्या एकान्ती कौन है ?

उत्तर—वस्तु सामान्य-विशेष स्वरूप है। इसके बदले कोई वस्तु को सर्वथा सामान्य ही माने, कोई वस्तु को सर्वथा विशेष ही माने ऐसी मान्यता वाले दोनो मिथ्या एकान्ती हैं।

प्रश्न १७२—सम्यक् एकान्त के दृष्टान्त दीजिए ?

उत्तर—(१) आत्मा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य ही है। (२) आत्मा पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य ही है। (३) आत्मा द्रव्य की अपेक्षा एक ही है। (४) आत्मा गुण-पर्याय भेद की अपेक्षा अनेक ही है। (५) आत्मा को शुद्ध भाव से ही धर्म होता है। (६) आत्मा के आश्रय से श्रद्धा गुण मे से शुद्ध दशा प्रगट होना ही सम्यक्त्व है। (७) दो चौकडी के अभावरूप शुद्ध दशारूप देशचारित्र ही श्रावकपना है। (८) शुद्धोपयोगरूप दशा ही मुनिपना है। (९) तीन चौकडी के अभावरूप शुद्धि ही इर्यासमिति है। (१०) तीन चौकडी के अभावरूप शुद्धि की वृद्धि होना ही क्षुधापरिपह जय है। यह सब सम्यक् एकान्त है, क्योकि इनमे अन्य धर्मों का किसी अपेक्षा से निषेध पाया जाता है।

प्रश्न १७३—अनेकान्त के समयसार शास्त्र मे कितने बोल कहे हैं ?

उत्तर—नित्य-अनित्य, एक-अनेक, तत्-अतत् आदि १४ बोल कहे हैं।

प्रश्न १७४—नित्य-अनित्य, एक-अनेक, तत्-अतत् आदि जो १४ बोलो को न समझे, उसे भगवान ने क्या कहा है ?

उत्तर— १४ वार पशु कहा है।

प्रश्न १७५—इन १४ बोलो के अनेकान्त-स्याद्वाद स्वरूप को समझ ले तो क्या होता है ?

उत्तर—(१) जो जीव भगवान के कहे हुए १४ बोल अनेकान्त-स्याद्वाद के स्वरूप को समझ ले, तो वह जीव श्री समयसार मे आये हुए गा० ५० से ५५ तक वर्णादिक २९ बोलो से रहित अपने एकमात्र भूतार्थ स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रमश मोक्ष की प्राप्ति करता है (२) पचम पारिणामिक भाव का महत्व आ जाता है, और चार भावो की महिमा छूट जाती है। (३) चारो गति के अभावरूप पचमगति की प्राप्ति होती है। (४) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ससार के पाँच कारणो का अभाव हो जाता है। (५) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ऐसे पाँच परावर्तनो का अभाव हो जाता है। (६) पचपरमेष्टियो मे उसकी गिनती होने लगती है। (७) १४वाँ गुणस्थान प्राप्त होकर, सिद्ध दशा की प्राप्ति होती है। (८) आठो कर्मों का अभाव हो जाता है। (९) सम्पूर्ण दुखो का अभाव होकर सम्पूर्ण सुखी हो जाता है।

प्रश्न १७६—जो १४ बोल रूप अनेकान्त स्याद्वाद स्वरूप को न समझे, तो क्या होगा ?

उत्तर—(१) समयसार मे भगवान ने उसे 'पशु' कहा है। (२) आत्मावलोकन मे 'हरामजादीपना' कहा है। (३) प्रवचनसार मे "पद पद पर धोखा खाता है", (४) पुरुषार्थसिद्धयुपाय मे 'वह जिनवाणी सुनने के अयोग्य है'। (५) समयसार मे "वह ससार परिभ्रमण का कारण कहा है"। (६) समयसार कलश ५५ मे "यह अज्ञान मोह अज्ञान-अन्धकार है उसका सुलटना दुर्निवार है" ऐसा बताया है। (७) अनेकान्त-स्याद्वाद को न समझने वाला मिथ्यादर्शनादि की पुष्टि करता हुआ चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद मे चला जाता है।

प्रश्न १७७—अनेकान्त का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—अनेकान्त मार्ग भी सम्यक् एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति कराने के सिवाय अन्य किसी भी हेतु से उपकारी नही है।

प्रश्न १७८—नित्य-अनित्य को अनेकान्त की परिभाषा में लगाओ ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु मे वस्तुपने की सिद्धि करने वाली नित्य-अनित्य आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियो का एक ही साथ प्रकाशित होना उसे अनेकान्त कहते हैं।

प्रश्न १७९—नित्य-अनित्य धर्म में विरोध होने पर भी स्याद्वाद-अनेकान्त इस विरोध को कैसे मिटाता है ?

उत्तर—क्या द्रव्य नित्य है ? उत्तर—हाँ है। क्या द्रव्य अनित्य है ? उत्तर—हाँ है। देखो—दोनो प्रश्नो के उत्तर मे "हाँ है" विरोध सा लगता है। परन्तु द्रव्य द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य है और पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य है। ऐसा स्याद्वाद-अनेकान्त बतला कर नित्य-अनित्य के परस्पर विरोध को मिटाकर नित्य-अनित्य धर्म को प्रकाशित करता है।

प्रश्न १८०—नित्य पर सच्चा अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर—द्रव्य द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य ही है अनित्य नही है यह सच्चा अनेकान्त है।

प्रश्न १८१—अनित्य पर सच्चा अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर—द्रव्य पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य ही है नित्य नही है यह सच्चा अनेकान्त है।

प्रश्न १८२—नित्य पर मिथ्या अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर—द्रव्य द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य भी है और अनित्य भी है यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न १८३—अनित्य पर मिथ्या अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर—द्रव्य पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य भी है और नित्य भी है यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न १८४—नित्य पर सम्यक् एकान्त किस प्रकार लगता है?

उत्तर—द्रव्य द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य ही है वह सम्यक् एकान्त है।

प्रश्न १८५—अनित्य पर सम्यक् एकान्त किस प्रकार लगता है?

उत्तर—द्रव्य पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य ही है यह सम्यक् एकान्त है।

प्रश्न १८६—नित्य पर मिथ्या एकान्त किस प्रकार लगता है?

उत्तर—द्रव्य सर्वथा नित्य ही है यह मिथ्या एकान्त है।

प्रश्न १८७—अनित्य पर मिथ्या एकान्त किस प्रकार लगता है?

उत्तर—द्रव्य सर्वथा अनित्य ही है यह मिथ्या एकान्त है।

प्रश्न १८८—प्रत्येक द्रव्य नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म स्वरूप है, ऐसा किसने बताया है?

उत्तर—जिन, जिनवर और जिनवरवृषभो ने बताया है।

प्रश्न १८९—जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो ने प्रत्येक द्रव्य को नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म स्वरूप बताया है, इसको जानने-मानने से ज्ञानियो को क्या लाभ होता है?

उत्तर—(१) प्रत्येक द्रव्य नित्य-अनित्यादि धर्म स्वरूप है—ऐसा जानने वाले श्रुतज्ञानी को सम्पूर्ण द्रव्यो का ज्ञान केवली के समान हो जाता है मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर रहता है। (२) ज्ञानी साधक अपने नित्य धर्म स्वरूप अपनी आत्मा मे विशेष एकाग्रता करके केवल-ज्ञान की प्राप्ति कर लेता है।

प्रश्न १९०—प्रत्येक द्रव्य नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म स्वरूप है इसको सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है?

उत्तर—अपने मानसिक ज्ञान मे प्रत्येक द्रव्य नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म स्वरूप है ऐसा निर्णय करके अपने नित्य धर्म स्वरूप आत्मा

की दृष्टि करके साधक बनकर क्रम से सिद्धदशा की प्राप्ति कर लेता है।

प्रश्न १९१—प्रत्येक द्रव्य नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म स्वरूप है इसको सुनकर अपात्र मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य-नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म स्वरूप कैसे हो सकता है ? कभी नही हो सकता है, क्योकि एक ही समय नित्य और अनित्य नही हो सकता। इस प्रकार मिथ्या मान्यता की पुष्टि करके चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्रश्न १९२—यह नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म प्रत्येक द्रव्य मे ही लगते हैं या और किसी मे भी लगते हैं ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे तथा प्रत्येक द्रव्य के एक-एक गुण मे भी नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म लग सकते हैं। इससे प्रत्येक द्रव्य-गुण की स्वतन्त्रता का ज्ञान होता है।

प्रश्न १९३—एक-अनेक पर सम्यक्अनेकान्त-मिथ्याअनेकान्त आदि सब प्रश्नोत्तरो लगाकर बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १७८ से १९२ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १९४—सत्-असत् पर सम्यक्अनेकान्त-मिथ्या अनेकान्त आदि सब प्रश्नोत्तरों लगाकर बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १७८ से १९२ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १९५—तत्-अतत् पर सम्यक्अनेकान्त-मिथ्याअनेकान्त आदि सब प्रश्नोत्तरो लगाकर बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १७८ से १९२ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १९६—भेद-अभेद पर सम्यक्अनेकान्त-मिथ्याअनेकान्त आदि सब प्रश्नोत्तरो लगाकर बताओ ?

उत्तर—प्रश्न १७८ से १९२ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न १९७—स्याद्वाद-अनेकान्त के विषय मे समयसार कलश २७३ में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) पर्यायदृष्टि से देखने पर आत्मा अनेकरूप दिखाई देता है और द्रव्यदृष्टि से देखने पर एकरूप। (२) क्रमभावी पर्याय-दृष्टि से देखने पर क्षणभगुर दिखाई देता है और सहभावी गुणदृष्टि से देखने पर ध्रुव। (३) ज्ञान की अपेक्षा वाली सर्वगत दृष्टि से देखने पर परम विस्तार को प्राप्त दिखाई देता है और प्रदेशो की अपेक्षा वाली दृष्टि से देखने पर अपने प्रदेशो मे ही व्याप्त दिखाई देता है। ऐसा द्रव्य-पर्यायात्मक अनन्तधर्म वाला वस्तु का स्वभाव है।

प्रश्न १९८—अनेकान्त-स्याद्वाद के विषय मे समयसार कलश २७४ मे क्या बताया है ?

उत्तर—(१) एक ओर से देखने पर कषायो का क्लेश दिखाई देता है और एक ओर से देखने पर शान्ति (कषायो का अभावरूप शान्तभाव) दिखाई देता है। (२) एक ओर से देखने पर परभाव की (सासारिक) पीडा दिखाई देती है और एक ओर से देखने पर (ससार के अभावरूप) मुक्ति भी स्पर्श करती है। (३) एक ओर से देखने पर तीनो लोक दिखाई देता है और एक ओर से देखने पर केवल एक चैतन्य ही शोभित होता है। ऐसी आत्मा की अद्भुत से भी अद्भुत स्वभाव महिमा जयवन्त वर्तती है।

प्रश्न १९९—समयसार कलश २७३ तथा २७४ मे अज्ञानी क्या मानता है और ज्ञानी क्या मानता-जानता है ?

उत्तर—अहो, "आत्मा का यह सहज वैभव अद्भुत है।" वह स्वभाव अज्ञानियो के ज्ञान मे आश्चर्य उत्पन्न करता है कि यह तो असम्भव सी बात है। ज्ञानियो को वस्तु स्वभाव मे आश्चर्य नही होता फिर भी उन्हे कभी नही हुआ ऐसा अभूतपूर्व-अद्भुत परमानन्द होता है, और आश्चर्य भी होता है। अहो ! यह जिनवचन महा उपकारी है, वस्तु के यथार्थ स्वरूप को बताने वाले है, मैंने अनादि काल से ऐसे

यथार्थ स्वरूप के ज्ञान बिना ही व्यतीत कर दिया है। अहा ! स्याद्वाद-अनेकान्त मेरा स्वभाव जयवन्त वर्तता है। ऐसा स्याद्वाद-अनेकान्त स्वरूप ही दुख का अभाव करने वाला और सुख का देने वाला है। हे ससार के प्राणियो, ऐसे अनेकान्त-स्याद्वाद स्वरूप की पहिचान करो।

प्रश्न २००—दुख से छुटने के लिए और सुखी होने के लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर—अनन्त शक्ति सम्पन्न अनेकान्त स्वरूप अपनी भगवान आत्मा को पहिचानना चाहिए।

प्रश्न २०१—ज्ञानमात्र आत्मा अनेकान्त स्वरूप किस प्रकार से है ?

उत्तर—ज्ञानमात्र आत्मा को ज्ञान लक्षण के द्वारा अनुभव करने पर आत्मा मे मात्र ज्ञान ही नही आता है, परन्तु ज्ञान के साथ आनन्द, प्रभुता, वीर्य, दर्शन, चारित्र, अस्तित्वादिक अनन्त गुणो सहित अभेद आत्मा अनुभव मे आता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र आत्मा कहते ही अनेकान्तपना आ जाता है।

प्रश्न २०२—आत्मा मे अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमे हेर-फेर होता है या नहीं होता है ?

उत्तर—आत्मा मे अनन्त शक्तियाँ एक साथ रहती हैं। शक्तियो मे हेरफेर नही होता है, परन्तु प्रत्येक शक्ति की पर्याये क्रम-क्रम से नही होती हैं। जितनी शक्तियाँ है उतनी-उतनी पर्याये एक-एक समय करके निरन्तर होती रहती हैं।

प्रश्न २०३—ज्ञान लक्षण द्वारा ध्यान मे क्या आता है और क्या नहीं आता है ?

उत्तर—ज्ञान लक्षण द्वारा अनन्त गुणो का पिण्ड ज्ञायक भगवान अनुभव मे आता है और नौ प्रकार का पक्ष अनुभव मे नही आता है।

प्रश्न २०४—आत्मा किसके द्वारा अनुभव मे आता है और किसके द्वारा अनुभव में नहीं आता है ?

उत्तर— एकमात्र प्रज्ञारूपी छैनी द्वारा ही आत्मा अनुभव मे आता है और नौ प्रकार के पक्षो द्वारा आत्मा अनुभव मे नही आता है।

प्रश्न २०५—आत्मा और अनन्त शक्तियो का द्रव्य-क्षेत्र काल-भाव एक ही है या अलग है ?

उत्तर—आत्मा और अनन्त शक्तियो का द्रव्य-क्षेत्र-काल एक ही है मात्र भाव मे अन्तर है।

प्रश्न २०६—भगवान का लघुनदन कब कहलाता है ?

उत्तर—अनन्त शक्ति सम्पन्न अपनी आत्मा को अनुभव करने पर ही भगवान का लघुनदन कहला सकता है।

प्रश्न २०७—प्रत्येक शक्ति का क्षेत्र और काल एक होने पर भी भावभेद हैं, इसे स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—कार्य भेद है। जैसे-जीवत्व शक्ति का कार्य आत्मा को चैतन्य प्राणो से जिलाना है। ज्ञान का कार्य जानना है। श्रद्धा का कार्य प्रतीति है। चारित्र का कार्य लीनता है। वीर्य का कार्य स्वरूप की रचना है। सुख का कार्य आकुलतारहित शान्ति का अनुभव है। प्रभुता शक्ति का कार्य स्वतन्त्रता से शोभायमान रहना है। प्रकाश शक्ति का कार्य स्वय-प्रत्यक्ष स्वानुभव करना है। इस प्रकार अनन्त शक्तियो के कार्य भेद होने पर भी द्रव्य-क्षेत्र-काल का भेद नही है।

प्रश्न २०८—जीवत्वशक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—चैतन्यमात्र भाव प्राण को धारण करे उसे जीवत्व शक्ति कहते हैं।

प्रश्न २०९—जीवत्वशक्ति के जानने से क्या-क्या लाभ है ?

उत्तर—आत्मा दस प्राणो से और भावेन्द्रियरूप अशुद्ध भाव प्राणो से जीता है ऐसी खोटी मान्यता का अभाव हो जाता है और चैतन्य प्राणो से आत्मा सदा जीता है ऐसा अनुभव हो जाता है।

प्रश्न २१०—जीवत्वशक्ति क्या करती है ?

उत्तर—आत्मा को कभी भी अजीवरूप नही होने देती सदैव जीव रूप रखती है।

प्रश्न २११—जीवत्वशक्ति में पाँच भाव लगाओ ?

उत्तर—आत्मा की जीवत्व शक्ति=पारिणामिक भाव। रागादि उदय भावो का अभाव=औदयिकभाव नास्तिरूप आया। जीवत्व शक्ति का शुद्धरूप परिणमन=क्षयोपशम और क्षायिकभाव आ गये, परन्तु औपशमिक भाव नही आता है।

प्रश्न २१२—जीवत्वशक्ति मे सात तत्त्व लगाओ ?

उत्तर—त्रिकाल चैतन्य प्राण से सम्पन्न ज्ञायक भाव=जीवतत्व। शुद्ध पर्याय प्रगटी=सवर-निजरा और मोक्षतत्त्व। अशुद्ध परिणमन दूर हुआ=आस्रव-बधतत्त्व। जड प्राणो से भिन्न जाना=अजीव तत्त्व। इस प्रकार जैसे—जीवत्वशक्ति मे साततत्त्व आये। उसी प्रकार प्रत्येक शक्ति मे लगाना चाहिए।

प्रश्न २१३—जीवत्वशक्ति मे किसका समावेश होता है और किसका समावेश नहीं होता है ?

उत्तर—जीवत्वशक्ति मे अक्रमरूप अनन्त शक्तियाँ और उन शक्तियो को क्रम-क्रम से होने वाला शुद्ध परिणमन, इस प्रकार क्रम-अक्रमरूप अनन्त धर्म पर्याय सहित का जीवत्व शक्ति मे समावेश होता है। नौ प्रकार के पक्षो का समावेश जीवत्वशक्ति मे नही होता है। जीवत्व शक्ति की तरह बाकी सब शक्तियो मे इसी प्रकार जानना और लगाना चाहिए।

प्रश्न २१४—शक्तियो की यथार्थ पहिचान कब होती है ?

उत्तर—अपनी ज्ञान पर्याय को अपनी आत्मा मे अन्तर्मुख करने पर ही शक्तियो की यथार्थ पहिचान होती है, क्योकि अपने आपका अनुभव होने पर अनन्त शक्तियाँ आत्मा मे एक साथ उछलती हैं।

इसलिए प्रत्येक आत्मार्थी को अनन्तशक्ति सम्पन्न अपने ज्ञायक स्वभाव को दृष्टि मे लेना ही मनुष्य जन्म का सार है।

प्रश्न २१५—आत्मा प्रसिद्ध हुई ऐसा कब कहा जा सकता है ?

उत्तर—मेरी आत्मा का पर द्रव्यो से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। मेरी आत्मा मे असख्यप्रदेश, अनन्त शक्तियाँ, एक-एक शक्ति मे अनन्त सामर्थ्य है। मेरी किसी भी शक्ति मे उसके किसी भी प्रदेश मे विकार नही है। पुण्य-पाप के विकल्पो से भिन्न अनन्त गुण सम्पन्न अपनी आत्मा को अनुभव करने पर ही 'आत्मा की प्रसिद्धि होती है। इसलिए हे भव्यो ! अपनी आत्मा का अनुभव करो यह जैन शासन का सार है।

प्रश्न २१६—४७ शक्तियो का स्वरूप स्पष्ट समझाओ ?

उत्तर—आत्म वैभव मे पूज्य श्री कानजी स्वामी ने अलौकिक रीति से ४७ शक्तियो का स्वरूप प्रवचन द्वारा समझाया है उसमे देखियेगा आपको अपूर्व आनन्द आवेगा।

।। अनेकान्त-स्याद्वाद प्रथम अधिकार समाप्त ।।

मोक्ष-मार्ग दूसरा अधिकार

इस भव तरूका मूल इक जानहु मिथ्याभाव।
ताकौं करि निर्मूल अब करिए मोक्ष उपाय ।।१।।
शिव उपाय करते प्रथम कारन मंगल रूप।
विघन विनाशक सुख करन नमौं शुद्ध शिवभूप ।।२।।

अर्थ—इस भवरूपी वृक्ष का मूल एक मिथ्यात्व भाव है उसको

निर्मूल करके मोक्ष का उपाय करना चाहिए ॥१॥ शिव उपाय अर्थात् मोक्ष का उपाय करने से पहिले उसका कारण और मगलरूप शुद्ध शिवभूप को नमस्कार करना चाहिए, क्योकि वह विघ्न विनाशक और सुख का करने वाला है ॥२॥

प्रश्न १—मोक्ष क्या है ?

उत्तर—"मोक्ष कहे निज शुद्धता" अर्थात् परिपूर्ण शुद्धि का प्रकट होना वह मोक्ष है और मोक्ष आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा है।

प्रश्न २—मोक्ष कितने प्रकार का है ?

उत्तर—पाँच प्रकार का है। (१) शक्तिरूप मोक्ष (२) दृष्टिरूप मोक्ष (चौथा गुणस्थान), (३) मोहमुक्त मोक्ष (१२ वाँ गुणस्थान) (४) जोवनमुक्त मोक्ष (१३, १४ वाँ गुणस्थान) (५) देहमुक्त मोक्ष (सिद्धदशा)।

प्रश्न ३—पांच प्रकार के मोक्ष के विषय मे क्या ध्यान रखना चाहिए ?

उत्तर—(१) शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय लिये बिना दृष्टिरूप मोक्ष की प्राप्ति नही होती है। (२) दृष्टिरूप मोक्ष प्राप्त किये बिना मोह मुक्त मोक्ष की प्राप्ति नही होती है। (३) मोह मुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना जीवन मुक्त मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। (४) जीवन मुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना देहमुक्त मोक्ष की प्राप्ति नही होती है। इसलिए पात्र जीवो को एकमात्र शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय करना चाहिए, क्योकि इसी के आश्रय से ही दृष्टिरूप मोक्ष आदि सब मोक्षो की प्राप्ति होती है। पर के, विकार के, अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायो के आश्रय से कुछ भी प्राप्ति नहीं होती है परन्तु अधर्म की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ४—मोक्ष कैसे होता है ?

उत्तर—सवर, निर्जरा पूर्वक ही मोक्ष होता है।

प्रश्न ५—सवर, निर्जरा और मोक्ष अस्तिसूचक नाम हैं या नास्ति-सूचक नाम हैं ?

उत्तर—संवर, निर्जरा और मोक्ष नास्ति सूचक नाम हैं।

प्रश्न ६—भाव संवर की नास्ति-अस्ति सूचक परिभाषा क्या है?

उत्तर—शुभाशुभ भाव का उत्पन्न ना होना नास्ति से भाव संवर और शुद्धि का प्रगट होना अस्ति से भाव संवर है।

प्रश्न ७—भाव निर्जरा की नास्ति-अस्ति सूचक परिभाषा क्या है?

उत्तर—अशुद्धि की हानि नास्ति से भाव निर्जरा है और शुद्धि की वृद्धि अस्ति से भाव निर्जरा है।

प्रश्न ८—भाव मोक्ष की नास्ति-अस्ति सूचक परिभाषा क्या है?

उत्तर—सम्पूर्ण अशुद्धि का अभाव नास्ति से भाव मोक्ष है और सम्पूर्ण शुद्धि का प्रगट होना अस्ति से भाव मोक्ष है।

प्रश्न ९—भावसंवर, भावनिर्जरा किसके अभावरूप प्रकट होती है?

उत्तर—आस्रव, बंध के अभावरूप संवर-निर्जरा प्रगट होती है।

प्रश्न १०—आस्रव किसे कहते हैं?

उत्तर—जीव में जो विकारी शुभाशुभ भावरूप अरूपी अवस्था होती है वह आस्रव है।

प्रश्न ११—आस्रव के कितने भेद हैं?

उत्तर—दो भेद हैं द्रव्य आस्रव और भाव आस्रव।

प्रश्न १२—आस्रव की दूसरी परिभाषा क्या है?

उत्तर—(१) नया-नया आना (२) मर्यादा पूर्वक आना।

प्रश्न १३—भाव आस्रव में यह दोनों आस्रव की परिभाषा किस प्रकार घटती हैं?

उत्तर—(१) शुभाशुभ भाव नये-नये आते हैं इसलिए "नया-नया आना" यह भावआस्रव है। (२) जीव इतना विकार करे जो ज्ञान दर्शन-वीर्य का सर्वथा अभाव हो जावे, ऐसा नहीं हो सकता इसलिए आस्रवभाव मर्यादा में ही आता है। अतः "मर्यादा पूर्वक आना" उसे भावआस्रव कहते हैं।

प्रश्न १४—द्रव्यआस्रव में यह दोनो आस्रव की परिभाषा किस प्रकार घटती हैं ?

उत्तर—(१) कर्म नये-नये आते है इसलिये "नया-नया आना" यह द्रव्यआस्रव है। (२) जीव विकार करे और सर्व कार्माणवर्गणा द्रव्यकर्मरूप परिणमन कर जावे ऐसा नही होता है, क्योकि कार्माण वर्गणा भी मर्यादा पूर्वक हो आती हैं, इसलिए "मर्यादा पूर्वक आना" यह द्रव्य आस्रव है।

प्रश्न १५—भावबध किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा के अज्ञान, राग-द्वेष, पुण्य-पापरूप विभाव मे रुक जाना वह भावबध है।

प्रश्न १६—भावआस्रव, भावबंध का अभाव और भावसवर-भावनिर्जरा को प्राप्ति किसमें होती है ?

उत्तर—जीव मे होती है। इसलिए जीव तत्त्व की जानकारी भी आवश्यक है।

प्रश्न १७—जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव अर्थात् आत्मा। वह सदैव ज्ञाता स्वरूप, पर से भिन्न और त्रिकाली स्थायी है।

प्रश्न १८—भाव आस्रव, भाव बंध किसके निमित्त से होते हैं ?

उत्तर—अजीव के निमित्त से होते है। अत अजीव की जानकारी भी आवश्यक है।

प्रश्न १९—अजीव किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमे चेतना-ज्ञातृत्व नही ऐसे द्रव्य पॉच है। उनमे धर्म अधर्म, आकाश और काल चार अरूपी है और पुद्गल रूपी है।

प्रश्न २०—सात तत्त्वो मे द्रव्य कौन हैं और पर्याय कौन हैं ?

उत्तर—सात तत्त्वो मे प्रथम दो तत्त्व 'जीव' और 'अजीव' द्रव्य हैं और पाँच तत्व जीव और अजीव की सयोगी और वियोगी पर्याये

है। आस्रव और बन्ध जीव-अजीव की सयोगी पर्याये हैं। तथा सवर, निर्जरा और मोक्ष ये जीव-अजीव की वियोगी पर्याये हैं।

प्रश्न २१—भाव सवर और भाव निर्जरा मे कितने समय का अन्तर है?

उत्तर—दोनो का समय एक ही है, परन्तु शुद्धि प्रगटी इस अपेक्षा भाव सवर है और शुद्धि की वृद्धि हुई इस अपेक्षा भाव निर्जरा है।

प्रश्न २२—भावसंवर और भाव निर्जरा होने पर भावमोक्ष होने में कितना समय लगेगा?

उत्तर—असख्यात समय ही लगेंगे, सख्यात् या अनन्तसमय नही लगेंगे।

प्रश्न २३—जिस समय सवर-निर्जरा प्रगटे उसी समय मोक्ष प्रगट हो तो हम संवर-निर्जरा होना माने कोई ऐसा कहे, तो क्या नुकसान है?

उत्तर—[१] चौथा गुणस्थान और सिद्धदशा ही रहेगी। और पाँचवे से चौदहवे गुणस्थान तक के अभाव का प्रसग उपस्थित होवेगा। [२] श्रावक, मुनि, श्रेणी, अरहतपने का अभाव हो जावेगा। [३] गुणस्थानो मे क्रम के अभाव का प्रसग उपस्थित होवेगा। [४] कोई उपदेशक नही रहेगा, क्योकि सम्यग्दर्शन मे सम्यग्ज्ञानी का ही उपदेश निमित्त होता है इस बात का भी अभाव हो जावेगा।

प्रश्न २४—संवर पूर्वक निर्जरा किसको होती है और किसको नहीं होती है?

उत्तर—[१] सम्यग्दर्शन होने पर ही सवरपूर्वक निर्जरा ज्ञानियो को ही होती है मिथ्यादृष्टियो को नही। [२] अनिवृत्तिकारण और अपूर्वकरण मे अकेली निर्जरा होती है सवरपूर्वक नही।

प्रश्न २५—क्या करें तो सवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर मोक्ष हो और क्या करें तो निगोद की प्राप्ति हो?

उत्तर—अपने सामान्य द्रव्य स्वभाव को देखने से अपने विशेष मे

सवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर क्रम से मोक्ष होता है और मात्र विशेष को देखने से आस्रव-बध की प्राप्ति होकर निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न २६—जो स्वभाव के आश्रय से पुरुषार्थ करता है उसका क्या फल है ?

उत्तर—[१] पच परावर्तन का अभाव। [२] मिथ्यात्व-अविरति आदि ससार के पाँच कारणो का अभाव। [३] पचपरमेष्ठियो मे उसकी गिनती होने लगती है। [४] पचमगति मोक्ष की प्राप्ति होती है। [५] पचम पारिणामिक भाव का महत्व आ जाता है। [६] आठ कर्मो का अभाव हो जाता है। [७] १४ गुणस्थान, १४ मार्गणा और १४ जीवसमास का अभाव होकर सिद्धदशा की प्राप्ति होना इस का फल है।

प्रश्न २७—अजीव की सयोगी-वियोगी पर्यायो का क्या-क्या नाम है और क्या-क्या परिभाषा है ?

उत्तर—द्रव्यआस्रव=नवीन कर्मो का आना। द्रव्यबध=नवीन कर्मो का स्वय स्वत बधना। द्रव्यसवर=कर्मो का आना स्वय स्वत रुक जाना। द्रव्य निर्जरा=जड कर्म का अशत खिर जाना। द्रव्य मोक्ष=द्रव्य कर्मो का आत्म प्रदेशो से अत्यन्त अभाव होना।

प्रश्न २८—जीव और अजीव की पर्यायों मे कैसा-कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर—निमित्त-नैमित्तिक सवध है। निमित्त-नैमित्तिक सवध परस्पर परतन्त्रता का सूचक नही है, परन्तु नैमित्तिक के साथ कौन निमित्तरूप पदार्थ है उसका वह ज्ञान कराता है, क्योकि जहाँ उपादान होता है, वहा निमित्त नियम से होता ही है ऐसा वस्तु स्वभाव है। बनारसीदास जी ने कहा है—'उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय, भेदज्ञान प्रमाण विधि, विरला बूझे कोय ॥'

प्रश्न २९—जीव का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर—जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो और दु ख का नाश हो उस

कार्य का नाम प्रयोजन है। इस जीव का प्रयोजन तो एक यही है कि दु.ख ना हो और सुख हो। किसी जीव के अन्य कुछ भी प्रयोजन नही है।

प्रश्न ३०—दुःख का नाश और सुख की उत्पत्ति किसके द्वारा हो सकती है ?

उत्तर—सात तत्वो के सच्चे श्रद्धान के आश्रित ही दु ख का नाश और सुख की प्राप्ति हो सकती है।

प्रश्न ३१—सात तत्वो के सच्चे श्रद्धान से ही दु ख का अभाव सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

उत्तर—प्रथम तो दु ख दूर करने मे अपना और पर का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। [अ] यदि अपना और पर का ज्ञान नहो हो तो अपने को पहिचाने बिना अपना दु ख कैसे दूर करे [आ] अपने को और पर को एक जानकर अपना दुख दूर करने के अर्थ पर का उपचार करे तो अपना दु ख कैसे दूर हो ? [इ] आप (स्व है) और पर भिन्न है, परन्तु यह पर मे अहकार-ममकार करे तो इससे दु ख ही होता है। इसलिए अपना और परका ज्ञान होने पर ही दु ख दूर होता है तथा अपना और परका ज्ञान जीव-अजीव का ज्ञान होने पर ही होता है, क्योकि आप स्वय जीव है, शरीरादिक अजीब है। यदि लक्षणादि द्वारा जीव-अजीव की पहिचान हो तो अपनी और परकी भिन्नता भासित हो इसलिए जीव-अजीव को जानना। इस प्रकार जीव-अजीव का यथार्थ श्रद्धान करने पर स्व-पर का श्रद्धान होता है और उससे सुख उत्पन्न होता है। जीव-अजीव का अयथार्थ श्रद्धान करने पर स्व-पर का श्रद्धान न हो। रागादिक को दूर करने का श्रद्धान न हो और उससे दुख उत्पन्न हो। इसलिए आस्रव, बध, सवर-निर्जरा और मोक्ष सहित जीव-अजीव तत्व प्रयोजन भूत समझने चाहिए। आस्रव और बध दुख के कारण है तथा सवर, निर्जरा और मोक्ष सुख के कारण हैं, इसलिए जीवादि सात तत्वो का श्रद्धान करना आवश्यक है। इन सात तत्वो की

सच्ची-श्रद्धा के बिना दुख का अभाव और सुख की प्राप्ति नही हो सकती है।

प्रश्न ३२—जीव-अजीव तत्त्व का सच्चा श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—अपने को आप रूप जानकर पर का अश भी अपने मे न मिलाना और अपना अश भी पर मे न मिलाना यह जीव-अजीव तत्त्व का सच्चा ~द्धान है।

प्रश्न ३३—आश्रव तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—परमार्थत वास्तव मे पुण्य-पाप (शुभाशुभभाव) आत्मा को अहितकर है। आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था है। द्रव्य पुण्य-पाप आत्मा का हित-अहित नही कर सकते हैं। मिथ्यात्व राग-द्वेषादि भाव आत्मा को प्रगट रूप से दु ख के देने वाले है। यह आश्रव तत्त्व का ज्यो का त्या श्रद्धान है।

प्रश्न ३४—बध तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—जैसी-सोने की बेडी वैसे ही लोहे की बेडी है। दोनो बधन कारक है इसी प्रकार पुण्य-पाप दोनो जीव को बधन करता है। यह बध तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है।

प्रश्न ३५—सवर तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही जीव के लिए हित-कारी हे। यह सवर तत्त्व का सच्चा श्रद्धान है।

प्रश्न ३६—निर्जरा तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—आत्मा मे एकाग्र होने से शुभाशुभ इच्छाये उत्पन्न ना होने से निज आत्मा की शुद्धि का बढना सो तप है। उस तप से निर्जरा होती है। ऐसा तप सुखदायक है। यह निर्जरा तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है।

प्रश्न ३७—मोक्ष तत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान क्या है ?

उत्तर—मोक्ष दशा मे सम्पूर्ण आकुलता का अभाव है। पूर्ण स्वा-

धीन निराकुलता रूप सुख है यह मोक्ष तत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान है।

प्रश्न ३८—जीव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर—बाह्य अनुकूल सयोगों मे मैं सुखी और प्रतिकूल सयोगो मे मैं दुःखी, निर्धन होने से मैं दुःखी, धन होने से मैं सुखी इत्यादि मिथ्या अभिप्राय यह जीव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न ३९—अजीव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर—शरीर का सयोग होने से मैं उत्पन्न हुआ और शरीर का वियोग होने से मैं मर गया। धन, शरीरादि जड पदार्थों मे परिवर्तन होने से अपने मे इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन मानना, इत्यादि जो अजीव की अवस्थायें हैं उन्हें अपनी मानना यह अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न ४०—आस्रव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर—मिथ्यात्व रागादि प्रगट दुःख देने वाले हैं। तथापि उनका सेवन करने मे सुख मानना यह आस्रव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न ४१—बंध तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर—शुभ को लाभदायक तथा अशुभ को हानिकारक मानना यह बंधतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न ४२—संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर—सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्ज्ञान सहित वैराग्य को कष्टदायक और समझ मे न आये ऐसी मान्यता संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न ४३—निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर—शुभाशुभ इच्छाओं को न रोककर इन्द्रिय विषयों की इच्छा करना यह निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न ४४—मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर—सम्यग्दर्शन पूर्वक ही पूर्ण निराकुलता प्रगट होती है और वही सच्चा सुख है ऐसा न मानकर वाह्य सुविधाओ मे सुख मानना यह मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न ४५—मोक्ष-मार्ग प्राप्त करने के लिए किस पर अधिकार मानना चाहिए ?

उत्तर—एक मात्र 'जो सकल निरावरण-अखण्ड-एक-स्वरूप प्रत्यक्ष प्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्ध-पारिणामिक-परमभाव लक्षण निज परमात्म द्रव्य स्वरूप जो अपना आत्मा है। उस पर अधिकार करने से ही सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रम मे वृद्धि करके परिपूर्ण मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ४६—अनादिकाल से अज्ञानी जीव ने किस-किस पर अपना अधिकार माना, जिससे उसे संवर-निर्जरा-मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई ?

उत्तर—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों पर अपना अधिकार माना (२) आँख, नाक, कानरूप औदारिकशरीर पर अपना अधिकार माना (३) तैजस-कार्माण शरीरो पर अपना अधिकार माना। (४) भाषा और मन पर अपना अधिकार माना। (५) शुभाशुभ विकारी भावो मे अपना अधिकार माना। (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायो के पक्ष पर अपना अधिकार माना। (७) भेदनय के पक्ष पर अपना अविकार माना (८) अभेदनय के पक्ष पर अपना अधिकार माना। (९) भेदाभेदनय के पक्ष पर अपना अधिकार माना। इसलिए सवर निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति नही हुई।

प्रश्न ४७—नौ प्रकार के पक्षों पर अधिकार मानने से क्या होता है ?

उत्तर—अनादिकाल से एक-एक समय करके चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद की सैर करता है और प्रत्येक समय महा दुखी होता है।

प्रश्न ४८—आत्मा का अधिकार किसमे है और किसमे नहीं है ?

उत्तर—आत्मा का अधिकार अपने अनन्त गुणो के पिण्ड ज्ञायक भाव पर ही है और नौ प्रकार के पक्षो पर अधिकार नही है।

प्रश्न ४६—शरीर मे बीमारी आ जावे, लडका मर जावे, धन नष्ट हो जावे, चला न जावे, तो हम क्या करें जिससे शान्ति की प्राप्ति हो ?

उत्तर—जो सिद्ध भगवान करते हैं वह हम करे तो शान्ति की प्राप्ति हो। जैसे—होस्पिटल मे ५० मरीज मर जावे, तो क्या डाक्टर रोवेगा? आप कहोगे नही, परन्तु जानेगा और देखेगा। क्योकि इन पर मेरा अधिकार नही है, उसी प्रकार शरीर मे बिमारी आवे, स्त्री मर जावे, धन नष्ट हो जावे, तो जानो इन पर हमारा अधिकार नही है ऐसा जाने-माने तो शान्ति आ जावेगी। उन पर अपना अधिकार मानेगा तो दु.खी होकर चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद मे चला जावेगा।

प्रश्न ५०—आपने तो पूर्ण-अपूर्ण शुद्ध पर्याय पर भी अपना अधिकार माने तो चारो गतियो में घूमकर निगोद मे चला जावेगा—ऐसा कहा है। जबकि ज्ञानी तो शुद्ध पर्याय पर ही अपना अधिकार मानते हैं ?

उत्तर—चौथे गुणस्थान से लेकर सब ज्ञानी एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान पर ही अपना अधिकार मानते हैं। अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय पर भी ज्ञानी अपना अधिकार नही मानते हैं। पर और विकारी भावो की तो बात ही नही है।

प्रश्न ५१—पूर्ण-अपूर्ण शुद्ध पर्याय के आश्रय से मेरा भला हो, ऐसा मानने वाला कौन है ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि है और वह चारो गतियो मे घूम कर निगोद का पात्र है।

प्रश्न ५२—ज्ञानियों को औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव जो धर्मरूप है, क्या उनकी भावना नही होती है ?

उत्तर—ज्ञानियो को एकमात्र परम पारिणामिक भाव की ही भावना होती है। उसके फलस्वरूप औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव पर्याय मे उत्पन्न होते हैं। परन्तु औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भावो की भावना नही होती है।

प्रश्न ५३—ज्ञानियो को पर्याय मे तो औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव होते हैं और औदयिक भाव भी होते हैं और आप कहते हैं कि ज्ञानियों को उनकी भावना नही है?

उत्तर—अरे भाई, पर्याय मे औपशमिकादिक भावो का होना अलग बात है और उसकी भावना करना अलग बात है। क्योकि ज्ञानी श्रद्धा मे एकमात्र अपने परम पारिणामिक ज्ञायक भाव को ही स्वीकार करते है, निमित्त भगभेद, अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय को नही स्वीकार करते हैं। (२) ज्ञानी अपने सम्यग्ज्ञान मे परम पारिणामिक भावरूप अपने जीव को आश्रय करने योग्य जानता है। औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव अर्थात् सवर, निर्जरा और मोक्ष को प्रगट करने योग्य जानता है। औदयिकभाव अर्थात् आस्रव-बध को हेयरूप जानता है। इस प्रकार ज्ञानियो को तो मात्र भावना अपने ज्ञायक निज की ही वर्तती हैं और की नही वर्तती है।

प्रश्न ५४—मोक्षमार्ग शब्द में 'मार्ग' का क्या अर्थ है?

उत्तर—मार्ग अर्थात् रास्ता।

प्रश्न ५५—अज्ञानी मोक्षमार्ग अर्थात् मोक्ष का रास्ता कहाँ खोजता है?

उत्तर—जैसे—हिरन की नाभि मे कस्तूरी है। वह बाहर खोजता है, उसी प्रकार अज्ञानी बाहरी क्रियाओ मे, विकारी भावो मे मोक्षमार्ग खोजता है।

प्रश्न ५६—बाहरी क्रियाओ में और शुभभावो में जो मोक्षमार्ग मानता है, उसे जिनवाणी में क्या-क्या कहा है?

उत्तर—(१) श्री समयसार मे नपुसक, व्यभिचारी, मिथ्यादृष्टि,

असयमी, पापी, अन्यमत वाला तथा आत्मावलोकन मे हरामजादीपना आदि कहा है। (२) पचास्तिकाय गा० १६८ मे मिथ्यादृष्टि का शुभ-राग सर्व अनर्थ परम्पराओ रूप दुःख का कारण कहा है। (३) रत्न-करण्ड श्रावकाचार गा० ३३ मे 'ससार' परिभ्रमण ही वताया है।

प्रश्न ५७—मोक्षमार्ग अर्थात् मोक्ष का रास्ता क्या है?

उत्तर—अपने परम पारिणामिक ज्ञायक भगवान का आश्रय लेने से जो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति वह मोक्ष का रास्ता है।

प्रश्न ५८—सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग है इनमे अनेकान्त क्या है?

उत्तर—सम्यग्दर्शनादि ही मोक्षमार्ग है व्यवहार रत्नत्रयादि मोक्ष-मार्ग नही है यह अनेकान्त है।

प्रश्न ५९—व्यवहार मोक्षमार्ग नहीं है, यह किस जीव की बात है?

उत्तर—जिस जीव को सम्यग्दर्शनादि प्रगट हुआ है उसको जो भूमिकानुसार राग होता है वह राग मोक्षमार्ग नही है तथा जो शुद्धि प्रगटी है वह ही मोक्षमार्ग है। मिथ्यादृष्टि के शुभभावो को तो व्यव-हार भी नही कहा जाता है, क्योकि अनुपचार हुए विना उपचार का आरोप नही आता है।

प्रश्न ६०—द्रव्यपुण्य-पाप और शुभाशुभ भावो के सम्बन्ध में क्या-क्या जानना चाहिए?

उत्तर—(१) परमार्थतः पुण्य-पाप (शुभाशुभभाव) आत्मा को अहितकर ही है और यह आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था है। (२) सम्यग्दृष्टि के शुभ भावो से सवर-निर्जरा होती है यह मान्यता खोटी है, क्योकि शुभभाव चाहे ज्ञानी के हो या मिथ्यादृष्टि के हो, दोनो ही बध के कारण है [समयसार कलश टीका कलश ११०] (३) पुण्य छोडकर पापरूप प्रवर्तन ना करे और पुण्य को मोक्षमार्ग ना माने यह यह पुण्य-पाप को जानने का लाभ है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक] (४) द्रव्य पुण्य-पाप आत्मा का हित अहित नही कर सकते हैं।

प्रश्न ६१—विकार पूर्ण किसे होता है ?

उत्तर—किसी को भी नही, क्योकि यदि विकार पूर्ण हो जावे तो जीव के नाश का प्रसग उपस्थित हो जावेगा सो ऐसा होता ही नही।

प्रश्न ६२—भावास्रव अमर्यादित हो तो क्या हो ?

उत्तर—जीव के अभाव का प्रसग उपस्थित होवेगा।

प्रश्न ६३—भावास्रव मर्यादित है यह क्या सूचित करता है ?

उत्तर—जो मर्यादित हो उसका अभाव हो सकता है ऐसा जानकर पात्र जीव निज स्वभाव का आश्रय लेकर भावास्रव का अभाव करके धर्म की शुरुआत करके क्रम से परम दशा को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न ६४—द्रव्यास्रव मर्यादित है या अमर्यादित है ?

उत्तर—मर्यादित है, क्योकि यदि अमर्यादित हो तो सम्पूर्ण कार्माणवर्गणा को द्रव्यकर्मरूप परिणमित होने का प्रसग उपस्थित होवेगा, सो ऐसा होता नही।

प्रश्न ६५—पचाध्यायीकार ने आस्रव को क्या कहा है ?

उत्तर—"आगन्तुकभाव" कहा है।

प्रश्न ६६—संसार का बीज क्या है ?

उत्तर—पर वस्तुओ मे और शुभाशुभ भावो मे एकत्व बुद्धि ही ससार का बीज है। [पुरुपार्थसिद्ध्युपाय गा० १४]

प्रश्न ६७—पचाध्यायी मे ससार का बीज अर्थात् मिथ्यात्व किसे किसे बताया है ?

उत्तर—(१) जो आत्मा कर्मचेतना (राग-द्वेष, मोहरूप) और कर्मफल चेतना (सुख-दुखरूप) बस मेरा आत्मा इतना ही है ऐसा अनुभव करना वह मिथ्यादर्शन है। [गा० ९७२ से ९७४]

(२) आत्मा को नो तत्वरूप (पर्याय के भेदरूप) अनुभव करना और सामान्यरूप (अन्त तत्वरूप) अनुभव नही करना यह मिथ्यादर्शन है [गा० ९८३ से ९९६]

(३) [१] आत्मा का, [२] कर्म का, [३] कर्ता-भोक्तापने का, [४] पाप का, [५] पुण्य-पाप के कारण का, [६] पुण्य-पाप के फल का, [७] सामान्य-विशेष स्वरूप का, [८] राग से भिन्न अपने स्वरूप का, आस्तिक्य का श्रद्धान-ज्ञान ना होना, वह मिथ्यादर्शन है। [गा० १२३३]

(४) सात भय युक्त रहना वह मिथ्यादर्शन है। [गा० १२६४]

(५) इष्ट का नाश न हो जाय, अनिष्ट की प्राप्ति न हो जावे, यह धन नाश होकर दरिद्रता न आ जावे, यह इस लोक का भय है यह मिथ्यादर्शन है। विश्व से भिन्न होने पर भी अपने को विश्वरूप समझना यह मिथ्यादर्शन है। [गा० १२७४ से १२७८]

(६) मेरा जन्म दुर्गति मे न हो जाये ऐसा परलोक का भय यह मिथ्यादर्शन है। [१२८४ से १२९१ तक]

(७) रोग से डरते रहना या रोग आने पर घबराना या उससे (रोग से) अपनी हानि मानना यह वेदना भय मिथ्यादर्शन से होता है। [गा० १२९२ से १२९४ तक]

(८) शरीर के नाश से अपना नाश मानना यह अत्राणभय (वेदना-भय) मिथ्यादृष्टियो को होता है। [गा० १२९९ से १३०१]

(९) शरीर की पर्याय के जन्म से अपना जन्म और शरीर की पर्याय के नाश मे अपना नाश मानना यह अगुप्तिभय मिथ्यादर्शन से होता है। [१३०४ से १३०५]

(१०) दस प्राणो के नाश से डरना या उनके नाश से अपना नाश मानना या मरणभय मिथ्यादर्शन से होता है। [१३०७ से १३०८]

(११) विजली गिरने से या और किसी कारण से मेरी बुरी अवस्था ना हो जाय ऐसा अकस्मात्‌भय मिथ्यादर्शन से होता है। [गा० १३११ से १३१३]

(१२) लोकमूढता, देवमूढता, गुरुमूढता और धर्ममूढता यह मिथ्यादर्शन के चिन्ह हैं। [गा० १३६१ से १३६९]

(१३) नौ तत्त्वो मे अश्रद्धा अर्थात् विपरीत श्रद्धा का होना यह मिथ्यादर्शन है। [गा० १७९२ से १८०९]

(१४) अन्य मतियो के बताये हुए पदार्थो मे श्रद्धा का होना यह मिथ्यादर्शन है। [गा० १७९७]

(१५) आत्मस्वरूप की अनुपलब्धि होना यह मिथ्यादशन है।

(१६) सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों का विश्वास ना होना यह मिथ्यादर्शन है। जैसे—(अ) जो पदार्थ केवलोगम्य हैं वह छदमस्थ को आगम आधार से जानने योग्य है। (आ)—धर्म-अधर्म-आकाश-काल-परमाणु आदि को सूक्ष्म पदाथ कहते हैं क्योकि यह इन्द्रियो से ग्रहण नही होते हैं। (इ)—राम-रावण आदि को अर्थात् जिन पदार्थो मे भूतकाल के बहुत समय का अन्तर हो या आगे बहुत समय बाद होने वाला हो। जैसे—राजा श्रेणिक प्रथम तीर्थंकर होगे तथा दूरवर्ती पदार्थों मे मेरुपर्वत, स्वर्ग, नदी, द्वीप, समुद्र इत्यादिक जिनका छदमस्थ वहाँ पहुँचकर उनका दर्शन नही कर सकता है। अत मिथ्यादृष्टि इनका विश्वास नही करता है यह मिथ्यादशन है। [गा० १८१०]

(१७) मोक्ष के अस्तित्व का और उसमे पाये जाने वाले अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञान के प्रति रुचि ना होना यह मिथ्यादर्शन है। [गा० १८१२]

(१८) जाति अपेक्षा छह द्रव्य का स्वत सिद्ध अनादिअनन्त स्वतत्र परिणमन न मानना यह मिथ्यादर्शन है। [१८१३]

(१९) प्रत्येक द्रव्य को नित्य-अनित्य, एक अनेक, अस्ति-नास्ति तत्-अतत् आदि स्वरूप वस्तु अनेकान्तात्मक है ऐसा न मानना किन्तु एकान्तरूप मानना यह मिथ्यादर्शन है। [गा० १८१४]

(२०) नोकर्म (शरीर-मन-वाणी) भावकर्म (क्रोधादिशुभाशुभ-भाव) और धन-धान्यादि जो अनात्मीय वस्तुएँ हैं उनको आत्मीय [illegible]ना यह मिथ्यादर्शन है।

(२१) झूठे देव-गुरु-धर्म को सच्चेवत् समझना अर्थात् सच्चे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा न होना यह मिथ्यादर्शन है। [गा० १८१६]

(२२) धन, धान्य, सुता आदि की प्राप्ति के लिए देवी आदि को पूजना या अनेक कुकर्म करना यह मिथ्यादर्शन है। [गा० १८१७]

प्रश्न ६८—आपने मिथ्यात्व के जो २२ लक्षण बताये हैं यह तो पंचाध्यायी के ही बताये हैं क्या और किसी शास्त्र में नहीं हैं ?

उत्तर—भाई चारो अनुयोगो के सब शास्त्रो मे यही लक्षण बताये है।

प्रश्न ६९—श्री प्रवचनसार मे मिथ्यात्व का क्या लक्षण बताया है ?

उत्तर—(१) (अ) पदार्थों का अयथाग्रहण, (आ) तिर्यंच-मनुष्यो के प्रति करुणाभाव, (इ) विषयो की सगति अर्थात् इष्ट विषयो मे प्रीति और अनिष्ट विषयो मे अप्रीति यह सब मोह के चिन्ह (लक्षण) हैं। [गा० ८५]

(२) (अ) जीव के द्रव्य-गुण-पर्याय सम्बन्धी मूढभाव वह मोह-भाव है। (आ) उससे आच्छादित वर्तता हुआ जीव राग-द्वेष को प्राप्त करके क्षुब्ध होता है। (गा० ८३)

(३) जो श्रमण अवस्था मे इन अस्तित्व वाले विशेष सहित पदार्थों की श्रद्धा नही करता वह श्रमण नही है उसे धर्म प्राप्त नही होता है। [गा० ९१]

(४) आगमहीन श्रमण निज और पर को नही जानता वह जीवादि पदार्थों को नही जानता हुआ भिक्षु द्रव्य-भावकर्मों को कैसे क्षय करे ? [गा० २३३]

(५) द्रव्यलिंगी मुनि को ससार तत्व कहा है। [गा० २७१]

(६) सूत्र सयम और तप से सयुक्त होने पर भी (वह जीव) जिनोक्त आत्म प्रधान पदार्थों का श्रद्धान नही करता तो वह श्रमण नही है। [गा० २६४]

(७) असमानजातीय द्रव्यपर्याय मे एकत्वबुद्धि यह मिथ्यादर्शन है। [गा० ६४]

प्रश्न ७०—क्या मिथ्यादर्शन का स्वरूप श्री समयसार में भी आया है ?

उत्तर—(१) द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म मे एकत्वबुद्धि मिथ्यादर्शन है। [गा० १६] (२) जब तक यह आत्मा प्रकृति के निमित्त से उपजना-विनशना नही छोडता है तब तक अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, असयत है। [गा० ३१४]

(३) (१) शुभाशुभभावो मे और ज्ञप्ति क्रिया मे (२) देव-नारकी और ज्ञायक आत्मा मे (३) ज्ञेय और ज्ञान मे एकत्वबुद्धि मिथ्यादर्शन है, एकत्व का ज्ञान मिथ्याज्ञान है और एकत्व का आचरण मिथ्याचारित्र है। [गा० २७०]

(४) जो बहुत प्रकार के मुनिलिंगो मे अथवा गृहस्थी लिंगो में ममता करते हैं अर्थात् यह मानते हैं कि द्रव्यलिंग ही मोक्ष का दाता है उन्होने समयसार को नही जाना। उसे [अ] 'अनादिरुढ' [आ] 'व्यवहार मे मूढ' [इ] और 'निश्चय पर अनारुढ' कहा है यह सब मिथ्यात्व का प्रभाव है। [गा० ४१३]

प्रश्न ७१—छहढाला में अगृहीत मिथ्यादर्शन किसे-किसे कहा है ?

उत्तर—(१) आत्मा का स्वभाव ज्ञानदर्शन है। इसको भूलकर शरीर आदि की पर्याय को आत्मा की मान लेना, शरीर आश्रित उपवास आदि और उपदेशादि मे अपनेपने की बुद्धि होना यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (२) शरीर की उत्पत्ति मे अपनी उत्पत्ति और शरीर के बिछुडने पर अपना मरण मानना अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) शुभाशुभ भाव प्रगट दु.ख के देने वाले हैं उन्हे सुखकर मानना अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (४) शुभाशुभ भाव एक रूप ही है और बुरे ही है परन्तु अपने आप का अनुभव ना होने से अशुभ कर्मो के फल मे द्वेष

और शुभकर्मों के फल मे राग करना यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (५) निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीव को हितकारी हैं स्वरूप स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव वह वैराग्य है और सुख कारण है परन्तु निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक मानना यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (६) सम्यग्ज्ञान पूर्वक इच्छाओ का अभाव ही निर्जरा है और वही आनन्दरूप है परन्तु अपनी शक्ति को भूलकर इच्छाओ की पूर्ति मे सुख मानना अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (७) मुक्ति मे पूर्ण निराकुलतारूप सच्चा सुख है उसके बदले भोग सम्बन्धी सुख को ही सुख मानना यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न ७२—भावदीपिका में अगृहीत मिथ्यात्व कितने प्रकार का बताया है ?

उत्तर—आठ प्रकार का बताया है। (१) परद्रव्य मे अहबुद्धि-रूप—यह मिथ्यात्व भाव है। (२) परगुण मे अहवुद्धि रुप यह मिथ्यात्व भाव है। (३) पर पर्यायो मे अहवुद्धि रूप— यह मिथ्यात्व भाव है। (४) पर द्रव्य मे ममकार बुद्धिरूप—यह मिथ्यात्व भाव है। (५) पर गुण मे ममकार बुद्धि रूप—यह मिथ्यात्व भाव है। (६) पर पर्याय मे ममकार बुद्धि रूप—यह मिथ्यात्व भाव है। (७) दृष्टिगोचर पुद्गल पर्यायो मे द्रव्य बुद्धिरूप—यह मिथ्यात्व भाव है। (८) अदृष्टि-गोचर द्रव्य-गुण-पर्यायो मे अभावरूपबुद्धि—यह मिथ्यात्व भाव है।

प्रश्न ७३—परद्रव्य मे अहबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है ?

उत्तर—पर द्रव्य जो शरीर पुद्गल पिण्ड उसमे जो अहवुद्धि "यह मैं हूँ" यह पर द्रव्य मे अहबुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव है।

प्रश्न ७४—परगुण में अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है ?

उत्तर—पुद्गल के स्पर्शादिगुण उनमे अहबुद्धि होना। जैसे—मैं गरम, मैं ठण्डा, मैं कोमल, मैं कठोर, मैं हल्का, मैं भारी, मैं रूखा, मैं खट्टा, मैं मीठा, मैं कडुवा, मैं चरपरा, मैं कषायला, मैं दुर्गंधीवाला,

मैं काला, मैं गोरा, मै लाल, मै हरा, मैं पीला इत्यादि यह पर गुणो मे अहवुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव है।

प्रश्न ७५—परपर्यायो मे अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर—मै देव, मैं नारकी, मै मनुष्य, मैं तिर्यंच, और इनके एकेन्द्रिय आदि अवान्तर भेद-प्रभेद मे अहवुद्धि होना यह पर पर्यायो मे अहवुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव है।

प्रश्न ७६—परद्रव्य में ममकार बुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर—मेरा घन, यह मेरा मकान, यह मेरे आभूषण, यह मेरे कपडे, यह मेरा बक्सा, यह मेरा पलग, यह मेरा वाग, यह मेरी घडी, यह मेरे दस हजार के नोट, यह मेरा पुस्तकालय, यह मेरा भोजन इत्यादि पर वस्तुओ मे ममकारपना, यह पर द्रव्यो मे ममकार वुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव है।

प्रश्न ७७—पर गुण में ममकार बुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर—शरीर के वल वीर्य को ऐसा मानना कि यह मेरा बल ऐसा है कि अनेक पराक्रम करूँ, यह मेरा शब्द, यह मेरी चाल, यह मेरी ऊँगलियाँ, यह मेरा मुँह, यह मेरा नाक, यह मेरा कान, यह मेरा दान्त इत्यादि अनेक कार्यो मे प्रवृत्ति होना यह पर गुणो मे ममकार बुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव है।

प्रश्न ७८—पर पर्याय मे ममकार बुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर—यह मेरे पुत्र, यह मेरी स्त्री, यह मेरी माता, यह मेरे पिता, यह मेरे भाई, यह मेरी वहिन, यह मेरे नौकर, यह मेरी प्रजा, यह मेरे हाथी, यह मेरे घोडे, यह मेरी गाय-भैंस इत्यादि मे ममकारबुद्धि होना, यह पर पर्यायो मे ममकार बुद्धिरूप मिथ्यात्व भाव है।

प्रश्न ७९—दृष्टिगोचर पुद्गल पर्यायों मे द्रव्य बुद्धिरूप मिथ्यात्व-भाव क्या है?

उत्तर—दृष्टि मे जितनी पुद्गल की पर्याय आती हैं उनको जुदा-जुदा द्रव्य मानता है। जैसे ये घट है, यह स्वर्ण है, यह पाषाण है, ये

पर्वत है, ये वृक्ष हैं, यह मनुष्य है, यह हाथी है, यह घोडा है, यह चिड़िया है, यह स्यार, यह सिंह है, यह सूर्य है, यह चन्द्रमा है, यह लड़का है, यह लड़की है, यह जयपुर नरेश है, यह राष्ट्रपति है, यह बहू है, इत्यादि समानजातीय और असमानजातीय द्रव्य पर्यायो मे द्रव्यबुद्धि को धारण करता है, उनका पृथक्-पृथक् सत्त्व मानता है। अर्थात् वर्तमान क्षणिक पर्यायो को ही द्रव्य मानता है। त्रैकालिक सत्ता सहित गुण पर्यायरूप द्रव्य नही मानता है यह दृष्टिगोचर पुद्गल पर्यायो मे द्रव्य बुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न ८०—अदृष्टिगोचर द्रव्य-गुण-पर्यायो में अभाव बुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर—(१) जो दृष्टिगोचर नही ऐसे जो दूर क्षेत्रवर्ती, (२) हो कर नाश हो गई, (३) अनागत मे होगी, (४) इन्द्रियो से अगोचर सूक्ष्म पर्याय इत्यादिक जो अपनी और पर की है उनको अभावरूप मानता है। इनका सत्व हो चुका, होयेगा, या वर्तमान मे है, ऐसा नही मानता है इत्यादि सब मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न ८१—आपने जो आठ प्रकार का मिथ्यात्वभाव बताया है यह कैसा मिथ्यात्व है और क्यो है?

उत्तर—यह अगृहीत मिथ्यात्व है। बिना सिखाये अनादि से एक-एक समय करके चला आ रहा है। पर भाव योग्य सर्व पर्याय, सदा-काल, सर्व क्षेत्र मे, मिथ्यादृष्टियो के प्रवर्तता है। किसी के द्वारा कदा-चित् उपदेशित नही, इस वास्ते इसे अगृहीतमिथ्यात्व कहा है।

प्रश्न ८२—गृहीत मिथ्यात्व क्या है?

उत्तर—(१) देव (२) गुरु (३) धर्म (४) आप्त (हितउपदेशक) (५) आगम (६) नौ पदार्थ इनका उल्टा श्रद्धान यह गृहीत मिथ्यात्व है।

प्रश्न ८३—जीव का प्रयोजन क्या है?

उत्तर—दुख का अभाव और सुख की प्राप्ति यह ही एक मात्र जीव का प्रयोजन है।

प्रश्न ८४—दुःख का अभाव और सुख की प्राप्ति के लिये निमित्त कारण किसको माने तो कल्याण का अवकाश है ?

उत्तर—(१) देव-गुरु-धर्म, आप्त, आगम और नौ पदार्थ का आज्ञानुसार प्रवर्तन करे, तो कल्याण का अवकाश है।

प्रश्न ८५—देव किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) निज स्वभाव के साधन द्वारा अनन्तचतुष्टय प्राप्त किया है और १८ दोष जिसमे नही हैं और जिनके वचन से धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति होती है, जिससे अनेक पात्र जीवो का कल्याण होता है। जिनको अपने हित के अर्थी श्री गणधर इन्द्रादिक उत्तम जोव उनका सेवन करते हैं। इस प्रकार अरहत और सिद्धदेव है। इसलिए ऐसे देव की आज्ञानुसार प्रवर्तन करने से धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है, अत इन्ही देव को मानना चाहिए। आयुध अम्बरादि वा अग विकरादि जो काम-क्रोधादि निद्य भावो के चिन्ह है ऐसे कुदेवो को नही मानना चाहिए।

प्रश्न ८६—गुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो विरागी होकर समस्त परिग्रह को छोडकर शुद्धोपयोग रूप परिणमित हुए हैं, ऐसे आचार्य-उपाध्याय और सर्व साधु-गुरु है बाकी सब गुरु नही हैं। इसलिए ऐसे गुरु को ही मानना चाहिए, औरो को नही।

प्रश्न ८७—धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) निश्यधर्म तो वस्तुस्वभाव है। (२) राग-द्वेष रहित अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव मे स्थिर होना वह निश्चय धर्म है अर्थात् चारो गतियो के अभाव रूप अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करावे वह धर्म है। (३) पूर्ण धर्म ना होने पर मोक्षमार्ग अर्थात् सवर-निर्जरा रूप धर्म होता है। उसमे निश्चय-व्यवहार का जैसा स्वरूप है वैसा समझना चाहिए। इससे विरुद्ध जो परसे, विकार से धर्म बताये उससे बचना चाहिए।

प्रश्न ८८—आप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव का परम हित मोक्ष है उसके उपदेष्टा वह आप्त है आप्त दो प्रकार का है एक मूल आप्त अरहंत देव हैं और उत्तर आप्त गणधरादिक, मुनि, श्रावक और सम्यग्दृष्टि भी उत्तर आप्त मे आते हैं। क्योकि वह भी उन्ही के अनुसार वीतराग, सर्वज्ञ और हित का उपदेश देते हैं। इसलिए पात्र जीवो को ज्ञानियो का सत्सग करना चाहिए अज्ञानियो का नही। [भावदीपिका]

प्रश्न ८९—आगम किसे कहते हैं ?

उत्तर—आगम अर्थात् दिव्यध्वनि जिनवाणी है जो परम्परा या साक्षात् एक वीतरागभाव का पोषण करे वह आगम है, क्योकि आगम का तात्पर्य दुख का अभाव सुख की प्राप्ति है। अब कलिकाल के दोष से कषायी पुरुषो द्वारा शास्त्रो मे अन्यथा अर्थ का मेल हो गया है इसलिए जैन न्याय के शास्त्रो की ऐसी आज्ञा है कि (१) आगम का सेवन (२) युक्ति का अवलम्बन (३) पर और अपर गुरु का उपदेश (४) स्वानुभव, इन चार विशेषो का आश्रय करके अर्थ की सिद्धि करके ग्रहण करना, क्योकि अन्यथा अर्थ के ग्रहण होने से जीव का बुरा होता है।

प्रश्न ९०—पदार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर—पद का अर्थ=अर्थात् प्रयोजन, उसको पदार्थ कहते हैं। नौ प्रकार के पदार्थों का स्वरूप जैसा जिनागम मे कहा है, वैसे ही स्वरूप सहित ग्रहण करना चाहिए, क्योकि यह प्रयोजनभूत पदार्थ है। जैसा स्वरूप कहा है उस ही स्वरूप करि ग्रहण करना मोक्ष का कारण है। अन्यथा स्वरूप का ग्रहण करने से ससार परिभ्रमण होता है।

प्रश्न ९१—आपने देव, गुरु, धर्म आप्त, आगम और पदार्थों को मोक्ष के कारण (निमित्त) बताये हैं यह क्यो बताये हैं ?

उत्तर—इन छह निमित्तो मे से एक की भी हानि हो जावे तो मोक्षमार्ग की हानि हो जाती है क्योकि :—(१) देव न होय तो

धर्म किसके आश्रय प्रवर्ते। (२) गुरु न होय तो धर्म का ग्रहण कौन करावे। (३) धर्म को ग्रहण न करे तो मोक्ष की सिद्धि किसके द्वारा की जाय। (४) आप्त का ग्रहण न होय तो सत्य धर्म का उपदेश कौन दे। (५) आगम का ग्रहण ना होय तो मोक्षमार्ग मे अवलम्वन किस का करे। (६) पदार्थों का ज्ञान ना कीजिये तो [अ] आप का और पर का, [आ] अपने भावो का और पर भावो का, [इ] हेय भावो का और उपादेय भावो का, [ई] अहित का और अपने परमहित का कैसे ठीक होवे। इसलिए इन छह निमित्तो को मोक्षमार्ग मे वताया है।

प्रश्न ६२—इन छह निमित्तो को गृहीत मिथ्यात्व क्यो कहा है ?

उत्तर—इन छह निमित्तो को गृहीत मिथ्यात्व नही कहा है परन्तु इनके उल्टेपने के श्रद्धान को गृहीतमिथ्यात्व कहा है। उल्टे निमित्तो के मानने से जीव का वहुत बुरा होता है।

प्रश्न ६३—उल्टे निमित्तो के मानने से जीव का बहुत बुरा होता है वे उल्टे निमित्त क्या-क्या हैं ?

उत्तर—सर्व प्रकार से धर्म को जानता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव किसी धर्म के अग को मुख्य करके अन्य धर्मों को गौण करता है। जैसे (१) कई जीव दया-धर्म को मुख्य करके पूजा प्रभावनादि कार्य का उत्थान करते हैं (२) कितने ही पूजा प्रभावनादि धर्म को मुख्य करके हिंसादिक का भय नही रखते (३) कितने ही तप की मुख्यता से आर्त-ध्यानादिक करके भी उपवासादि करते है तथा अपने को तपस्वी मान-कर नि शक क्रोधादि करते है (४) कितने ही दान की मुख्यता से वहुत पाप करके भी धन उपार्जन करके दान देते है (५) कितने ही आरम्भ त्याग की मुख्यता से याचना आदि करते हैं, इत्यादि प्रकार से किसी धर्म को मुख्य करके अन्य धर्म को नही गिनते तथा उनके आश्रय से पाप का आचरण करते हैं। [मोक्षमार्ग प्रकाशक]

प्रश्न ६४—क्या यह उनका कार्य ठीक नहीं है और ठीक क्या है ?

उत्तर—उनका यह कार्य ऐसा हुआ जैसे—अविवेकी व्यापारी को किसी व्यापार मे नफे के अर्थ अन्य प्रकार से वहुत टोटा पडता

चाहिए तो ऐसा कि—जैसे व्यापारी का प्रयोजन नफा है सर्व विचार कर जैसे—नफा वहुत हो वैसा करे, उसी प्रकार ज्ञानी का प्रयोजन वीतराग भाव है, सर्व विचार कर जैसे वीतराग भाव वहुत हो वैसा करे; क्योकि मूल धर्म वीतराग भाव है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक]

प्रश्न ९५—सम्यग्दर्शन के विना कितने ही जीव जिनवर कथित अणुव्रत, महाव्रतादि का पालन करते हैं, क्या वह जीव भी उल्टे निमित्तों मे आते हैं?

उत्तर—हाँ भाई, वे भी उल्टे निमित्तो मे ही आते है क्योकि कुन्द-कुन्द भगवान ने प्रवचनसार मे उन्हे ससारतत्व कहा है।

प्रश्न ९६—सम्यग्दर्शन के विना पदार्थ महाव्रतादि का साधन क्या है?

उत्तर—कितने ही जीव अणुव्रत-महाव्रतादिरूप यथार्थ आचरण करते है और आचरण के अनुसार ही परिणाम हैं, कोई माया-लोभादिक का अभिप्राय नही, अणुव्रत-महाव्रतादि को धर्म जानकर मोक्ष के अर्थ उनका साधन करते हैं, किन्ही स्वर्गादिक के भोगो की भी इच्छा नही रखते, परन्तु तत्त्वज्ञान पहले नही हुआ है। इसलिए आप तो जानते हैं कि मैं मोक्ष का साधन कर रहा हूँ, परन्तु जो मोक्ष का साधन है उसे जानते भी नही, केवल स्वर्गादिक ही का साधन करते है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक)

प्रश्न ९७—कुन्दकुन्दादि आचार्यों का क्या कहना है?

उत्तर—प्रथम तत्त्वज्ञान हो और पश्चात् चारित्र हो तो सम्यक् चारित्र नाम पाता है। जैसे—कोई किसान बीज तो बोये नही और अन्य साधन करे तो अन्न प्राप्ति कैसे हो? घास-फूस ही होगा, उसी प्रकार अज्ञानी तत्त्व ज्ञान का तो अभ्यास करे नही और अन्य साधन करे, तो मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो? देवपद आदि ही होगे। इसलिए पात्र जीवो को प्रथम जिनवर कथित तत्व का यथार्थ अभ्यास करके सम्यग्दर्शनादिक की प्राप्ति करने का आचार्यों का आदेश है।

प्रश्न ९८—आजकल तो कोई जीव छहद्रव्य, सात तत्वो के नाम लक्षणादि भी नहीं जानते और व्रतादि मे प्रवर्तते हैं, क्या वे आत्महित साध सकते हैं ?

उत्तर—वे जीव आत्महित नही साध सकते है। शास्त्रो मे आया है कि कितने ही जीव तो ऐसे हैं जो तत्वादिक के भली भाँति नाम भी नही जानते केवल व्रतादिक मे ही प्रवर्तते है। कितने ही जीव ऐसे है जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान का अयथार्थ साधन करके व्रतादि मे प्रवर्तते है। यद्यपि वे व्रतादि का यथार्थ आचरण करते है तथापि यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है।

प्रश्न ९९—सम्यग्दर्शन के बिना व्रतादि में प्रवर्तते हैं वह मोक्ष का साधन नहीं है ऐसा कहीं श्री अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है ?

उत्तर—कलश १४२ मे श्री प० राजमल जी ने लिखा है कि 'विशुद्ध शुभोपयोग रूप परिणाम, जैनोक्त सूत्र का अध्ययन, जीवादि द्रव्यो के स्वरूप का वारम्बार स्मरण, पच परमेष्टी की भक्ति इत्यादि है जो अनेक क्रिया भेद उनके द्वारा वहुत घटाटोप करते हैं तो करो, तथापि शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होगी सो तो शुद्ध ज्ञान (ज्ञायक स्वभाव) द्वारा होगी। तथा महाव्रतादि परम्परा आगे मोक्ष का कारण होगी, ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है सो झूठा है। महा परीपहो का सहना बहुत वोझ उसके द्वारा बहुत काल पर्यन्त मरके चूरा होते हुए वहुत कष्ट करते है, तो करो तथापि ऐसा करते हुए कर्मक्षय तो नही होता।'

प्रश्न १००—पचास्तिकाय गा० १७२ मे क्या बताया है ?

उत्तर—तेरह प्रकार का चारित्र होने पर भी उसका मोक्षमार्ग मे निषेध किया है।

प्रश्न १०१—प्रवचनसार मे क्या वताया है ?

उत्तर—आत्म अनुभव बिना सयमभाव को अनर्थकारी कहा है। क्योकि तत्वज्ञान होने पर ही आचरण कार्यकारी कहा जाता है।

प्रश्न १०२—सम्यग्दर्शन के बिना अणुव्रत-महाव्रतादि साधन को क्या बताया है ?

उत्तर—अन्तरग परिणाम नही है और स्वर्गादिक की वाछा से साधते है, सो इस प्रकार साधने से तो पाप वन्ध होता है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक)

प्रश्न १०३—आपने छह निमित्तो के अन्यथा रूप प्रवृत्ति को गृहीतमिथ्यात्व कहा है। परन्तु शास्त्रो मे (१) एकान्त, (२) विनय, (३) सशय, (४) विपरीत, (५) अज्ञान को गृहीतमिथ्यात्व कहा है, ऐसा क्यो कहा है ?

उत्तर—गृहीत मिथ्यात्व के पाँच प्रकार प्रवर्ता हैं इसलिए प्रवर्ता की अपेक्षा गृहीत मिथ्यात्व के मूलभेद पाँच प्रकार किये है। उत्तर भेद असख्यात लोक प्रमाण है।

प्रश्न १०४—स्व क्या है और पर क्या है ?

उत्तर—(१) अमूर्तिक प्रदेशो का पुँज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो का धारी, अनादिनिधन; वस्तु स्व है। (२) मूर्तिक पुद्गल द्रव्यो का पिण्ड, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो से रहित, नवीन ही जिसका सयोग हुआ है ऐसे शरीरादिक; पुद्गल पर है। जैसा स्व का स्वरूप है वैसा माने तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है। परन्तु अज्ञानी अनादि से पर को स्व मानता है और स्व को पर मानता है इसलिए चारो गतियो मे घूमता है। अब पात्र जीव को अपने स्व को स्व, और पर को पर जानकर मोक्ष रूपी लक्ष्मी का नाथ बनना चाहिए।

प्रश्न १०५—आपने इतने विस्तार से गृहीत मिथ्यात्व और अगृहीत मिथ्यात्व का स्वरूप क्यों समझाया है ?

उत्तर—ऊपर कहे गये अनुसार मिथ्यात्व का स्वरूप जानकर सब जीवो को गृहीत मिथ्यात्व तथा अगृहीत मिथ्यात्व छोडना चाहिए क्योकि सब प्रकार के बन्ध का मूल कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व को

नष्ट किये विना अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कभी दूर नही हाते, इसलिए सबसे पहले मिथ्यात्व को दूर करना चाहिए।

प्रश्न १०६—मिथ्यात्व को सबसे पहले क्यो दूर करना चाहिए?

उत्तर—मिथ्यात्व सात व्यसनो से भी वढकर भयकर महापाप है, इसलिए जैनधर्म सर्वप्रथम मिथ्यात्व को छोडने का उपदेश देता है।

प्रश्न १०७—आचार्यकल्प पं० टोढरमल जी ने मिथ्यात्व के विषय में क्या कहा है?

उत्तर—हे भव्यो! किंचित् मात्र लोभ से व भव से कुदेवादिक का सेवन करके, जिससे अनन्तकाल पर्यन्त महादु ख सहना होता है ऐसा मिथ्यात्वभाव का करना योग्य नही है। जिन धर्म मे तो यह आम्नाय है कि पहले वडा पाप छुडाकर फिर छोटा पाप छुडाया है, इसलिए इस मिथ्यात्व को सप्त व्यसनादिक से भी वडा पाप जानकर छुडाया है। इसलिए जो पाप के फल से डरते हैं, अपने आत्मा को दु ख समुद्र मे डुवाना नही चाहते, वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोडो। (मोक्षमार्ग प्रकाशक)

प्रश्न १०८—जो जीव इन मिथ्यात्वो के प्रकारो को जानकर दूसरे का दोष देखते हैं अपना नहीं देखते। उसके लिए आचार्यकल्प प० टोडर मल ने क्या कहा है?

उत्तर—"मिथ्यात्व के प्रकारो को पहिचानकर अपने मे ऐसा दोष हो, तो उसे दूर करके सम्यक् श्रद्धानी होना, औरो के ही ऐसे दोष देख-देखकर कषायी नही होना, क्योकि अपना भला-वुरा तो अपने परिणामो से है। औरो को तो रुचिवान देखें, तो कुछ उपदेश देकर उनका भी भला करे। इसलिये अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना याग्य है, सव प्रकार के मिथ्यात्व भाव छोडकर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है, क्योकि ससार का मूल मिथ्यात्व है और मोक्ष का मूल सम्यक्त्व है और मिथ्यात्व के समान अन्य पाप नही हैं। इसलिए जिस-

तिस उपाय से सर्व प्रकार से मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है। (मोक्षमार्ग प्रकाशक)

प्रश्न १०९—मोक्ष के प्रयत्न में कितनी बातें एक साथ होती हैं, और कौन-कौन सी होती हैं ?

उत्तर—मोक्ष के प्रयत्न मे पाच बाते एक साथ होती हैं। (१) ज्ञायक स्वभाव (२) पुरुपार्थ, (३) काललब्धि (४) भवितव्य, और (५) कर्म के उपशमादि। यह पाँच बातें धर्म करने की एक साथ होती हैं।

प्रश्न ११०—यह स्वभाव आदि पांच बातें कारण हैं या कार्य है ?

उत्तर—कारण हैं, कार्य नही हैं।

प्रश्न १११—स्वभाव क्या है ?

उत्तर—अनन्त गुणो का अभेद पिण्ड ज्ञायक भगवान आत्मा अपना स्वभाव है।

प्रश्न ११२—पुरुषार्थ क्या है ?

उत्तर—अपने ज्ञान गुण की पर्याय जो पर सन्मुख है, उसे अपने स्वभाव के सन्मुख करना यह पुरुषार्थ है। यह क्षणिक उपादान कारण है।

प्रश्न ११३—काललब्धि क्या है ?

उत्तर—(१) वह कोई वस्तु नही किन्तु जिस काल मे कार्य बने वही काललब्धि है। (२) यहाँ कालादि लब्धि मे काललब्धि का अर्थ स्वकाल की प्राप्ति होता है। (३) भगवान श्री जयसेनाचार्य ने समय-सार गा० ७१ मे काललब्धि को धर्म पाने के समय "श्री धर्मकाललब्धि" के नाम से सम्बोधन किया है।

प्रश्न ११४—भवितव्य क्या है ?

उत्तर—(१) भवितव्य अथवा नियति, उस समय पर्याय की योग्यता है यह भी क्षणिक उपादान कारण है। (२) जो कार्य होना था, सो हुआ इसको भवितव्य कहते हैं।

प्रश्न ११५—कर्म के उपशमादि क्या है ?

उत्तर—पुद्गल द्रव्य की अवस्था है।

प्रश्न ११६—कर्म के उपशमादिक का कर्त्ता कौन है और कौन नहीं है ?

उत्तर—कर्म के उपशमादिक तो पुद्गल की पर्याये हैं। उनका कर्ता कार्माणवर्गणा है, जीव और अन्य वर्गणा मे इनका कर्ता नही हैं।

प्रश्न ११७—कर्म के उपशमादिक का और आत्मा का कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर—जब आत्मा यथार्थ पुरुषार्थ करता है तब कर्म के उपशमादिक स्वय स्वत हो जाते हैं। इनका स्वतन्त्र रूप से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। जो स्वतन्त्रता का सूचक है, परतन्त्रता का सूचक नही है।

प्रश्न ११८—इन पांच कारणो मे से किसके द्वारा मोक्ष का उपाय बनता है ?

उत्तर—जब जीव अपने ज्ञायक स्वभाव के सन्मुख होकर यथार्थ पुरुषार्थ करता है, तब काललब्धि, भवितव्य और कर्म के उपशमादिक स्वयमेव हो जाते हैं।

प्रश्न ११९—'समवाय' किसे कहते हैं ?

उत्तर—मिलाप, समूह को समवाय कहते हैं।

प्रश्न १२०—मोक्ष मे किसकी मुख्यता है ?

उत्तर—पुरुषार्थ की मुख्यता है।

प्रश्न १२१—जीव का कर्त्तव्य क्या है ?

उत्तर—जीव का कर्तव्य तो तत्त्वनिर्णय का अभ्यास (अपने स्वभाव का आश्रय) ही है। वह करे तब दर्शनमोह का उपशम स्वयमेव होता है, किन्तु द्रव्यकर्म मे जीव का कुछ भी कर्त्तव्य नही है।

प्रश्न १२२—मोक्ष के उपाय के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर—जिनेश्वर देव के उपदेशानुसार पुरुपार्थ पूर्वक उपाय करना चाहिए। इसमे निमित्त और उपादान दोनो आ जाते हैं।

प्रश्न १२३—जिनेश्वर देव ने मोक्ष के लिए क्या उपाय बताया है?

उत्तर—जो जीव पुरुपार्थ पूर्वक मोक्ष का उपाय करता है, उसे तो सर्वकारण मिलते है और अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। काललब्धि, भवितव्य, कर्म के उपशमादिक कारण मिलाना नही पडते, किन्तु जो जीव पुरुषार्थ पूर्वक मोक्ष का उपाय करता है, उसे तो सब कारण मिल जाते है और जो उपाय नही करता, उसे कोई कारण नही मिलते। और ना उसे धर्म की प्राप्ति होती है। ऐसा निश्चय करना। [मोक्षमार्ग प्रकाशक]

प्रश्न १२४—क्या जीव को काललब्धि, भवितव्य और कर्म के उपशमादिक जुटाने नहीं पडते है?

उत्तर—जुटाने नही पडते है वास्तव मे जब जीव स्वभाव सन्मुख यथार्थ पुरुषार्थ करता है तब वे कारण स्वय होते हैं।

प्रश्न १२५—रागादिक कैसे दूर हो?

उत्तर—जैसे—पुत्र का अर्थी विवाहादि का तो उद्यम करे और भवितव्य स्वयमेव हो तब पुत्र होगा, उसी प्रकार विभाव दूर करने का कारण तो बुद्धिपूर्वक तत्व विचारादि (रुचि और लीनता) है और अबुद्धिपूर्वक मोहकर्म के उपशमादिक हैं। सो तत्व का अर्थी (सच्चा सुख पाने का अर्थी) तत्व विचारादिक का तो उद्यम करे और मोह-कर्म के उपशमादिक स्वयमेव हो तब रागादिक दूर होते है।

प्रश्न १२६—श्री समयसार नाटक मे 'शिवमार्ग' किसे कहा है?

उत्तर—स्वभाव आदि पाँचो को सर्वांगी मानना उसे शिवमार्ग कहा है। और किसी एक को ही मानना, यह पक्षपात होने से मिथ्या-मार्ग कहा है।

प्रश्न १२७—कोई कहे काललब्धि पकेगी तभी धर्म होगा क्या यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—यह मान्यता खोटी है, क्योकि ऐसी मान्यता वाले ने पाँच समवायो को एक साथ नही माना, मात्र एक काललब्धि को ही माना इसलिए वह एकान्त कालवादी गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न १२८—जगत में सब भवितव्य के आधीन हैं जब धर्म होना होगा तब होगा, क्या यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—बिल्कुल नही, क्योकि इस मान्यता वाले ने पाँचो समवायो को एक साथ नही माना, मात्र एक भवितव्य को ही माना इसलिए वह एकान्त नियतिवादी गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न १२९—कोई अकेले मात्र द्रव्यकर्म को ही माने तो क्या ठीक है ?

उत्तर—यह भी मिथ्या है, क्योकि इस मान्यता वाले ने पांच समवायो को एक साथ नही माना, मात्र एक द्रव्यकर्म के उपशमादिक को ही माना इसलिए वह एकान्त कर्मवादी गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न १३०—कोई मात्र स्वभाव को ही माने क्या ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल नही, क्योकि इस मान्यता वाले ने पाँचो समवायो को एक साथ नही माना मात्र स्वभाव को ही माना इसलिए यह स्वभाववादी गृहीत मिथ्यादृष्टि है और वेदान्त की मान्यता वाला है।

प्रश्न १३१—कोई मात्र पुरुषार्थ ही चिल्लाये और बाकी स्वभाव आदि को न माने तो क्या ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल गलत है, इस मान्यता वाले ने भी पाँच समवायो को एक साथ नही माना, मात्र पुरुषार्थ को ही माना इसलिए यह बौद्ध मतावलम्बी गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न १३२—पांचो समवायो मे द्रव्य-गुण-पर्याय कौन-कौन हैं ?

उत्तर—सामान्य ज्ञायक स्वभाव वह द्रव्य है। और शेष चार पर्यायें हैं।

प्रश्न १३३—कोई तत्त्वनिर्णय ना होने मे कर्म का ही दोष निकाले, तो क्या ठीक है ?

उत्तर—तत्वनिर्णय न करने मे कर्म का कोई दोप नही है किन्तु जीव का ही दोष है। जो जीव कर्म का दोप निकालता है, वह अपना दोष होने पर भी कर्म पर दोप डालता है, वह अनीति है। जो सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा माने उसके ऐसी अनीति नही हो सकती है। जिसे धर्म करना अच्छा नही लगता, वह ऐसा झूठ बोलता है। जिसे मोक्ष सुख की सच्ची अभिलाषा हो, वह ऐसी झूठी युक्ति नही बनायेगा।
[मोक्षमार्ग प्रकाशक]

प्रश्न १३४—क्या करे, तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर नियम से मोक्ष हो ?

उत्तर—(१) जीव का कर्त्तव्य तो तत्वज्ञान का अभ्यास ही है और उसी से स्वयमेव दर्शनमोह का उपशम होता है। दर्शनमोह के उपशमादिक मे जीव का कर्त्तव्य कुछ भी नही है। (२) तत्पश्चात ज्यों-त्यो जीव स्वसन्मुखता द्वारा वीतरागता मे वृद्धि करता है त्यो-त्यों श्रावकदशा, मुनिदशा प्रगट होती है। (३) उस दशा मे भी जीव अपने ज्ञायक स्वभाव मे रमणतारूप पुरुषार्थ द्वारा धर्म परिणति (श्रेणी) को बढाता है वहाँ परिणाम सर्वथा शुद्ध होने पर केवलज्ञान, केवलदर्शन और मोक्षदशारूप सिद्ध पद प्राप्त करता है।

प्रश्न १३५—स्वभाव, पुरुषार्थ आदि पाँचो समवाय किसमें लगते हैं ?

उत्तर—ससार मे जितने भी कार्य हैं उन सब मे यह पाँचो समवाय एक साथ लगते हैं। लेकिन यहाँ पर मोक्ष की बात है।

प्रश्न १३६—ससार में जो कार्य हम करते हैं, क्या वह सब पुरुषार्थ से करते हैं ?

उत्तर—बिल्कुल नही। क्योकि —(१) धनादिक भी प्राप्ति मे आत्मा का वर्तमान पुरुषार्थ किंचित् मात्र भी कार्यकारी नही है।

(२) लौकिक ज्ञान की प्राप्ति मे भी वर्तमान पुरुषार्थ किंचित् मात्र कार्यकारी नही है।

प्रश्न १३७—हमने पैसा कमाने का भाव किया, तभी तो पैसों की प्राप्ति हुई ना ?

उत्तर—अरे भाई बिल्कुल नही, क्योकि पैसा कमाने का भाव पापभाव है। पाप करे और पैसा मिले, ऐसा कभी भी नही हो सकता है।

प्रश्न १३८—आजकल जमाने में झूठ ना बोले, चोरी ना करे तो भूखे मर जावे ?

उत्तर—बिल्कुल नही, क्योकि झूठ और चोरी कारण हो और पैसा मिले यह कार्य, ऐसा कभी नही हो सकता है।

प्रश्न १३९—झूठ बोलकर चोरी करने से पैसा देखने में तो आता है ?

उत्तर—पहिले जन्म मे कोई शुभभाव या अशुभभाव किया तो उसके निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की अपेक्षा साता-असाता का सयोग देखने मे आता है। उसमे (रुपया पैसा कमाने मे) जीव का पुरुपार्थ किंचित् मात्र भी कार्यकारी नही है।

प्रश्न १४०—क्या लौकिक ज्ञान की प्राप्ति मे भी वर्तमान पुरुषार्थ किंचित् मात्र कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर—बिल्कुल नही है, क्योकि विचारो मेढक चीरा तो ज्ञान बढा, क्या यह ठीक है ? आप कहेगे—ऐसा ही देखते हैं। तो भाई एक मेढक चीरने से ज्ञान बढता हो, तो सौ मेढक चीरने से ज्यादा ज्ञान बढना चाहिये, सो ऐसा होता नही है।

प्रश्न १४१—किसी के कम ज्ञान किसी को ज्यादा ज्ञान ऐसा देखने मे आता है ?

उत्तर—पूर्व भव मे ज्ञान के विकास सम्बन्धी मन्द कषाय।

तो ज्ञानावरणीय का मन्द रस होने से ज्ञान का उघाड देखने मे आता है।

प्रश्न १४२—अज्ञानियो को प्रयत्न करने पर भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति क्यो नहीं होती है ?

उत्तर—अज्ञानी का उल्टा प्रयत्न होने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही होती है, क्योकि सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय से श्रद्धा गुण मे से आता है। अज्ञानी ढूंढता है दर्शनमोहनीय के उपशमादि मे और देव-गुरु शास्त्र मे।

प्रश्न १४३—अज्ञानियो को सुख की प्राप्ति क्यो नहीं होती है ?

उत्तर—आत्मा के आश्रय से सुख गुण मे से सुखदशा प्रगट होती है अज्ञानी पाँचो इन्द्रियो के विषयो मे से सुख मानता है। इसलिए सुख की प्राप्ति नही होती है।

प्रश्न १४४—अज्ञानियो को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति क्यो नहीं होती है ?

उत्तर—आत्मा के आश्रय से ज्ञानगुण मे से सम्यग्ज्ञान आता है और अज्ञानी देव-गुरु शास्त्र के आश्रय से, ज्ञेयो के आश्रय से, ज्ञानावरणीय के क्षयोपशमादि से मानता है। इसलिए सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नही होती है।

प्रश्न १४५—अज्ञानी को सम्यक्चारित्र की प्राप्ति क्यो नहीं होती है ?

उत्तर—आत्मा के आश्रय से चारित्रगुण मे से सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है। अज्ञानी अणुव्रतादि, महाव्रतादि के आश्रय से तथा बाहरी क्रियाओ से मानता है इसलिए सम्यक्चारित्र की प्राप्ति नही होती है।

प्रश्न १४६—जिसे जानने से मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति हो, वैसा अवश्य जानने योग्य-प्रयोजन भूत क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) हेय-उपादेय तत्वो की परीक्षा करना। (२) जीवादि

द्रव्य, सात तत्व, स्व-पर को पहिचानना तथा देव-गुरु-धर्म को पहिचानना। (३) त्यागने योग्य मिथ्यात्व-रागादिक, तथा ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञानादिक का स्वरूप पहिचानना (४) निमित्त नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, छह कारक, चार अभाव, छह सामान्य गुण आदि को जैसे हैं, वैसे ही जानना, इत्यादि जिनके जानने से मोक्षमार्ग मे प्रवृत्ति हो उन्हे अवश्य जानना चाहिए, क्योकि यह सब मोक्षमार्ग मे प्रयोजनभूत हैं।

प्रश्न १४७—प्रयोजनभूत तत्वो को जीव यथार्थ जाने-माने तो उसे क्या लाभ होगा ?

उत्तर—यदि उन्हे यथार्थ रूप से जाने-श्रद्धान करे तो उसका सच्चा सुधार होता है अर्थात् सम्यग्दर्शन प्रगट होकर पूर्णदशा की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न १४८—जीव को धर्म समझने का क्रम क्या है ?

उत्तर—(१) प्रथम तो परीक्षा द्वारा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की मान्यता छोडकर अरहत देवादिका श्रद्धान करना चाहिए, क्योकि उनका श्रद्धान करने से गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होता है। (२) फिर जिनमत मे कहे हुए जीवादि तत्वो का विचार करना चाहिए, उनके नाम लक्षणादि सीखना चाहिये, क्योकि उस अभ्यास से तत्व श्रद्धान की प्राप्ति होती है। (३) फिर जिनसे स्व-पर का भिन्नत्व भासित हो वैसे विचार करते रहना चाहिए, क्योकि उस अभ्यास से भेदज्ञान होता है। (४) तत्पश्चात् एक स्व मे स्व-पना मानने के हेतु स्वरूप का विचार करने रहना चाहिए, क्योकि उस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अनुक्रम से उन्हे अगीकार करके फिर उसी मे से, किसी समय देवादि के विचार मे, कभी तत्व विचार मे, कभी स्व-पर के विचार मे तथा कभी आत्म विचार उपयोग को लगाना चाहिये। यदि पात्रजीव पुरुषार्थ चालू रक्खे तो इसी अनुक्रम से उसे सम्यक्‌दर्शनादि की प्राप्ति हो जाती है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक]

प्रश्न १४९—जिनदेव के सर्व उपदेश का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—मोक्ष को हितरूप जानकर एक मोक्ष का उपाय करना ही सर्व उपदेश का तात्पर्य है।

प्रश्न १५०—चारित्र का लक्षण (स्वरूप) क्या है ?

उत्तर—(१) मोह और क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम वह चारित्र है। (२) स्वरूप मे चरना वह चारित्र है। (३) अपने स्वभाव मे प्रवर्तन करना शुद्ध चैतन्य का प्रकाशित होना वह चारित्र है। (४) वही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। जो धर्म है वह चारित्र है। (५) यही यथास्थित आत्मा का गुण होने से (अर्थात् विषमता रहित-सुस्थित आत्मा का गुण होने से) साम्य है। (६) मोह-क्षोभ के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है। [प्रवचनसार गा० ७ तथा टीका से]

प्रश्न १५१—व्यवहार सम्यक्त्व किस गुण की पर्याय है ?

उत्तर—सच्चा देव-गुरु-शास्त्र, छह द्रव्य और सात तत्वो की श्रद्धा का राग होने से यह चारित्र गुण की अशुद्ध पर्याय है, किन्तु श्रद्धागुण की पर्याय नही है।

प्रश्न १५२—जिसको सच्चा देव-गुरु-धर्म का निमित्त बने, वह अपना कल्याण ना करे, तो इस विषय मे भगवान की क्या आज्ञा है ?

उत्तर—(१) जैसे—किसी महान दरिद्री को अवलोकन मात्र [से] चिन्तामणि की प्राप्ति होने पर भी उसको न अवलोके। तथा जैसे—किसी कोढी को अमृत पान कराने पर भी वह न करे, उसी प्रका[र] ससार पीडित जीव को सुगम मोक्षमार्ग के उपदेश का निमित्त बन[ने] पर भी, वह अभ्यास ना करे, तो उसके अभाग्य की महिमा कौन क[ह] सके। (२) वर्तमान मे सत्गुरु का योग मिलने पर भी तत्वनिर्णय कर[ने] का पुरुषार्थ ना करे, प्रमाद से काल गँवाये, या मन्द रागादि सहि[त] विषय कषायो मे ही प्रवर्ते या व्यवहार धर्म कार्यो मे प्रवर्ते तो अवस[र] चला जायेगा और ससार मे ही भ्रमण रहेगा। (३)यह अवसर चूकना

योग्य नही, अब सर्व प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर पाना कठिन है। इसलिए वर्तमान मे श्रीसत्गुरु दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं। भव्य जीवो को उनमे प्रवृत्ति करनी चाहिए। [मोक्ष-मार्ग प्रकाशक]

प्रश्न १५३—सम्यग्दर्शन का लक्षण पं० टोडरमल जी ने किसे कहा है और सम्यग्दर्शन क्या है ?

उत्तर—विपरीताभिनिवेश रहित जीवादिक तत्वार्थ श्रद्धान वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है और सम्यग्दर्शन आत्मा के श्रद्धा गुण की स्वभाव अर्थ पर्याय है।

प्रश्न १५४—सम्यग्दर्शन सविकल्प है या निर्विकल्प है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन निर्विकल्प शुद्ध भावरूप परिणमन हैं और किसी भी प्रकार से सम्यग्दर्शन सविकल्प नही है। यह चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक एकरूप है।

प्रश्न १५५—पं० टोडरमल जी ने चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक सम्यग्दर्शन एक समान है, इस विषय में क्या कहा है ?

उत्तर—ज्ञानादिक की हीनता—अधिकता होने पर भी तिर्यंचादिक व केवली सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व गुण समान ही कहा है"। तथा चिट्ठी मे लिखा है कि "चौथे गुणस्थान मे सिद्ध समान क्षायिक सम्यक्त्व हो जाता है। इसलिए सम्यक्त्व तो यथार्थ श्रद्धान रूप ही है"। "निश्चयसम्यक्त्व प्रत्यक्ष है और व्यवहार सम्यक्त्व परोक्ष है" ऐसा नही है। इसलिए सम्यक्त्व के प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद नही मानना।

प्रश्न १५६—क्या निश्चय और व्यवहार—ऐसे दो प्रकार के सम्यग्दर्शन हैं ?

उत्तर—बिल्कुल नही, सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है, दो प्रकार का नही है किन्तु उसका कथन दो प्रकार से है।

प्रश्न १५७—चारो अनुयोगो मे प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश क्यों किया ?

उत्तर—यम-नियमादि करने पर भी सम्यग्दर्शन के विना धर्म की शुरुआत, वृद्धि, पूर्णता नही होती है। इसलिए चारो अनुयोगो मे प्रथम सम्यग्दर्शन का ही उपदेश दिया है।

प्रश्न १५८—क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना व्यवहार नहीं होता है ?

उत्तर—नही होता है, क्योकि सम्यग्दर्शन स्वय व्यवहार है और त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव वह निश्चय है।

प्रश्न १५९—सम्यग्दर्शन प्राप्त किये विना व्यवहार नहीं होता है ऐसा कहाँ कहा है ?

उत्तर—चारो अनुयोगो मे कहा है। मुख्य रूप से श्री प्रवचनसार गा० ९४ मे "मात्र अचलित चेतना वह ही मैं हूँ ऐसा माननापरिणमित होना सो आत्म व्यवहार है" अर्थात् आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र प्रगट होता है वह व्यवहार है।

प्रश्न १६०—अज्ञानी व्यवहार किसे कहता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर—बाहरी क्रिया और शुभ विकारी भावो को व्यवहार कहता है और उसका फल चारो गतियो का परिभ्रमण है।

प्रश्न १६१—सम्यग्दर्शन होने पर संसार का क्या होता है ?

उत्तर—जैसे—पत्थर पर विजली पडने पर टूट जाने से वह फिर जुडता नही है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञानी ससार मे जुडता नही है, वल्कि श्रावक, मुनि श्रेणी मॉडकर परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

प्रश्न १६२—आप प्रथम सम्यग्दर्शन की ही बात क्यो करते हो, व्रत-दान-पूजादि की बात तथा शास्त्र पढ़ने आदि की बात क्यो नहीं करते हो ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन प्राप्त किए बिना व्रत, दान, पूजादि मिथ्या चारित्र तथा शास्त्र पढना आदि मिथ्याज्ञान है। इसलिए हम व्रत

दानादि की प्रथम बात नही करते, बल्कि सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। क्योकि सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर जितना ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान है और जो चारित्र है वह सम्यक्चारित्र है। इसलिए प्रथम सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। छहढाला मे कहा है —

मोक्षमहल की प्रथम सीढी, या बिन ज्ञान-चरित्रा,
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।
"दौल" समझ, सुन, चेत, सयाने, काल वृथा मत खोवै,
यह नर भव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहिं होवै ॥

प्रश्न १६३—शुभभाव से मोक्षमार्ग क्यो नहीं है ?

उत्तर—(१) श्री प्रवचनसार गा० ११ की टीका मे कहा है कि "शुद्धोपयोग उपादेय है और शुभोपयोग हेय है"।

(२) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय गाथा २२० मे कहा है "शुभोपयोग अपराध है" चारो अनुयोगो मे एकमात्र अपने भूतार्थ के आश्रय से ही मोक्षमार्ग और मोक्ष भगवान ने कहा है और शुभभाव किसी का भी हो वह तो ससार का ही कारण है। इसलिए शुभभाव से कभी भी मोक्षमार्ग और मोक्ष नही होता है।

प्रश्न १६४—मिश्रदशा क्या है ?

उत्तर—जिसने अपने स्वभाव का आश्रय लिया उसे मोक्ष तो नही हुआ, परन्तु मोक्षमार्ग हुआ। (१) मोक्षमार्ग मे कुछ वीतराग हुआ है कुछ सराग रहा है। (२) जो अश वीतराग हुए उनमे सवर-निर्जरा है और जो अश सराग रहे उनसे बध है। ऐसे भाव को मिश्रदशा कहते हैं।

प्रश्न १६५—मिश्रदशा मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—जो शुद्धि प्रगटी वह नैमित्तिक है और भूमिकानुसार राग वह निमित्त है।

प्रश्न १६६—क्या जाने तो धर्म की प्राप्ति हो ?

उत्तर—(१) मेरा स्वभाव अनादिअनन्त एकरूप है। (२) मेरी

वर्तमान पर्याय मे मेरे ही अपराध से एक समय की भूल है। उस भूल मे निमित्त कारण द्रव्यकर्म-नोकर्म है, मैं नही हूँ। ऐसा जानकर अपने अनादिअनन्त एकरूप स्वभाव का आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति करके क्रम से मोक्ष का पथिक बने ?

जिन, जिनवर, जिनवरवृषभ कथित मोक्षमार्ग
अधिकार सम्पूर्ण

—०:—

जीव के असाधारण पाँच भावो का तीसरा अधिकार

नहिं स्थान क्षायिक भाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं।
नहिं स्थान उपशम भाव के, होते उदय के स्थान नहीं ॥४१॥

प्रश्न १—अपने आत्मा का हित चाहने वालो को क्या करना चाहिए ?

उत्तर—अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों से, औदारिक-तैजस-कार्माण-शरीरो से, भापा से और मन से तो मेरा किसी भी प्रकार का किसी भी अपेक्षा कर्ता-भोक्ता का सम्वन्ध है ही नही। मात्र व्यवहार से इनका ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है। ऐसा जानकर पात्र जीवो को अपने निज भावो की पहचान करनी चाहिए।

प्रश्न २—अपने निज भावो की पहिचान क्यो करनी चाहिए ?

उत्तर—(१) कौन सा निज भाव आश्रय करने योग्य है। (२) कौन सा भाव छोडने योग्य है। (३) कौन सा भाव प्रगट करने योग्य

है। इसलिये प्रयोजनभूत बातो का निर्णय करने के लिए पाँच असाधारण भावो का स्वरूप जानना आवश्यक है।

प्रश्न ३—पं० टोडरमल ने इस विषय मे क्या कहा है ?

उत्तर—जीव को तत्वादिक का निश्चय करने का उद्यम करना चाहिए, क्योकि इससे औपशमिकादि सम्यक्त्व स्वयमेव होता है। द्रव्य-कर्म के उपशमादि पुद्गल की पर्याये हैं। जीव उसका कर्त्ता-हर्ता नही है।

प्रश्न ४—जीव के असाधारण भावों के लिए आचार्यो ने कोई सूत्र कहा है ?

उत्तर—"औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्व-मौदयिक पारिणामिकौ च" [तत्वार्थसूत्र, अध्याय दूसरा सूत्र प्रथम]

प्रश्न ५—जीव के असाधारण भाव कितने हैं ?

उत्तर—पाँच हैं, (१) औपशमिक, (२) क्षायिक, (३) क्षायोपशमिक, (४) औदयिक, और (५) पारिणामिक यह पाँच भाव जीवो के निजभाव हैं। जीव के अतिरिक्त अन्य किसी मे नही होते हैं।

प्रश्न ६—इन पाँचो भावो में यह क्रम होने का क्या कारण है ?

उत्तर—(१) सबसे कम सख्या औपशमिक भाव वाले जीवो की है। (२) औपशमिक भाव वालो से अधिक सख्या क्षायिक भाव वाले जीवो की है। (३) क्षायिकभाव वालो से अधिक सख्या क्षायोपशमिक भाव वाले जीवो की है। (४) क्षायोपशमिक भाव वालो से भी अधिक सख्या औदयिक भाव वाले जीवो की है। (५) सबसे अधिक सख्या पारिणामिक भाव वाले जीवो की है। इसी क्रम को लक्ष्य मे रखकर भावो का क्रम रखा गया है।

प्रश्न ७—कौन-कौन से भाव मे कौन-कौन से जीव आये और कौन-कौन से निकल गये ?

उत्तर—(१) पारिणामिक भाव मे निगोद से लगाकर सिद्ध त सब जीव आ गये। (२) औदयिकभाव मे सिद्ध कम हो गये

(३) क्षायोपशमिक भाव मे अरहत और कम हो गये। (४) क्षायिक भाव मे छदमस्थ निकल गये, मात्र अरहत—सिद्ध रह गये (क्षायिक सम्यक्त्वी और क्षायिक चारित्र वाले जीव गौण है) (५) औपशमिक भाव मे मात्र औपशमिक सम्यग्दृष्टि तथा औपशमिक चारित्र वाले जीव रहे।

प्रश्न ८—औपशमिक भाव को प्रथम लेने का क्या कारण है?

उत्तर— तत्वार्थ सूत्र मे भगवान उमास्वामी ने प्रथम अध्याय मे प्रथम सम्यग्दर्शन की वात की है; क्योंकि इसके विना धर्म की शुरुआत नही होती है। उसी प्रकार दूसरे अध्याय के प्रथम सूत्र मे औपशमिक भाव की वात की है क्योकि औपशमिक भाव के बिना सम्यग्दर्शन नही होता है। इसलिए प्रथम औपशमिक भाव को लिया है।

प्रश्न ९—इन पांचो भावो से क्या सिद्ध हुआ?

उत्तर—(१) पारिणामिक भाव के विना कोई जीव नही। (२) औदयिक भाव के विना कोई ससारी नही। (३) क्षायोपशमिक भाव के विना कोई छदमस्थ नही। (४) क्षायिक भाव के विना अरहत और सिद्ध नही अर्थात् क्षायिक भाव के विना केवलज्ञान और मोक्ष नही। (५) औपशमिक भाव के विना धर्म की शुरुआत नही।

प्रश्न १०—असाधारण भाव किसे कहते हैं?

उत्तर—(१) असाधारण का अर्थ तो यह है कि ये भाव आत्मा मे ही पाये जाते है, अन्य पाँच द्रव्यो मे नही पाये जाते हैं। (२) आत्मा मे किस-किस जाति के भाव (परिणाम) पाये जाते हैं और इनके द्वारा जीव को स्वय का स्पष्ट सम्पूर्ण ज्ञान द्रव्य-गुण पर्याय सहित हो जाता है।

प्रश्न ११—इन भावो के जानने से ज्ञान मे स्पष्टता कैसे आ जाती है?

उत्तर—हानिकारक-लाभदायक परिणामो का ज्ञान हो जाता है जैसे— (१) औदयिक भाव हानिकारक और दु खरूप है। (२) औप-

शमिक भाव और धर्म का क्षायोपशमिक भाव मोक्षमार्ग रूप है। (३) क्षायिक भाव मोक्ष स्वरूप है। (४) पारिणामिक भाव आश्रय करने योग्य ध्येयरूप है। (५) क्षायिक ज्ञान-दर्शन, वीर्य जीव का पूर्ण स्वभाव पर्याय मे है और क्षायोपशमिक एकदेश स्वभाव भी पर्याय में है। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान मिथ्याज्ञान है इस प्रकार अच्छे-बुरे परिणामो का ज्ञान हो जाता है।

प्रश्न १२—औपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्मों के उपशम के साथ सम्बन्धवाला आत्मा का जो भाव होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं।

प्रश्न १३—कर्म का उपशम क्या है ?

उत्तर—आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर जड कर्म का प्रगट रूप फल जड कर्म रूप मे न आना वह कर्म का उपशम है।

प्रश्न १४—औपशमिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद है—औपशमिक सम्यक्त्व, औपशमिक चारित्र।

प्रश्न १५—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र क्या है ?

उत्तर—औपशमिक सम्यक्त्व श्रद्धा गुण की क्षणिक स्वभाव अर्थ पर्याय है। और औपशमिक चारित्र गुण की क्षणिक स्वभाव अर्थ पर्याय है। यह दोनो भाव सादिसान्त हैं।

प्रश्न १६—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र कौन-कौन से गुणस्थान मे होता है ?

उत्तर—औपशमिक सम्यक्त्व चौथे से सातवे गुणस्थान तक हो सकता है। और औपशमिक चारित्र मात्र ग्यारहवें गुणस्थान मे होता है।

प्रश्न १७—क्षायिकभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर- कर्मों के सर्वथा नाश के साथ सम्बन्ध वाला आत्मा का अत्यन्त शुद्धभाव का प्रगट होना यह क्षायिकभाव है।

प्रश्न १८—कर्म का क्षय क्या है ?

उत्तर—आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर कर्म आवरण का नाश होना वह कर्म का क्षय है।

प्रश्न १९—क्षायिकभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—नौ भेद है —(१) क्षायिक सम्यक्त्व, (२) क्षायिक-चारित्र (३) क्षायिक ज्ञान, (४) क्षायिकदर्शन, (५) क्षायिकदान (६) क्षायिकलाभ, (७) क्षायिकभोग, (८) क्षायिक उपभोग, (९) क्षायिक वीर्य है तथा इसको क्षायिकलब्धि भी कहते है।

प्रश्न २०—ये नौ क्षायिकभाव क्या हैं ?

उत्तर—आत्मा के भिन्न-भिन्न अनुजीवी गुणो की क्षायिक स्वभाव अर्थ पर्यायें है।

प्रश्न २१—ये नौ क्षायिकभाव कब प्रगट होते हैं और कब तक रहते हैं ?

उत्तर—यह भाव १३वे गुणस्थान मे प्रकट होकर सिद्धदशा मे अनन्तकाल तक धारा प्रवाहरूप से सादिअनन्त रहते हैं। क्षायिक-सम्यक्त्व किसी-किसी को चौथे गुणस्थान मे, किसी-किसी को पाँचवे मे, किसी-किसी को छठे मे, किसी-किसी को सातवे गुणस्थान मे हो जाता है। क्षायिक चारित्र १२वे गुणस्थान मे प्रकट हो जाता है और प्रगट होने पर सादिअनन्त रहता है।

प्रश्न २२—क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्मों के क्षयोपशम के साथ सम्बन्ध वाला जो भाव होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

प्रश्न २३—कर्म का क्षयोपशम क्या है ?

उत्तर—आत्मा के पुरुपार्थ का निमित्त पाकर कर्म का स्वय अशत क्षय और स्वय अशत उपशम यह कर्म का क्षयोपशम है।

प्रश्न २४—क्षायोपशमिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—१८ भेद हैं —४ ज्ञान [मति, श्रुत अवधि, मन पर्यय]

३ अज्ञान [कुमति, कुश्रुत, कुअवधि] ३ दर्शन [चक्षु, अचक्षु, अवधि] ५ क्षायोपशमिक [दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य] १ क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, १ क्षायोपशमिकचारित्र, १ सयमासयम। यह सब भाव सादिसान्त है।

प्रश्न २५—१८ क्षायोपशमिक भाव किस-किस गुण की कौन-कौन सी पर्यायें है ?

उत्तर—४ ज्ञान=यह ज्ञान गुण की एकदेश स्वभाव अर्थ पर्याये है। ३ अज्ञान=यह ज्ञानगुण की विभाव अर्थपर्यायें हैं। ३ दर्शन=यह दर्शन गुण की अर्थ पर्याये हैं। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य यह आत्मा मे पाँच स्वतन्त्र गुण हैं। यह पाँच स्वतत्र गुण एक देश स्वभाव अर्थ पर्याये है और अज्ञानी की विभाव अर्थ पर्यायें हैं। (१) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व=श्रद्धागुण की क्षायोपशमिक स्वभाव अर्थ पर्याय है। (२) क्षायोपशमिक सयम और सयमासयम=चारित्रगुण की एकदेश स्वभाव अर्थ पर्यायें हैं।

प्रश्न २६—यह क्षायोपशमिक भाव कौन-कौन से गुणस्थान मे पाये जाते हैं ?

उत्तर—(१) ४ ज्ञान=चौथे से १२वें गुणस्थानों तक पाये जाते हैं। (२) ३ अज्ञान=पहले तीन गुणस्थानो मे पाये जाते हैं। (३) ३ दर्शन और ५ दानादिक=पहले से १२वें गुणस्थान तक पाये जाते हैं। (४) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व=चौथे से सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। (५) सयमासयम=पाँचवे गुणस्थान मे पाया जाता है। (६) क्षायोपशमिक सयम (चारित्र) छठे से दसवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

प्रश्न २७—औदयिकभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—कर्मों के उदय के साथ सम्बन्ध रखने वाला आत्मा का जो विकारीभाव होता है उसे औदयिक भाव कहते हैं।

प्रश्न २८—औदयिकभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—२१ भेद है, ४ गति भाव; ४ कषाय भाव, ३ लिंग भाव, १ मिथ्यादर्शन भाव, १ अज्ञान भाव, १ असंयमभाव, १ असिद्धत्व भाव, छह लेश्या भाव।

प्रश्न २९—गति नाम का औदयिकभाव कितने प्रकार का है?

उत्तर—दो प्रकार का है। (१) जीव के गति विषयक मोहभाव जो बन्ध का कारण है वह औदयिक भाव है। (२) जीव मे सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण है उसका अशुद्ध परिणमन १४ वे गुणस्थान तक है वह नैमित्तिक है और अघाति कर्मों मे नामकर्म और नामकर्म के अन्तर्गत गतिकर्म तथा आँगोपाग नामकर्म निमित्त है। यह औदयिक गति रूप जीव का उपादान परिणाम है जो बन्ध का कारण नही है।

गति नामकर्म के सामने जीव की मनुष्य आकारादि विभाव अर्थ पर्याय और विभाव व्यजन पर्याय मे स्थूलपने का व्यवहार ससार दशा तक चालू रहता है यह गति औदयिक भाव जीव मे है, जो चौदहवे गुणस्थान तक रहता है। याद रहे—अघाति के उदयवाला गति औदयिक भाव तो बन्ध का कारण नही है। परन्तु मोह ही गति औदयिक भाव बन्ध का कारण होने से हानिकारक है।

प्रश्न ३०—मोहज गति औदयिकभाव मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है?

उत्तर—गति सम्बन्ध औदयिकभाव मिथ्यात्व राग-द्वेष रूप नैमित्तिक है और दर्शनमोहनीय का उदय निमित्त है।

प्रश्न ३१—अघाति गति औदयिक भाव मे मोहज गति सम्बन्धी राग-द्वेष मिथ्यात्व को क्यो मिला दिया?

उत्तर—मोह के उदय को गति के उदय पर आरोप करके निरूपण करने की आगम की पद्धति है। इसलिए चारो गतियो मे जो उस-उस गति के अनुसार मिथ्यात्व राग-द्वेषरूप भाव हैं—वे ही उस गति के औदयिकभाव हैं।

प्रश्न ३२—मोह राग-द्वेष सम्बन्धी गति औदयिक भाव को जरा द्रष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर—जैसे—दिल्ली को चूहा पकड़ने का मोहज भाव है वह उस तिर्यंचगति का गतिऔदयिक भाव के नाम से लोक तथा आगम मे प्रसिद्ध है। इसी प्रकार चारो गतियो मे उस-उस प्रकार के गति औदयिक भाव हैं। जैसे—(१) स्त्री मे स्त्री जैसा राग, पुरुष मे पुरुष जैसा राग, देव मे देव जैसा राग, बन्दर मे बन्दर जैसा राग, कुत्तो मे कुत्तो जैसा राग, यह गति औदयिक भावो का सार है।

प्रश्न ३३—गति के अनुसार ऐसा औदयिकभाव क्यो है ?

उत्तर—"जैसी गति, वैसी मति" ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्रश्न ३४—गति औदयिक भाव में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—(१) सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण की विकारी दशा नैमित्तिक है और नामकर्म का उदय निमित्त है परन्तु यह बन्ध का कारण नही है।

प्रश्न ३५—मोहज गति औदयिकभाव मे निमित्त-नैमित्तिक कौन है ?

उत्तर—गति सम्बन्धी मोह-राग-द्वेष भाव नैमित्तिक है और दर्शन-मोहनीय, चारित्रमोहनीय का उदय निमित्त है।

प्रश्न ३६—कषाय, लिंग, असंयम मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—चारित्र गुण की विकारी दशा नैमित्तिक है और चारित्र मोहनीय का उदय निमित्त है।

प्रश्न ३७—अज्ञान औदयिक भाव मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—आत्मा मे जितना ज्ञान सुज्ञानरूप से या कुमति आदि रूप से विद्यमान है वह सब तो क्षायोपशमिक ज्ञान भाव है और जीव का पूर्ण स्वभाव केवलज्ञान है।

जितना ज्ञान का प्रगटपना है उतना क्षयोपशमिक ज्ञान भाव है।

और जितना ज्ञान का अप्रगटपना है उसको अज्ञान औदयिक भाव कहते हैं, अत अज्ञानभाव नैमित्तिक है और ज्ञानावरणीय का उदय निमित्त है। यह सक्लेशरूप तो नही है, क्योकि सक्लेशरूप तो राग-द्वेष मोहभाव है इसीलिए यह बन्ध का कारण नही है। किन्तु दुखरूप अवश्य है क्योकि इसके कारण स्वभाविक ज्ञान और सुख का अभाव हो रहा है।

प्रश्न ३८—मिथ्यादर्शन मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—मिथ्यादर्शन नैमित्तिक है और दर्शनमोहनीय का उदय निमित्त है।

प्रश्न ३९—असिद्धत्व भाव में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—जैसे-सिद्धदशा को सिद्धत्व भाव कहते हैं, सिद्धत्व भाव नैमित्तिक है और कर्मों का सर्वथा अभाव निमित्त है, उसी प्रकार पहिले गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धत्व भाव रहता है वह नैमित्तिक है और आठो कर्मों का उदय निमित्त है।

प्रश्न ४०—आपने असिद्धत्व भाव को नैमित्तिक कहा और आठो कर्मों को निमित्त कहा, परन्तु असिद्धत्वभाव १४वें गुणस्थान तक होता है वहाँ आठो कर्मों का निमित्त कहाँ है ?

उत्तर—जितनी मात्रा मे भी आत्मा मे ससार तत्व है वह असिद्धत्व है किसी भी प्रकार का विकार हो चाहे वह केवल योग जनित हो या प्रतिजीवी गुणो का ही विपरीत परिणमन हो वह सब असिद्धत्व-भाव है वह नैमित्तिक है, वहाँ पर जैसा-जैसा कर्म का उदय हो उतना निमित्त समझना। जैसे—अरहतदशा मे प्रतिजीवी गुणो का विकार नैमित्तिक है और चार अघातियाँ कर्म निमित्त हैं।

प्रश्न ४१—लेश्या के भावो में निमित्त नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—कषाय से अनुरजित योग को लेश्या कहते है। अत लेश्या का भाव नैमित्तिक है जो योग सहचर है और मोहनीय कर्म का उदय निमित्त है।

प्रश्न ४२—औदयिक भावो से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—अज्ञान और असिद्धत्व भाव को छोडकर १९ औदयिक-भाव तो मोहभाव के अवान्तर भेद है वन्ध साधक है जीव के लिए महा अनिष्टकारक है अनन्त ससार का कारण हैं। वैसे वास्तव मे तो मिथ्यात्व (मोह) ही अनन्त ससार है। परन्तु मोह निमित्त होने से गति आदि को दु ख का कारण कहा जाता है। है नही। अज्ञान औदयिक भाव अभावरूप है। इसमे सीधा पुरुषार्थ नही चल सकता है किन्तु मोहभावो का अभाव होने पर यह स्वय ही नष्ट हो जाता है। इसलिए एक परम पारिणामिक भाव का आश्रय लेकर औदयिक भावो का अभाव करके पात्र जीवो को अपने स्वभाविक सिद्धत्वपना पर्याय मे प्रगट कर लेना यह औदयिकभावो के जानने का सार है।

प्रश्न ४३—क्या सर्व औदयिकभाव बध के कारण हैं ?

उत्तर—सर्व औदयिक भाव बध के कारण हैं ऐसा नही समझना चाहिए, मात्र मिथ्यात्व, असयम, कषाय और योग यह चार वन्ध के कारण है। (धवला पुस्तक ७ पृष्ठ ९)

प्रश्न ४४—क्या कर्म का उदय बंध का कारण है ?

उत्तर—(१) यदि जीव मोह के उदय युक्त हो तो बध होता है, द्रव्यमोह का उदय होने पर भी यदि जीव शुद्धात्मभावना (एकाग्रता) के बल द्वारा मोहभावरूप परिणमित ना हो तो वन्ध नही होता। (२) यदि जीव को कर्मोदय के कारण वन्ध होता हो तो ससारी को सर्वदा कर्म का उदय विद्यमान है इसलिए उसे सर्वदा बध ही होगा कभी मोक्ष होगा ही नही। (३) इसलिए ऐसा समझना कि कर्म का उदय वन्ध का कारण नही है किन्तु जीव का मोहभावरूप परिणमन ही बध का कारण है। (प्रवचनसार हिन्दी जयसेनाचार्य गा० ४५ की टीका से)

प्रश्न ४५—औदयिक भावों मे जो अज्ञान भाव है और क्षायोपशमिक भावों मे जो अज्ञान भाव है उसमे क्या अन्तर है ?

उत्तर—"औदयिक भावो मे जो अज्ञानभाव है वह अभाव रूप है

और क्षायोपशमिक भाव मे जो अज्ञानभाव है वह मिथ्यादर्शन के कारण दूषित होता है।

[मोक्षशास्त्र हिन्दी प० फूलचन्द जी सपादित पृष्ठ ३१ का फुटनोट]

प्रश्न ४६—पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) कर्मों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम, अथवा उदय की अपेक्षा रखे विना जीव का जो स्वभाव मात्र हो उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। (२) जिनका निरन्तर सदभाव रहे उसे पारिणामिक भाव कहते हैं। सर्वभेद जिसमे गर्भित हैं ऐसा चैतन्य भाव ही जीव का पारिणामिक भाव है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १९४]

प्रश्न ४७—पाँच भावो का कोई द्रष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर—(१) जैसे—एक काँच के गिलास मे पानी और मिट्टी एकमेक दिखती है; उसी प्रकार जीव के जिस भाव के साथ कर्म के उदय का सम्बन्ध है वह औदयिकभाव है। (२) पानी कीचड सहित गिलास मे कतकफल डालने से कीचड नीचे बैठ गया निर्मल पानी ऊपर आ गया, उसी प्रकार कर्म के उपशम के साथ वाला जीव के भाव को औपशमिक भाव कहते हैं। (३) कीचड बैठे हुए पानी के गिलास मे कक्कड डाली तो कोई-कोई मैल ऊपर आ गया; उसी प्रकार कर्म के क्षयोपशम के साथ वाला जीव का भाव क्षायोपशमिक भाव है। (४) कीचड अलग पानी अलग किया, उसी प्रकार कर्म के क्षय के सम्बन्ध वाला भाव क्षायिक भाव है। (५) जिसमे कीचड आदि किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है, उसी प्रकार जिसमे कर्म के उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम की कोई भी अपेक्षा नही है ऐसा अनादिअनन्त एकरूप भाव वह पारिणामिक भाव है।

प्रश्न ४८—पारिणामिक भाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—(१) जीवत्व (२) भव्यत्व (३) अभव्यत्व।

प्रश्न ४९—जीवत्व भाव के पर्यायवाची शब्द क्या-क्या हैं ?

उत्तर—ज्ञायकभाव, पारिणामिकभाव, परम पारिणामिक भाव, परम पूज्य पचमभाव, कारण शुद्ध पर्याय आदि अनेक नाम है।

प्रश्न ५०—पारिणामिक भाव क्या बताता है ?

उत्तर—जीव का अनादिअनन्त शुद्ध चैतन्य स्वभाव है अर्थात भगवान बनने की शक्ति है यह पारिणामिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न ५१—औदयिक भाव क्या बताता है ?

उत्तर—(१) जीव मे भगवान बनने की शक्ति होने पर भी उसको अवस्था मे विकार है ऐसा औदयिकभाव सिद्ध करता है। (२) जड-कर्म के साथ जीव का अनादिकाल से एक-एक समय का सम्बन्ध है जीव उसके वश होता है इसलिए विकार होता है। किन्तु कर्म के कारण विकारभाव नही होता ऐसा भी औदयिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न ५२—क्षायोपशमिक भाव क्या बताता है ?

उत्तर—(१) जीव अनादि से विकार करता आ रहा है तथापि वह जड नही हो जाता और उसके ज्ञान, दर्शन तथा वीर्य का अशत विकास तो सदैव रहता है ऐसा क्षायोपशमिक भाव सिद्ध करता है। (२) सच्ची समझ के पश्चात् जीव ज्यो-ज्यो सत्य पुरुषार्थ वढाता है त्यो-त्यो मोह अशत दूर होता जाता है ऐसा भी क्षायोपशमिक भाव सिद्ध करता है।

प्रश्न ५३—औपशमिक भाव क्या बताता है ?

उत्तर—(१) आत्मा का स्वरूप यथार्थतया समझकर जब जीव अपने पारिणामिक भाव का आश्रय करता है तव औदयिक भाव दूर होना प्रारम्भ होता है और प्रथम श्रद्धा गुण का औदयिक भाव दूर होता है ऐसा औपशमिक भाव सिद्ध करता है। (२) यदि जीव प्रति हतभाव से पुरुषार्थ मे आगे बढे तो चारित्र मोह स्वय दब जाता है और औपशमिक चारित्र प्रगट होता है। ऐसा भी औपशमिक भाव सिद्ध करता है।

प्रश्न ५४—क्षायिक भाव क्या सिद्ध करता है ?

उत्तर—(१) अप्रतिहत पुरुषार्थ द्वारा पारिणामिक भाव का आश्रय बढने पर विकार का नाश हो सकता है ऐसा क्षायिकभाव सिद्ध करता है। (२) यद्यपि कर्म के साथ का सम्बन्ध प्रवाह रूप से अनादि-कालीन है। तथापि प्रतिसमय पुराने कर्म जाते हैं और नये कर्मों का सम्वन्ध होता रहता है। उस अपेक्षा से उसमे प्रारम्भिकता रहने से (सादि होने से) वह कर्मों के साथ का सम्बन्ध सर्वथा दूर हो जाता है, ऐसा क्षायिक भाव सिद्ध करता है।

प्रश्न ५५—औपशमिक भाव, साधकदशा का क्षायोपशमिक भाव और क्षायिकभाव क्या सिद्ध करते हैं ?

उत्तर—(१) कोई निमित्त विकार नही कराता किन्तु जीव स्वय निमित्ताधीन होकर विकार करता है। (२) जीव जब पारिणामिक भाव रूप अपने स्वभाव की ओर लक्ष करके स्वाधीनता प्रगट करता है तब निमित्त की आधीनता दूर होकर शुद्धता प्रगट होती है ऐसा औपशमिक भाव, साधकदशा का क्षयोपशम भाव और क्षायिक भाव सिद्ध करता है।

प्रश्न ५६—पांच भावो मे से किस भाव की ओर सन्मुखता से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है ?

उत्तर—(१) पारिणामिक भाव के अतिरिक्त चारो भाव क्षणिक है। (२) क्षायिकभाव तो वर्तमान है ही नही। (३) औपशमिक भाव हो तो वह अल्पकाल टिकता है। (४) औदयिकभाव और क्षायोपश-मिक भाव भी प्रति समय बदलते रहते है। (५) इसलिए इन चारो भावो पर लक्ष्य करे तो एकाग्रता नही हो सकती है और ना ही धर्म प्रगट हो सकता है। (६) त्रिकाल स्वभावी पारिणामिक भाव का माहात्म्य जानकर उस ओर जीव अपनी वृत्ति करे (झुकाव करे) तो धर्म का प्रारम्भ होता है और उस भाव की एकाग्रता के वल से वृद्धि होकर धर्म की पूर्णता होती है।

प्रश्न ५७—ज्ञान-दर्शन-वीर्य गुण में औपशमिकभाव क्यों नहीं होता है ?

उत्तर—इनका औपशमिक हो जावे तो केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि प्रगट हो जावे और कर्म सत्ता मे पडा रहे लेकिन ऐसा नही हो सकता है। इसलिए ज्ञान-दर्शन वीर्यगुण मे औपशमिक भाव नही होता है।

प्रश्न ५८—क्या मति, श्रुति, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान पारिणामिक भाव हैं ?

उत्तर—नही है, यह तो पाँच ज्ञान गुण की पर्याये है यह पारिणामिक भाव नही है।

प्रश्न ५९—जीव मे विकार यह कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर—औदयिक भाव बताता है।

प्रश्न ६०—विकार मे कर्म का उदय निमित्त होने पर भी कर्म विकार नहीं कराता है यह कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर—औदयिक भाव बताता है।

प्रश्न ६१—विकार होने पर भी ज्ञान, दर्शन, वीर्य का सर्वथा अभाव नहीं होता है यह कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव बताता है।

प्रश्न ६२—पात्रजीव अपने मानसिक ज्ञान में (१) मैं आत्मा हूँ और मेरे मे भगवानपने की शक्ति है। (२) विकार एक समय का औदयिकभाव है। (३) और मै अपने स्वभाव का आश्रय लूँ तो कल्याण हो-ऐसा निर्णय, कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर—अज्ञान दशा मे पात्र जीवो को ऐसा क्षायोपशमिक भाव बताता है।

प्रश्न ६३—धर्म की शुरूआत कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर—औपशमिक भाव, धर्म का क्षायोपशमिक भाव और श्रद्धा का क्षायिक भाव बताता है।

प्रश्न ६४—११वें गुणस्थान में जो चारित्र है वह कौन सा भाव बताता है ?

उत्तर—चारित्र का औपशमिक भाव बताता है।

प्रश्न ६५—परिपूर्णशुद्धि का प्रगट होना कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर—क्षायिक भाव बताता है।

प्रश्न ६६—किस भाव के आश्रय से धर्म की शुरूआत होती है ?

उत्तर—एक मात्र पारिणामिक भाव के आश्रय से ही होती है।

प्रश्न ६७—अज्ञानी का कुमति आदि ज्ञान दु खरूप है या सुख-रूप है ?

उत्तर—अज्ञानी का ज्ञान दु खरूप नही है उसके साथ मोह का जुडान होने के कारण दु ख का कारण कहा जाता है, क्योकि वह अपने ज्ञान को प्रयोजनभूत कार्य मे ना लगाकर अप्रयोजनभूत कार्य मे लगाता है।

प्रश्न ६८—सिद्ध अवस्था मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—पारिणामिक भाव और क्षायिकभाव दो होते है।

प्रश्न ६९—चौदहवें गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—तीन हैं। पारिणामिक, क्षायिक और औदयिक भाव।

प्रश्न ७०—१३ वें गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—तीन है। पारिणामिक, क्षायिक और औदयिक भाव।

प्रश्न ७१—बारहवें गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—चार है। पारिणामिक भाव, श्रद्धा और चारित्र का क्षायिक भाव, औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव।

प्रश्न ७२—ग्यारहवें गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—(१) यदि क्षायिक सम्यदृष्टि जीव उपशम श्रेणी माँडता है तो ११वे गुणस्थान मे पाँचो भाव होते है। (२) यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि श्रेणी माँडता है तो ११वे गुणस्थान मे क्षायिक भाव को छोडकर चार भाव होते है।

प्रश्न ७३—दशवें गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—(१) क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव हैं तो औपशमिक भाव को छोडकर चार भाव है। (२) यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव है तो क्षायिक भाव को छोडकर चार भाव है।

प्रश्न ७४— ८ वें और ९ वें गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—(१) यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव है औपशमिक भाव को छोडकर चार भाव है। (२) यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव है तो क्षायिक भाव को छोडकर चार भाव हैं।

प्रश्न ७५—सातवें गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—(१) क्षायिक सम्यग्दृष्टि को तो पारिणामिक भाव, क्षायोपशमिक भाव, औदयिक भाव, क्षायिक भाव ये चार भाव होते है। (२) औपशमिक सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिक भाव को छोडकर चार भाव होते है। (३) क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिक और औपशमिक को छोडकर तीन भाव होते हैं।

प्रश्न ७६—छठे, पांचवें, चौथे गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—(१) क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो औपशमिक भाव को छोडकर चार होते है। (२) औपशमिक सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिक भाव को छोडकर चार होते है। (३) क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिक भाव और औपशमिक भाव को छोडकर तीन भाव होते हैं।

प्रश्न ७७—तीसरे गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—पारिणामिक, औदयिक और क्षायोपशमिक भाव तीन होते हैं।

प्रश्न ७८—दूसरे गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—पारिणामिक भाव, औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव तथा दर्शनमोहनीय की अपेक्षा से पारिणामिक भाव इस प्रकार चार होते है।

प्रश्न ७९—पहले गुणस्थान मे कितने भाव होते हैं ?

उत्तर—पारिणामिक भाव, औदयिक भाव, क्षायोपशमिक भाव तीन होते है।

प्रश्न ८०—चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक कौन-सा भाव हो सकता है ?

उत्तर—क्षायिकभाव हो सकता है।

प्रश्न ८१—चौथे से ग्यारहवें तक कौन-सा भाव हो सकता है ?

उत्तर—औपशमिक भाव हो सकता है।

प्रश्न ८२—पहले गुणस्थान से १४वो तक कौन-सा भाव होता है ?

उत्तर—औदयिक भाव हो सकता है।

प्रश्न ८३—पहले गुणस्थान से लेकर १२वो गुणस्थान तक कौनसा भाव होता है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव हो सकता है।

प्रश्न ८४—सिद्ध और सब संसारियो में भी होवे, ऐसा कौन-सा भाव है ?

उत्तर—पारिणामिक भाव सिद्ध और ससारी दोनो मे हैं।

प्रश्न ८५—सिद्धो मे ना होवे ऐसे कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—औदयिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक भाव सिद्धो मे नही हैं।

प्रश्न ८६—ससारी मे ना होवे ऐसे कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—ऐसा कोई भी नही है क्योकि समुच्चयरूप से ससारियो मे पाँचो भाव हो सकते है।

प्रश्न ८७—सब संसारी जीवो में होवे वह कौन सा भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव है जो निगोद से लेकर १४वे गुणस्थान तक सब जीवो मे है।

प्रश्न ८८—निगोद से लगाकर सिद्ध तक के ज्यादा जीवों में होवे वह कौन सा भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव है।

प्रश्न ८९—संसार मे सबसे थोड़े जीवो में होवे वह कौन-सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक भाव है।

प्रश्न ९०—सम्पूर्ण छद्मस्थ जीवो को होवे वह कौन सा भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न ९१—ज्ञान गुण की पर्याय के साथ कौनसे भाव का सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर—औपशमिक भाव का सम्बन्ध नही है।

प्रश्न ९२—दर्शनगुण की पर्याय के साथ कौन से भाव का सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर—औपशमिक भाव का सम्बन्ध नही है।

प्रश्न ९३—वीर्यगुण की पर्याय के साथ कौन से भाव का सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर—औपशमिक भाव का सम्बन्ध नही है।

प्रश्न ९४—जब जीव के प्रथम धर्म की शुरुआत होती है तब कौन-कौन से भाव होते हैं ?

उत्तर—औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भाव।

प्रश्न ९५—देवगति मे कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—देवगति मे पाँचो भाव हो सकते हैं।

प्रश्न ९६—मनुष्यगति मे कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—मनुष्यगति मे पाँचो भाव हो सकते हैं।

प्रश्न ९७—नरकगति में कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—नरकगति मे पाँचो भाव हो सकते हैं।

प्रश्न ९८—तिर्यंचगति मे कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—तिर्यंचगति मे पाँचो भाव हो सकते हैं।

प्रश्न ९९—श्रद्धा का क्षायिक भाव कौन से गुणस्थान मे और कहाँ तक हो सकता है ?

उत्तर—चौथे से १४वे गुणस्थान तक तथा सिद्ध मे होता है।

प्रश्न १००—ज्ञानगुण का क्षायिकभाव कौन से गुणस्थान मे होता है ?

उत्तर—१३वे गुणस्थान से लेकर सिद्ध तक ज्ञान का क्षायिक भाव होता है।

प्रश्न १०१—चारित्र का क्षायिकभाव कौन से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर—१२वे गुणस्थान से लेकर सिद्ध दशा तक होता है।

प्रश्न १०२—पाँच भावो मे से सबसे कम भाव किस जीव मे होते हैं ?

उत्तर—सिद्ध जीवो मे पारिणामिक और क्षायिक भाव ही होते है।

प्रश्न १०३—एक साथ पाँच भाव किस जीव को किस गुणस्थान मे हो सकते हैं ?

उत्तर—यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणी माँडे तो ११वे गुणस्थान मे पाँचो भाव हो सकते है।

प्रश्न १०४—१५वाँ गुणस्थान कौन सा है ?

उत्तर—१५वाँ गुणस्थान नही होता है परन्तु १४वे गुणस्थान से पार सिद्धदशा है उसे किसी अपेक्षा १५वाँ गुणस्थान कह देते हैं, है नही।

प्रश्न १०५—औपशमिक सम्यक्त्वी जीव क्षपकश्रेणी माँड सकता है ?

उत्तर—बिल्कुल नही माँड सकता है।

प्रश्न १०६—क्या क्षायिक सम्यक्त्वी को उपशमश्रेणी हो सकती है ?

उत्तर—हाँ, हो सकती है।

प्रश्न १०७—क्या क्षपकश्रेणी वाला जीव स्वर्ग मे जावे ?

उत्तर—कभी भी नही, क्योकि वह नियम से मोक्ष ही जाता है।

प्रश्न १०८—औपशमिक सम्यक्त्वी जीव स्वर्ग में जावे ?

उत्तर—हाँ जावे।

प्रश्न १०९—मन.पर्यय ज्ञान कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न ११०—केवलज्ञान कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायिक भाव है।

प्रश्न १११—सम्यग्दर्शन कौन सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव तीनो हो सकते है, परन्तु एक समय मे एक ही होगा तीन या दो नही।

प्रश्न ११२—पूर्ण वीतरागता कौन सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक और क्षायिक भाव है।

प्रश्न ११३—वर्तमान समय मे भरतक्षेत्र मे उत्पन्न जीवो को कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भाव हो सकते हैं परन्तु क्षायिकभाव नही हो सकता है।

प्रश्न ११४—आठ कर्मों मे से उदयभाव कितने कर्मों में होता है ?

उत्तर—उदय आठो मे होता है।

प्रश्न ११५—आठ कर्मों मे से क्षय कितने कर्मों मे होता है ?

उत्तर—क्षय भी आठो मे होता है।

प्रश्न ११६—आठ कर्मों मे से उपशम कितने कर्मों मे होता है ?

उत्तर—मात्र मोहनीय कर्म मे ही होता है।

प्रश्न ११७—आठो कर्मों मे से क्षयोपशम कितने कर्मों मे होता है ?

उत्तर—क्षयोपशम चार घाती कर्मो मे होता है।

प्रश्न ११८—अनादिअनन्त कौन सा भाव है ?

उत्तर—पारिणामिक भाव है।

प्रश्न ११९—सादिअनन्त कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायिक भाव है।

प्रश्न १२०—अनादिसान्त कौन सा भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न १२१—सादिसान्त कौन सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक भाव है।

प्रश्न १२२—द्रव्यलिंगी मुनि में कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—औदयिक, पारिणामिक और क्षायोपशमिक भाव हैं।

प्रश्न १२३—धर्मात्मा को कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—धर्मात्मा को पाँचो भाव हो सकते है।

प्रश्न १२४—कुन्दकुन्द भगवान को वर्तमान में कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक भाव है।

प्रश्न १२५—विदेहक्षेत्र के धर्मात्माओ को कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—पाँचो भाव हो सकते हैं।

प्रश्न १२६—पहले गुणस्थान मे होवें और १३-१४वें गुणस्थान में ना होवे ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न १२७—पहले गुणस्थान मे भी होवे और १३-१४वें गुणस्थान मे भी होवे परन्तु सिद्ध में ना होवे, वह कौन सा भाव हैं ?

उत्तर—औदयिक भाव है।

प्रश्न १२८—पहले गुणस्थान मे भी ना हो और १२-१३-१४वें गुणस्थान मे भी न हो, ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक भाव है।

प्रश्न १२९—संसारदशा में बराबर रहने वाला कौन सा भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव है।

प्रश्न १३०—प्राप्त होने पर कभी भी अभाव न होवे ऐसा कौन-सा भाव है ?

उत्तर—क्षायिक भाव है।

प्रश्न १३१—ज्ञान का क्षायिकभाव कौन सी गति मे हो सकता है ?

उत्तर—मात्र मनुष्यगति मे हो सकता है दूसरी गतियो मे नही हो सकता है।

प्रश्न १३२—श्रद्धा का क्षायिकभाव कौन सी गति मे हो सकता है ?

उत्तर—चारो गतियो मे हो सकता है।

प्रश्न १३३—चारित्र का क्षायिकभाव कौन सी गति में हो सकता है ?

उत्तर—मात्र मनुष्य गति मे हो सकता है दूसरी गतियो मे नही हो सकता है।

प्रश्न १३४—श्रद्धा का क्षायोपशमिक भाव कौन-कौनसी गति मे हो सकता है ?

उत्तर—चारो गतियो मे हो सकता है।

प्रश्न १३५—जो चारित्र नाम पावे ऐसा चारित्र का क्षयोपशम कौन सी गति मे हो सकता है ?

उत्तर—मनुष्य और तिर्यंच मे ही हो सकता है।

प्रश्न १३६—ज्ञान का क्षयोपशम भाव ना होवे तब क्या होवे ?

उत्तर—ज्ञान का क्षायिक भाव अर्थात् केवलज्ञान होवे।

प्रश्न १३७—दर्शन का क्षयोपशमिक ना होवे तब क्या होवे ?

उत्तर—दर्शन का क्षायिक भाव अर्थात् केवलदर्शन होवे।

प्रश्न १३८—एक बार नाश होने पर फिर आ सके ऐसा कौन-सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक भाव है।

प्रश्न १३९—क्षायोपशमिक भाव का नाश होने पर कौन सा गुणस्थान होता है ?

उत्तर—१३वाँ और १४वाँ गुणस्थान होता है।

प्रश्न १४०—एक बार नाश हो जावे, फिर कभी भी उत्पन्न ना होवे ऐसे भाव का क्या नाम है ?

उत्तर—औदयिक भाव और क्षायोपशमिक भाव हैं।

प्रश्न १४१—राग कौन से भाव को बताता है ?

उत्तर—औदयिक भाव को बताता है।

प्रश्न १४२—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न १४३—मोक्ष कौन सा भाव है ?

उत्तर—पूर्ण क्षायिक भाव है।

प्रश्न १४४—ज्ञानावरणीय द्रव्यकर्म का सम्पूर्ण नाश होने पर कौन सा भाव प्रगट होता है ?

उत्तर—ज्ञान का क्षायिक भाव अर्थात् केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्रश्न १४५—औदयिकभाव के साथ सदा ही रहवे उस भाव का क्या नाम है ?

उत्तर—पारिणामिक भाव है।

प्रश्न १४६—चौथे गुणस्थान से पहले ना होवे ऐसे कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमभाव और क्षायिक भाव हैं।

प्रश्न १४७—११वें गुणस्थान के बाद से ना होवे ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक भाव है।

प्रश्न १४८—१२वें गुणस्थान के बाद मे ना होवे ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक भाव और क्षायोपशमिक भाव हैं।

प्रश्न १४९—सबसे कम समय रहने वाला कौन सा भाव है ?

उत्तर—औपशमिक भाव है।

प्रश्न १५०—संसारदशा मे बराबर रहे ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव है।

प्रश्न १५१—साधकभाव के कारणरूप कौन-कौन से भाव होते हैं ?

उत्तर—औपशमिक भाव, श्रद्धा और चारित्र का क्षायिक भाव और धर्म का क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न १५२—साधकदशा की शुरुआत कौन से भाव से होती है ?

उत्तर—औपशमिक भाव से होती है।

प्रश्न १५३—साधकदशा की पूर्णता वाला कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायिक भाव है।

प्रश्न १५४—सीमन्धर भगवान को इस समय कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—औदयिकभाव, क्षायिकभाव और पारिणामिक भाव हैं।

प्रश्न १५५—महावीर भगवान को इस समय कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—क्षायिकभाव और पारिणामिक भाव हैं।

प्रश्न १५६—सीमन्धर भगवान के गणधर को इस समय कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर—औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक हो सकते हैं।

प्रश्न १५७—क्या भगवान के गणधर को उपशमश्रेणी नहीं होती है ?

उत्तर—नही होती है, क्योकि वह उत्कृष्ट ऋद्धियो का स्वामी है।

प्रश्न १५८—पाँच भावो मे से बन्ध का कारण कौन सा भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव है।

प्रश्न १५९—पाँच भावो मे से मोक्ष का कारण कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—औपशमिक, क्षायिक और धर्म का क्षयोपशमिक भाव है।

प्रश्न १६०—बन्ध-मोक्ष से रहित भाव का क्या नाम है ?

उत्तर—पारिणामिक भाव है।

प्रश्न १६१—औदयिकभाव कौन-कौन से गुणस्थानों मे होता है ?

उत्तर—सभी गुणस्थानो मे होता है।

प्रश्न १६२—औपशमिक भाव के कौन-कौन से गुणस्थान हैं ?

उत्तर—४ गुणस्थान से ११वे गुणस्थान तक हैं।

प्रश्न १६३—क्षायोपशमिक भाव के कौन-कौन से गुणस्थान हैं ?

उत्तर—पहले गुणस्थान से १२वे गुणस्थान तक हैं।

प्रश्न १६४—क्षायिकभाव कौन-कौन से गुणस्थान में हो सकता है ?

उत्तर—क्षायिकभाव ४ गुणस्थान से १४वें तक हो सकता है।

प्रश्न १६५—औपशमिक भाव वाले कितने जीव होते हैं ?

उत्तर—असख्यात् होते हैं।

प्रश्न १६६—संसार में औपशमिक करता क्षायिक सम्यग्दृष्टि वाले कितने जीव है ?

उत्तर—असख्यात् गुणा हैं।

प्रश्न १६७—जगत में औपशमिक करता क्षायिकभाव वाले कितने जीव हैं ?

उत्तर—अनन्त गुणा अधिक हैं।

प्रश्न १६८—वर्तमान में सीमन्धर भगवान में ना होवे और हमारे में होवे ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न १६९—वर्तमान में सीमन्धर भगवान में होवे और अपने मे अभी ना होवे, वह कौन सा भाव है ?

उत्तर—क्षायिक भाव है।

प्रश्न १७०—सीमन्धर भगवान में भी होवे और हमारे में भी होवे ऐसे कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर—औदयिक भाव और पारिणामिक भाव है।

प्रश्न १७१—केवलज्ञान होने पर आत्मा मे से कौन सा भाव निकल जाता है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक भाव निकल जाता है।

प्रश्न १७२—एक जीव अरहंत से सिद्ध हुआ तो कौन सा भाव पृथक् हुआ ?

उत्तर—औदयिक भाव पृथक् हुआ।

प्रश्न १७३—भाव होने पर भी बंध ना हो क्या ऐसा हो सकता है ?

उत्तर—(१) क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होने पर अभी कमी है परन्तु सम्यक्त्वमोहनीय का उदय होने पर भी सम्यक्त्व सम्बन्धी बन्ध नही होता है। (२) दसवें गुणस्थान मे सज्वलन लोभ कषाय होने पर और चारित्रमोहनीय सज्वलन के लोभ का उदय होने पर भी चारित्र सम्बन्धी बन्ध नही होता है। (३) १२वें गुणस्थान मे ज्ञान, दर्शन, वीर्य का क्षायोपशमिक भाव होने पर भी और ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय का क्षयोपशम होने पर भी बन्ध नही होता है। (४) १३वे और १४वें गुणस्थान मे असिद्धत्व औदयिक भाव होने पर भी और अघाती कर्मों का उदय होने पर भी बन्ध नही होता है। यहाँ पर भाव होने पर भी इस-इस प्रकार का बन्ध नही होता है, क्योकि

जघन्य अश वन्ध का कारण नही होता है ऐसा भगवान उमास्वामी ने कहा है।

प्रश्न १७४—कर्म किसे कहते हैं और वे कितने हैं ?

उत्तर—आतमस्वभाव के प्रतिपक्षी स्वभाव को धारण करने वाले निमित्तरूप कार्माणवर्गणा स्कन्धरूप परिणमन को द्रव्यकर्म कहते हैं। वे ८ हैं, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय।

प्रश्न १७५—द्रव्यकर्म के मूल भेद कितने हैं ?

उत्तर—दो है—(१) घातिकर्म (२) अघातिकर्म।

प्रश्न १७६—घातिकर्म किसे कहते हैं व कितने हैं ?

उत्तर—जो जीव के अनुजीवी गुणो के घात मे निमित्त मात्र कारण है उन्हे घातिया कर्म कहते हैं। घाति कर्म चार हैं, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय।

प्रश्न १७७—अघातिकर्म किसे कहते है और कितने हैं ?

उत्तर—(१) जो आत्मा के अनुजीवी गुणो के घात मे निमित्त नही है उन्हे अघाति कर्म कहते हैं। (२) जो आत्मा को पर वस्तु के सयोग मे निमित्त मात्र कारण हो उन्हे अघाति कर्म कहते हैं। (३) जो आत्मा के प्रतिजीवी गुणो के घात मे निमित्त मात्र हो उन्हे अघाति कर्म कहते हैं। अघाति कर्म चार है, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र।

प्रश्न १७८—द्रव्यकर्म की पुण्य और पापरूप प्रकृति कौन-कौन सी हैं ?

उत्तर—घाति कर्म प्रकृति सब पापरूप ही हैं और अघाति कर्मों मे पुण्य-पाप का भेद पडता है।

प्रश्न १७९—घाति पाप प्रकृति होने पर भी जीव पुण्यरूप परिणमन करे क्या ऐसा होता है ?

उत्तर—मोहनीय पाप प्रकृति ही है, परन्तु मोहनीय पाप प्रकृति के उदय होने पर जीव पुण्य भाव करे तो उस मोहनीय की पापरूप

प्रकृति को पुण्य प्रकृति का आरोप आता है। वैसे मोहनीय पापप्रकृति ही है पुण्य प्रकृति नही है।

प्रश्न १८०—अघाति कर्मों में कौन-कौन सी अवस्था होती है ?

उत्तर—उदय और क्षय ये दो अवस्थायें होती हैं।

प्रश्न १८१—अघाति कर्मों का उदय कब से कब तक रहता है और क्षय कब होता है ?

उत्तर—पहले गुणस्थान से लेकर १४वें गुणस्थान तक उदय रहता है और चौदहवें गुणस्थान के अन्त मे अत्यन्त अभाव (क्षय) होता है।

प्रश्न १८२—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म में कितनी-कितनी अवस्थायें होती हैं ?

उत्तर—तीन-तीन अवस्थायें होती हैं—क्षयोपशम, क्षय और उदय।

प्रश्न १८३—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तरायकर्म में क्षयोपशम, क्षय और उदय कब से कब तक रहता है ?

उत्तर—(१) १२वे गुणस्थान तक इनका क्षयोपशम है। (२) १२वें गुणस्थान तक जिस-जिस गुणस्थान मे जितनी-जितनी कमी है वह उदय है। (३) बारहवे गुणस्थान के अन्त मे इन तीनो की क्षय अवस्था होती है।

प्रश्न १८४—मोहनीय कर्म में कितनी अवस्था होती हैं ?

उत्तर—चार होती हैं उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम।

प्रश्न १८५—मोहनीय कर्म का उदय-उपशम-क्षय और क्षयोपशम कौन-कौन से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर—मोहनीय कर्म मे—(१) चौथे से ११वें गुणस्थान तक उपशम हो सकता है। (२) चौथे से १०वें गुणस्थान तक क्षयोपशम हो सकता है। (३) चौथे से प्रारम्भ होकर १२वें गुणस्थान तक क्षय होता है (४) पहले से तीसरे गुणस्थान तक उदय रहता है।

प्रश्न १८६—जीव के चारित्र गुण के परिणमन मे औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिकपना किस-किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) चौथे गुणस्थान मे अनन्तानुवन्धी के अभावरूप क्षयोपशम हुआ है वह तो क्षयोपशमिक चारित्र है वाकी औदयिकभावरूप है। (२) पाँचवे गुणस्थान मे अप्रत्याख्यान के अभावरूप क्षयोपशम है वह तो क्षायोपशमिकरूप देशचारित्र है वाकी औदयिकभावरूप है। (३) छठे गुणस्थान मे तीन चौकड़ी के अभावरूप क्षायोपशमिक चारित्र है वह तो सकलचारित्र है वाकी औदयिकभावरूप है (४) सातवे गुणस्थान मे सज्वलन का मन्द उदय है वह औदयिकभाव है और जो शुद्ध है वह क्षायोपशमिक चारित्र है (५) दसवे गुणस्थान मे सज्वलन के लोभ को छोडकर वाकी का क्षपयोशमदशा है वहाँ क्षायोपशमिक चारित्र है और लोभ का औदयिक भाव है। (६) ११वे गुणस्थान मे औपशमिकचारित्र है और १२वें गुणस्थान मे क्षायिकचारित्र है। चारित्र मे क्षायिकपना होने पर सादिअनन्त रहता है।

प्रश्न १८७—ज्ञानगुण की पर्याय मे निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—(१) ज्ञानगुण की औदयिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक तीन प्रकार की अवस्था नैमित्तिक है और ज्ञानावरणीय कर्म का उदय, क्षय और क्षयोपशम तीन प्रकार की अवस्था निमित्त है। (२) क्षयोपशम पहले गुणस्थान से १२वे गुणस्थान तक होता है वह ज्ञान का क्षायोपशमिक भाव है और जितना-जितना उदयरूप है वह औदयिकभाव है। (३) १३वें गुणस्थान से सिद्धदशा तक क्षायिक केवलज्ञान दशा है।

प्रश्न १८८—ज्ञान की आठ पर्यायो मे से क्षायोपशमिक दशा कितनो मे है ?

उत्तर—ज्ञान की सात पर्यायो मे क्षायोपशमिक दशा है।

प्रश्न १८९—ज्ञान की आठ पर्यायों मे से क्षायिकदशा कितनो में है ?

उत्तर—मात्र एक पर्याय मे होती है और वह केवलज्ञान है।

प्रश्न १९०—दर्शनगुण की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—दर्शनगुण की क्षायोपशमिक, औदयिक और क्षायिक तीन दशा नैमित्तिक है और दर्शनावरणीय कर्म की क्षयोपशम, उदय और क्षय तीन दशा निमित्त है।

प्रश्न १९१—दर्शनगुण की चार पर्यायो मे से क्षायोपशमिक और औदयिकपना कितनों में है ?

उत्तर—दर्शनगुण की तीन पर्यायो मे क्षायोपशमिकपना है और क्षयोपशम के साथ जितना-जितना दर्शनावरणीय कर्म का उदय है उतना-उतना औदयिकपना है।

प्रश्न १९२—दर्शनगुण की चार पर्यायो मे से क्षायिक कितनों में है ?

उत्तर—मात्र एक मे होता है और वह केवलदर्शन है।

प्रश्न १९३—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य की पर्यायों में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य वह आत्मा के स्वतन्त्र गुण है इन सब गुणो की क्षायोपशमिक, औदयिक और क्षायिक-दशा नैमित्तिक है और अन्तराय कर्म की क्षयोपशम, उदय और क्षय दशा निमित्त है।

प्रश्न १९४—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में क्षायोपशमिक और औदयिक दशा कहाँ से कहाँ तक है ?

उत्तर—पहले गुणस्थान से १२वे गुणस्थान तब सबकी क्षायोपशमिक दशा और जितना-जितना उदय है उतना-उतना औदयिक भाव है।

प्रश्न १९५—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में क्षायिक दशा कहाँ से कहाँ तक है ?

उत्तर—१३वे गुणस्थान से सिद्धदशा तक सबकी क्षायिक दशा है।

प्रश्न १९६—श्रद्धागुण की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—श्रद्धागुण मे औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक चार प्रकार की दशा नैमित्तिक है और दर्शनमोहनीय की उदय, क्षयोपशम, उपशम और क्षयदशा निमित्त है।

प्रश्न १९७—श्रद्धागुण की चार दशा का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(१) श्रद्धागुण की पहले से तीसरे गुणस्थान तक मिथ्या-स्वरूप औदयिक दशा है। (२) चौथे से सातवे गुणस्थान तक प्रथम औपशमिक अवस्था है। (३) आठवे से ११वे गुणस्थान तक द्वितीयो-पशम अवस्था है। (४) चौथे से सातवे गुणस्थान तक क्षायोपशमिक दशा है। (५) चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक क्षायिक दशा है। यह सब नैमित्तिक दशा है।

प्रश्न १९८—दर्शनमोहनीय की चार दशा का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर—(१) पहले से तीसरे गुणस्थान तक उदयरूप अवस्था है। (२) चौथे से सातवे गुणस्थान तक प्रथम उपशम दशा है। (३) ८ से ११वे गुणस्थान तक द्वितीयोपशम दशा है। (५) चौथे से सातवें गुण-स्थान तक क्षयोपशम दशा है। (६) चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक क्षयरूप दशा है। यह निमित्त हैं।

प्रश्न १९९—चारित्रगुण की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—चारित्रगुण मे क्षायोपशमिक, औदयिक, औपशमिक और क्षायिक दशा नैमित्तिक है और चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम, उदय, उपशम और क्षयदशा निमित्त है।

प्रश्न २००— चारित्रगुण की पर्याय में पूर्ण विभावरूप परिणमन कौन से गुणस्थान से कहाँ तक है तथा उसमें निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—पहले से तीसरे गुणस्थान तक पूर्ण विभावरूप परिणमन है उसे औदयिक भाव कहते हैं यह नैमित्तिक हैं और चारित्रमोहनीय का उदय निमित्त है।

प्रश्न २०१—चारित्रगुण के परिणमन में क्षायोपशमिक चारित्र कौन से गुणस्थान से कौन से गुणस्थान तक है ?

उत्तर—चौथे से १०वे गुणस्थान तक क्षयोपशमिक चारित्र है यह नैमित्तिक है और चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम निमित्त है।

प्रश्न २०२—औपशमिक चारित्र में निमित्त-नैमित्तिक क्या है और कौन से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर—११वे गुणस्थान मे औपशमिक चारित्र प्रगट होता है यह नैमित्तिक है और चारित्र मोहनीय कर्म का उपशम निमित्त है।

प्रश्न २०३—चारित्र गुण में क्षायिक परिणमन कब से कहाँ तक होता है तथा इसमें निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—१२वे गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक क्षायिक परिणमन नैमित्तिक है और चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय निमित्त है।

प्रश्न २०४—चौथे गुणस्थान में तो शास्त्रो में असयमभाव बताया आपने क्षायोपशमिक चारित्र कैसे कह दिया ?

उत्तर—तुम शास्त्रो के कथन का तात्पर्य नही समझते हो इसलिए ऐसा प्रश्न किया है। जैसे—पाँचवे गुणस्थान मे देशचारित्र और छठे गुणस्थान मे सकलचारित्र चारित्र नाम पाता है वैसा चारित्र न होने की अपेक्षा असयम कहा है। परन्तु चौथे गुणस्थान मे अनन्तानुवधी के अभावरूप स्वरूपाचरण चारित्र होता है।

प्रश्न २०५—चौथे गुणस्थान में क्षायोपशमिक चारित्र में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर—स्वरूपाचरण चारित्र नैमित्तिक है और अनन्तानुबन्धी क्रोधादि का क्षयोपशम निमित्त है।

प्रश्न २०६—कर्मों के साथ 'सम्बधवाला' से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—'सम्बन्धवाला' यह जीव का भाव है और द्रव्यकर्म यह कार्मणवर्गणा का कार्य है। दोनो मे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होने मे "सम्बन्धवाला" शब्द जोडा है।

प्रश्न २०७—कर्म जीव को दुःख देता है क्या यह बात सत्य है ?

उत्तर—(१) बिल्कुल झूठ है, क्योकि जडकर्म स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण वाला है। आत्मा स्पर्शादिक से रहित है। दोनो मे अत्यन्ताभाव है। (२) कर्म दु ख का कारण नही है औदयिक भाव दु ख का कारण है। (३) कर्म मे ज्ञान नही है जीव मे ज्ञान है। कर्मजड ज्ञानवत को दु खी करे—क्या कभी ऐसा हो सकता है ? कभी नही। (४) क्योकि चन्द्र-प्रभु की पूजा मे आया है।

कर्म विचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई,
अग्नि सहे घन घात, लोहे की संगति पाई ॥

अर्थ :—कर्म वेचारा कौन ? (किस गिनती मे) भूल तो मेरी ही बडी है। जिस प्रकार अग्नि लोहे की सगति करती है तो उसे घनो के आघात सहना पडते हैं, उसी प्रकार यदि जीव कर्मोदय से युक्त हो तो उसे राग-द्वेषादि विकार होते है। (५) देव-गुरु-शास्त्र की पूजा मे भी आया है कि "जडकर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी"।

प्रश्न २०८—क्या जीव को कर्म का उपशम, क्षयोपशम और उदय करना पड़ता है ?

उत्तर—बिल्कुल नही, क्योकि कर्म की अवस्था का कार्माणवर्गणा का कार्य है। कर्म एक कार्य है उसका कर्ता कार्माणवर्गणा है। जीव तथा दूसरी वर्गणाये नही है।

प्रश्न २०९—छद्मस्थ का क्या अर्थ है ?

उत्तर—छद=आवरण। स्थ=स्थिति। अर्थात् आवरणवाली स्थिति हो उसे छद्मस्थ कहते है।

प्रश्न २१०—छद्मस्थ के कितने भेद हैं ?

उत्तर—साधक और बाधक यह दो भेद हैं—तीसरे गुणस्थान तक बाधक है और चौथे से १२वे गुणस्थान तक साधक है।

प्रश्न २११—पारिणामिक भाव को ३२० गाथा जयसेनाचार्य की टीका में किस नाम से कहा है ?

उत्तर—"सकल निरावरण-अखण्ड-एक-प्रत्यक्ष-प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध-पारिणामिक-परमभाव लक्षण-निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ।" इस नाम से सम्बोधन किया है।

प्रश्न २१२—मोक्ष का कारण किसे कहा है ?

उत्तर—शुद्ध पारिणामिक भाव का अवलम्बन लेने से जो शुद्ध दशारूप औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव हैं। जो वह व्यवहार रत्नत्रयादि से रहित हैं वह शुद्ध उपादानकारण (क्षणिक उपादान) होने से मोक्ष के कारण है। यह प्रगटरूप मोक्ष की वात है।

प्रश्न २१३—शुद्ध पारिणामिक भाव क्या है ?

उत्तर—ध्येयरूप है ध्यानरूप नही है।

प्रश्न २१४—शुद्ध पारिणामिक भाव ध्यानरूप क्यो नहीं है ?

उत्तर—ध्यान विनश्वर है और शुद्ध पारिणामिक भाव तो अविनाशी है।

प्रश्न २१५—ज्ञानी स्वय ध्यानरूप परिणामित है तो वह किसका ध्यान करता है ?

उत्तर—एकमात्र त्रिकाली परम पारिणामिक भाव निज परमात्म द्रव्य वही मैं हूँ।

प्रश्न २१६—ज्ञानी की दृष्टि किस भाव पर होती है ?

उत्तर—ज्ञानी की दृष्टि शुद्ध पर्याय पर भी नही होती, तव विकार और पर द्रव्यो की तो बात ही नही है, मात्र अपने एक अखण्ड स्वभाव पर होती है।

प्रश्न २१७—संसार के कार्यों मे प्रवर्तते हुए हम ज्ञानी को देखते हैं ?

उत्तर—जैसे—लडकी की शादी होने पर माँ-बाप के घर आने पर भी घर का सारा काम काज करते हुए भी दृष्टि अपने पति पर ही

होती है; उसी प्रकार ज्ञानियो की दृष्टि चाहे वह ससार के कार्यों मे दीखे और कही युद्ध मे दीखे, उनकी दृष्टि एकमात्र अपने स्वभाव पर ही होती है।

प्रश्न २१८—हमारा कल्याण कैसे हो ?

उत्तर—जो अनादिअनन्त त्रिकाली स्वभाव है उसकी दृष्टि करे तो धर्म की शुरुआत होकर क्रम से वृद्धि होकर सिद्ध परमात्मा बन जावेगा।

प्रश्न २१९—शुद्धोपयोग किसे कहा है ?

उत्तर—"शुद्धात्माभिमुख परिणाम" को शुद्धोपयोग कहा है।

प्रश्न २२०—आगम भाषा मे शुद्धोपयोग किसे कहा जाता है ?

उत्तर—औपशमिकभाव, धर्म का क्षायोपशमिकभाव और क्षायिक भाव, इन-इन भावो को शुद्धोपयोग कहा है।

प्रश्न २२१—पाँच भावो का स्वरूप पंचास्तिकाय में क्या बताया है ?

उत्तर—पचास्तिकाय गा० ५६ मे बताया गया है कि "कर्मों का फल दान सामर्थ्यरूप से उदभव सो "उदय" है, अनुदभव सो 'उपशम' है, उदभव तथा अनुदभव सो 'क्षयोपशम' है अत्यन्त विश्लेष (वियोग) सो क्षय है। द्रव्य का आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है वह "परिणाम" है। वहाँ उदय से युक्त वह "औदयिक" है, उपशम से युक्त वह 'औपशमिक' है, क्षयोपशम से युक्त वह 'क्षायोपशमिक' है, क्षय से युक्त वह 'क्षायिक' है, परिणाम से युक्त वह "पारिणामिक" है। कर्मोपाधिकी चार प्रकार की दशा (उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय) जिनका निमित्त है ऐसे चार भाव हैं जिसमे कर्मोपाधिरूप निमित्त बिल्कुल नही है मात्र द्रव्य स्वभाव ही जिनका कारण है ऐसा एक पारिणामिक भाव है।

जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों के द्वारा पाँच असाधारण भावों का वर्णन पूरा हुआ।

—:o:—

मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रश्नोत्तर चौथा अधिकार

प्रश्न १—अशुभकर्म बुरा, शुभकर्म अच्छा यह मान्यता कैसी है ?

उत्तर—यह मान्यता अनन्त ससार का कारण है (१) क्योंकि "जैसे अशुभ कर्म जीव को दु ख करता है। उसी प्रकार शुभ कर्म भी जीव को दु ख करता है। कर्म मे तो भला कोई नही है। अपने मोह को लिए हुए मिथ्यादृष्टि जीव कर्म को भला करके मानता है"।

(समयसार कलश टीका कलश न १००)

(२) "शुभ अशुभ वध के फल मभार, रति अरति करे निजपद विसार" छहढाला मे भी लिखा है। जिसको अपना पता नही ऐसा मिथ्यादृष्टि शुभ अच्छा, अशुभ बुरा मानता है।

(३) जो शुभ-अशुभ मे अन्तर मानता है वह जीव घोर अपार ससार मे भ्रमण करता है। [प्रवचनसार गा० ७७]

(४) पुरुषार्थसिद्धयुपाय गा० १४ मे ऐसी मान्यता को ससार का वीज कहा है।

प्रश्न २—शुभोपयोग भला, उससे (शुभोपयोग से) कर्म की निर्जरा होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है यह मान्यता कैसी है ?

उत्तर—यह मान्यता श्वेताम्बरो की है और जो दिगम्बर धर्मी कहलाने पर शुभोपयोग से सवर, निर्जरा और मोक्ष मानते हैं वह दिगम्वर धर्म की आड मे श्वेताम्बर मत की पुष्टि करने वाले ससार के पात्र है।

(१) "कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ यति क्रिया मे मग्न होता हुआ शुद्धोपयोग को नही जानता, केवल यति क्रिया मात्र मग्न है। वह जीव ऐसा मानता है कि मैं तो मुनीश्वर, हमको विपय-कषाय सामग्री निषिद्ध है। ऐसा जानकर विषय कषाय सामग्री को छोडता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है सो ऐसा विचार

करने पर ऐसा जीव मिथ्यादृष्टि है। कर्म वन्ध को करता है, कोई भलापन तो नही है। [समयसार कलश टीका कलश न० १०१]

(२) शुभभाव से सवर-निर्जरा मानने वाले को समयसार गा० १५४ मे 'नपुंसक' कहा है और गा० १५६ मे अज्ञानी लोग व्रत-तपादि को मोक्ष हेतु मानते है उसका निषेध किया है।

प्रश्न ३—शुभ-अशुभ क्रिया आदि वंध का ही कारण है मोक्ष का कारण नहीं है ऐसा श्री राजमल्ल जी ने कहीं कुछ कहा है ?

उत्तर—(१) "जो शुभ-अशुभ क्रिया, सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प वहिर्जल्प रूप जितना विकल्परूप आचरण है वह सब कर्म का उदय-रूप परिणमन है जीव का शुद्ध परिणमन नही है इसलिए समस्त ही आचरण मोक्ष का कारण नही है, वन्ध का कारण है।" (२) "यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभ क्रिया रूप जो आचरण रूप चारित्र है सो करने योग्य नही है, उसी प्रकार वर्जन करने योग्य भी नही है ? उत्तर दिया है वर्जन करने योग्य है। कारण कि व्यवहार चारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है, इसलिए विषय-कषाय के समान क्रिया रूप चारित्र निषिद्ध है।" [कलश टीका कलश न० १०७ तथा १०८]

प्रश्न ४—श्री राजमल जी ने कलश टीका कलश नं० १०२ मे लिखा है कि "शुभ कर्म के उदय में उत्तम पर्याय होती है। वहाँ धर्म की सामग्री मिलती है, उस धर्म की सामग्री से जीव मोक्ष जाता है इसलिए मोक्ष की परिपाटी शुभ कर्म है" वह क्यो लिखा ?

उत्तर—अरे भाई तुमने प्रश्न को भी अच्छी तरह नही पढा ऐसा लगता है, क्योकि इस प्रश्न को पूरे करने से पहले लिखा है "ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है और उसको उत्तर दिया है 'कोई कर्म शुभ रूप, कोई कर्म अशुभ रूप ऐसा भेद तो नही है ... ऐसा अर्थ निश्चित हुआ।

प्रश्न ५—क्या मोक्षार्थी को जरा भी राग नहीं करना चाहिए ?

उत्तर—(१) "मोक्षार्थी को सर्वत्र किंचित् भी राग नही करना

चाहिए" ऐसा करने से "वह भव्य जीव वीतराग होकर भव सागर से तरता है।" [पचास्तिकाय गा० १७२] (२) राग कैसा भी हो, वह अनर्थ सन्तति का क्लेशरूप विलास ही है। [पचास्तिकाय गा० १६८] (३) ज्ञानी का अस्थिरता सम्बन्धी राग भी मोक्ष का घातक, दुष्ट, अनिष्ट है और बध का कारण है। (४) मिथ्यादृष्टि अणुव्रत-महाव्रतादि को उपादेय मानता है इसलिए उसका शुभभाव अनर्थ परम्परा निगोद का कारण है, (५) ज्ञानी का राग पुण्य बध का कारण है और मिथ्यादृष्टि का शुभराग पाप बध का कारण है।

[परमात्मप्रकाश अध्याय प्रथम गा० ६८]

प्रश्न ६—व्यवहार बढ़े, तो निश्चय बढे क्या यह कहना ठीक है?

उत्तर—बिल्कुल गलत है क्योकि —(१) द्रव्यलिंगी को व्यवहाराभास जिनागम अनुसार है, उसे निश्चय होता ही नही है। (२) ८, ९, १० गुणस्थानो मे निश्चय है, वहाँ पर देव-गुरु-शास्त्र का राग, अणुव्रत, महाव्रतादि का राग नही है। (३) केवली भगवान को निश्चय है और व्यवहार है ही नही। इसलिए व्यवहार हो, तो निश्चय बढे—यह अन्य मिथ्यादृष्टियो की मान्यताये हैं, जिन-जिनवर-जिनवर-वृषभो की मान्यता नही है।

प्रश्न ७—जो जीव जैनधर्म का सेवन आजीविकादि के लिए करते हैं उन्हें भगवान ने क्या-क्या कहा है?

उत्तर—(१) जैनधर्म का सेवन तो ससार के नाश के लिए किया जाता है, जो उसके द्वारा सासारिक प्रयोजन साधना चाहते हैं वह बडा अन्याय करते हैं, इसलिए वे तो मिथ्यादृष्टि हैं ही। (२) सासारिक प्रयोजन सहित जो धर्म साधते हैं, वे पापी भी है और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही। (३) जो जीव प्रथम से ही सासारिक प्रयोजन सहित भक्ति करता है उसके पाप का ही अभिप्राय हुआ। [मो० प्र० पृष्ठ २१९ से २२२] (४) इस प्रयोजन हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पापबन्ध ही होता है। [मो० प्र० पृष्ठ ८]

(५) शास्त्र वाँचकर, पूजा करके, आजीविका आदि लौकिक कार्य साधना अनन्त ससार का कारण है।

प्रश्न ८—क्या बाह्य सामग्री से सुख-दुःख होता है ?

उत्तर—विल्कुल नही, क्योकि आकुलता का घटना-वढना रागादिक कषाय घटने-वढने के अनुसार है इसलिए बाह्य सामग्री से सुख दुख मानना, मात्र भ्रम ही है।

प्रश्न ९—क्रोधादिक क्यों उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होने से अज्ञानियो को क्रोधादिक उत्पन्न होते है।

प्रश्न १०—क्रोधादिक के अभाव के लिए क्या करें ?

उत्तर—जव तत्वज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित ना हो, तव स्वयमेव ही क्रोधादि उत्पन्न नही होते तव सच्चे धर्म की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ११—क्या शुभभाव परम्परा मोक्ष का कारण है ?

उत्तर—विल्कुल नही, क्योकि शुभभाव किसी का भी हो वह वध का ही कारण है।

(अ) जैसे—सातवे गुणस्थान की दशा साक्षात् मोक्ष का कारण हो तो इसकी अपेक्षा छठे गुणस्थान मे जो तीन चौकडी के अभावरूप शुद्धपरिणति है वह परम्परा मोक्ष का कारण है।

(आ) शुद्ध परिणति अकेली नही होती उसके साथ भूमिकानुसार शुभभाव भी होता है उसमे शुद्ध परिणति सवर-निर्जरारूप है और राग वन्ध रूप है। ज्ञानी उस शुभभाव को हेयरूप श्रद्धा करता है और नियम से उसका अभाव करके शुद्धदशा मे आ जाता है, इसलिए शास्त्रो मे कही-कही ज्ञानी के शुभभावो के अभाव को परम्परा मोक्ष का कारण कहा है। कहने के लिए मोक्ष का कारण है वास्तव मे वन्धरूप ही है।

प्रश्न १२—ज्ञानियो को बीच में व्यवहार क्यो आता है ?

उत्तर—(अ) जैसे—देहली जाते हुए रास्ते मे स्टेशन पडते हैं वह छोडने के लिए हैं। (आ) बादाम मे जो छिलका है और गन्ने मे जो छिलका है वह फेकने के लिए है, उसी प्रकार ज्ञानियो को जो व्यवहार बीच मे आता है वह फेकने के लिए है क्योकि ज्ञानी उसे हलाहल जहर मोक्ष का घातक मानते है इसलिए सम्पूर्ण व्यवहार अभूतार्थ है।

प्रश्न १३—सिद्ध भगवान मे जितनी शक्तियाँ हैं उतनी ही प्रत्येक आत्मा मे भी है, परन्तु उनकी पहिचान बिना उनकी कोई कीमत नही है, ऐसा क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—भगवान की वाणी मे आया है कि प्रत्येक आत्मा सिद्ध के समान चैतन्यरत्नाकर है। प्रत्येक के पास अनन्तगुणो का भण्डार है। उसकी एक-एक निर्मल पर्याय की अपार कीमत है। दुनिया के वैभव के सामने उसकी बराबरी नही हो सकती, परन्तु अज्ञानी अपने को हीन मानकर पुण्य से भीख माँगता है। उसके पास कीमती गुणो का भण्डार उसकी पहिचान ना होने से चारो गतियो मे घूमता हुआ अनन्तवार निगोद चला गया। जैसे—कोई मनुष्य अपने को गरीब मानकर सेठ के पास भीख माँगने गया। सेठ उसके पास रहे हुए रत्न का प्रकाश देखकर आश्चर्यचकित हुआ और बोला, अरे भाई ! तू भीख क्यो माँगता है, तू तो गरीब नही है। देख, तेरे पास जो यह रत्न है, यह महान कीमत का है। मेरे पास एक हजार सोने की मोहर है। तू उन सब मोहरो को ले ले और मुझे यह रत्न दे दे। वह गरीब मनुष्य आश्चर्य चकित हुआ कि मेरे पास इतना कीमती रत्न है, सुनकर आनन्दित हुआ। सेठ का उपकार मानकर बोला, सेठ जी यह रत्न तो हमारे घर मे बहुत समय से पडा था परन्तु मुझे इसकी खबर नही थी, इसी प्रकार वर्तमान मे सच्चा दिगम्बर धर्म मिलने पर भी अज्ञानी जीव सयोग और सयोगी भावो मे पागल होकर दौडा-दौड कर रहा है। महाभाग्य से वर्तमान मे पूज्य गुरुदेव का समागम मिला। उन्होने कहा, अरे जीव ! तू क्यो सयोग और सयोगी भावो मे पागल हो रहा है।

तेरे पास अनन्त गुणो का अभेद पिण्ड चैतन्य रत्नाकर है। तेरे चैतन्य रत्नाकर के सामने संसार का वैभव तृण समान है और तेरे चैतन्य रत्नाकर की अपार कीमत है। तू अपने चैतन्य रत्नाकर के स्वसन्मुख हो, तो तुझे अपने वैभव की पहिचान हो। इतना सुनते ही अनादिकाल का अज्ञानी आश्चर्यचकित हो, स्वसन्मुख हुआ। अपनी आत्मा मे अमूल्य वैभव है, उसे जानकर आनन्दित हुआ। तब पूज्य गुरुदेव के प्रति बहुमान आया और बोला, हे पूज्य गुरुदेव! ऐसा आत्मस्वभाव तो अनादिकाल से मेरे पास ही था, परन्तु मुझे इसकी खबर नही थी। इसलिए मै संयोग और संयोगी भावो मे पागल हो रहा था। अब आपकी परमकृपा से मुझे अपने चैतन्य रत्नाकर का भान हुआ, अनन्त संसार मिटा, आप धन्य हैं! धन्य हैं! यद्यपि आत्मा मे अनन्त शक्तियाँ हैं फिर भी उसकी पहिचान ना होने से उसकी कोई कीमती नही है—ऐसा भगवान की वाणी में आया है।

प्रश्न १४—सिद्ध समान स्वयं चैतन्य रत्नाकर होने पर भी जो उसकी पहिचान नहीं करता, परन्तु संसार के कार्यो मे अपनी चतुराई को लगाता है—वह जीव किसके योग्य है?

उत्तर—जैसे—राजा के दरबार मे कोई परदेशी एक बार एक हीरा लेकर आया और राजा से कहा, आप अपने जौहरियो से इस हीरे की कीमत कराओ। शहर के तमाम जौहरी इकट्ठे हुए। परन्तु उस हीरे की कीमत ना बता सके। राजा को बडी चिन्ता हुई कि इससे तो हमारे राज्य की बदनामी होगी। आखिरकार तजुर्बेकार वृद्ध जौहरी को बुलाया। उस जौहरी ने हीरे को देखकर उसका सही मूल्य बता दिया। तब राजा ने परदेशी से पूछा, क्या तुम्हारे हीरे की कीमत ठीक बताई है? उसने कहा, महाराज बिल्कुल ठीक बताई है। राजा ने प्रसन्न होकर दिवान को हुक्म दिया है कि जौहरी को इनाम दो। दिवान जी धर्म का जानने वाला था। उसने सोचा कि अब वृद्ध जौहरी के लिए हित का अवकाश है। दिवान ने जौहरी से कहा, जौहरी जी!

तमाम जिन्दगी हीरे परखने मे ही बितायी, अब आखरी वक्त आया है। तब भी तुम्हे यह नही सूझना कि मैं अपने चैतन्य हीरे की पहिचान कर लूं। इतना सुनते ही जौहरी की आत्मा जाग उठी और दिवान जी का उपकार माना। जब दिवान जी ने इनाम माँगने को कहा तो जौहरी ने कहा, कल माँगूंगा। अगले दिन जौहरी ने राजा से कहा, मैं इनाम के लायक नही हूँ। यदि आप इनाम देना ही चाहते हैं तो मेरे सिर पर सात जूते लगवाओ, क्योकि मैंने अपने चैतन्य हीरे की पहिचान ना की और तमाम उम्र हीरो की पहिचान मे ही बिताई। उसी प्रकार सर्वज्ञ राजा के दिवान के रूप मे पूज्य गुरुदेव कहते है कि अरे जीव! बाहर के पदार्थों के जानने मे अनन्तकाल गमाया और अनन्तशक्ति सम्पन्न अपने चैतन्य हीरे की पहिचान ना की। तो जौहरी की भाँति तू सात जूतो के लायक है। इसलिए हे भव्य! तू जाग और अपने चैतन्य हीरे की अमूल्य महिमा है, ऐसा जानकर तत्काल धर्म की प्राप्ति कर।

प्रश्न १५—हमे तो ज्ञान का अल्प उघाड़ है। इस कम ज्ञान के उघाड मे चैतन्य हीरे की पहिचान कैसे की जाती है हमे तो ऐसा उपाय बताओ जिससे कम उघाड मे चैतन्य हीरे की पहिचान हो जावे ?

उत्तर—भगवान की वाणी मे आया है कि प्रत्येक सज्ञी पचेन्द्रिय जीव को इतना तो ज्ञान का उघाड है ही, कि उस ज्ञान के सम्पूर्ण उघाड को अपने चैतन्य हीरे की तरफ लगा दे, तो तत्काल सम्यग्दर्शनादिक की प्राप्ति होकर क्रम से मोक्ष का पथिक बने। जैसे—वम्बई के बाजार मे एक होलसेल खिलौनो की दुकान थी। उस खिलौनो की दुकान के सामने एक लडका एक खिलौने को देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था। व्यापारी ने लडके से पूछा, क्या चाहिए ? लडके ने खिलौने के लिए इशारा किया। व्यापारी ने कहा, इसकी कीमत पाँच रुपया है। लडके ने कहा, मेरे पास तो कुल दस पैसा है। दुकानदार ने प्रसन्न होकर दस पैसा लेकर खिलौना दे दिया, लडका बहुत प्रसन्न

हुआ और खिलौना लेकर घर पहुँचा। उसके पिता ने पूछा, यह खिलौना कितने का है और कहाँ से लाया है ? उसने बता दिया। लडके का पिता उस दुकानदार के पास गया और दो सौ खिलौनो का आर्डर लिखा दिया। दुकानदार ने तुरन्त एक हजार का बिल बनाकर, उसके हाथ मे दे दिया। उसने कहा, अभी-अभी तुमने हमारे लडके को यह खिलौना दस पैसे का दिया है और हमसे पाँच रुपया क्यो मांगता है ? व्यापारी ने कहा, अरे भाई! उसके पास कुल जमा पूँजी दस पैसा ही थी, उसने सब जमापूँजी इस खिलौने के खरीदने मे लगा दी। तुम तो बेचने को ले जा रहे हो और तुम्हारे पास तो लाखो रुपया है, क्या तुम हमे सब रुपया दे दोगे ? उसी प्रकार वर्तमान मे पूज्य गुरुदेव कहते है कि जो जीव अपने मति-श्रुतज्ञान के सम्पूर्ण उघाड को अपने चैतन्य रत्नाकर की ओर लगा दे तो उसे तत्काल धर्म की प्राप्ति हो। परन्तु जो जीव अपने मति-श्रुतज्ञान के उघाड को घर के कार्यो मे, लौकिक पढाई मे, व्यापार धन्धे रूप इत्यादि अशुभभावो मे और व्रत-शील-सयम-अणुव्रत-महाव्रतादि शुभभावो मे ही लगा देता है वह आत्मधर्म की प्राप्ति नही कर सकता।

प्रश्न १६—निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—अखण्डानन्द शुद्ध आत्मस्वभाव के लक्ष के बल से आँशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध (शुभाशुभ इच्छारूप) अवस्था की आँशिक हानि करना वह भाव निर्जरा है और उसका निमित्त पाकर जड कर्म का अशत खिर जाना वह द्रव्य निर्जरा है।

प्रश्न १७—निर्जरा कितने प्रकार की है ?

उत्तर—चार प्रकार की है —सकाम निर्जरा, अकाम निर्जरा, सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा।

प्रश्न १८—सकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा शुद्ध चिदानन्द भगवान है, सत्य पुरुषार्थ पूर्वक उसके सन्मुख होकर शुद्धि की वृद्धि होना सकाम निर्जरा है।

प्रश्न १९—अकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—बाह्य प्रतिकूल सयोग होने के समय मन्दकषायरूप भाव का होना, अकाम निर्जरा है। जैसे—छोटी उम्र मे कोई विधवा हो जावे तव मन्दकपाय रक्खे, ब्रह्मचर्य से रहे, खाने को नाज ना मिले उस समय तीव्र आकुलता ना करे, किन्तु कषाय मन्द रक्खे, किसी को जेल हो जावे, वहाँ तीव्र आकुलता ना करे, किन्तु कषायमन्द रक्खे इत्यादि यह सव अकाम निर्जरा है। इसमे पाप की निर्जरा होती है और देवादि पुण्य का वन्ध होता है।

प्रश्न २०—सविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—ससारी जीवो को कर्म के उदयकाल मे समय-समय अपनी स्थिति पूर्ण होने पर जो कर्म के परमाणु खिर जाते है उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं।

प्रश्न २१—अविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर—सच्ची दृष्टि होने पर आत्मा के पुरुषार्थ द्वारा उदयकाल प्राप्त होने के पहले कर्मों का खिर जाना, अविपाक निर्जरा है।

प्रश्न २२—अज्ञानी को कौन-कौन सी निर्जरा हो सकती है ?

उत्तर—अज्ञानी को सविपाक निर्जरा हर समय होती है और किसी-किसी समय अकाम निर्जरा भी होती है। इस प्रकार अज्ञानी को चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि हो, उसे सविपाक निर्जरा और अकाम निर्जरा ही हो सकती है।

प्रश्न २३—ज्ञानी को कितने प्रकार की निर्जरा हो सकती है ?

उत्तर—ज्ञानी को चारो प्रकार की निर्जरा हो सकती है।

प्रश्न २४—मिथ्यादृष्टि को कुछ नहीं करना हो तब वह अपने और दूसरो को धोका देने के लिए श्रद्धान-ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा किस-किस को याद करता है ?

उत्तर—(१) तत्व श्रद्धान की बात आवे तब तिर्यंचो को याद करता है, (१) ज्ञान की वात आवे तब शिवभूति मुनि को याद करता

है, (३) चारित्र की वात आवे तव भरतजी को याद करता है—यह सब स्वच्छन्दता की वात है।

प्रश्न २५—श्रद्धा किसको स्वीकार करती है और किसको स्वीकार नहीं करती ?

उत्तर—श्रद्धा एकमात्र त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को ही स्वीकारती है, परको, द्रव्यकर्मों को, विकारी भावो को, अपूर्ण और पूर्ण शुद्ध पर्याय को तथा गुण भेद को स्वीकार नही करती है अर्थात् इनका आश्रय नही लेती है। साधक ज्ञानी को राग-द्वेष है ही नही, ऐसा जो कहा जाता है वह श्रद्धा की अपेक्षा जानना चाहिए।

प्रश्न २६—सम्यग्दर्शन होने पर सम्यग्ज्ञान क्या जानता है ?

उत्तर—जैसे—दौज का चन्द्रमा दौज के प्रकाश को वताता है, जितना प्रकाश बाकी है उसे बताता है, पूर्ण प्रकाश कितना है उसको वताता है और त्रिकाल पूर्ण प्रकाशमय चन्द्रमा कैसा होना चाहिए उसे भी बताता है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का ज्ञान जितनी शुद्धि प्रगटी है उसे जानता है, जितनी अशुद्धि बाकी है उसे जानता है, शुद्धि की पूर्णता किस प्रकार की होती है उसे जानता है और त्रिकाली शुद्ध आत्मा जिसके आश्रय से शुद्धि आती है उसे भी जानता है।

प्रश्न २७—चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि क्या जानता है ?

उत्तर—जितनी शुद्धि प्रगटी है वह मोक्षमार्गरूप है और जितनी अशुद्धि है वह सब बन्धरूप है, अल्पबन्ध का कारण है, ज्ञान का ज्ञेय है, हेय है।

प्रश्न २८—चारों अनुयोगो का तात्पर्य क्या है, इसका दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर—अरे भाई ! चारो अनुयोगो की कथन शैली मे फेर होने पर भी सबका आशय एक है अर्थात् वीतरागता की प्राप्ति कराना है। (१) प्रथमानुयोग कहता है—'ऐसा था' (२) चरणानुयोग कहता है—'उसे छोडो' (३) करणानुयोग कहता है—'ऐसा है तो ऐसा है'

(४) द्रव्यानुयोग कहता है—'ऐसा ही है।' दृष्टान्त के रूप मे उपवास को चारो अनुयोगो पर घटाना है और उसका फल वीतरागता है। विचारिये—(१) द्रव्यानुयोग उपवास किसे कहता है ? उप=नजदीक, वास=रहना, अर्थात् ज्ञायक स्वभावी आत्मा के नजदीक मे रहना वह उपवास है। (२) करुणानुयोग उपवास किसे कहता है ? खाने का राग छोडा उसे उपवास कहता है। जो अपने मे वास करेगा, क्या उस समय उसे खाने का राग होगा ? कभी नही। (३) चरणानुयोग उपवास किसे कहता है ? आहार के त्याग को उपवास कहता है। जब आत्मा मे लीन होगा, तो क्या रोटी खाता हुआ दिखेगा ? कभी भी नही। चरणानुयोग मे कहा जाता है कि आहार का त्याग किया। (४) प्रथमानुयोग इतना शुभभाव किया तो ऐसा पुण्यवन्ध हुआ और उसका फल अच्छा सयोग है, यह प्रथमानुयोग वताता है।

प्रश्न २९—सुभाषिरत्न सदोह मे उपवास किसे कहा है ?

उत्तर—"कषायविपयाहारो त्यागो तत्र विधीयते।

उपवास स विज्ञेय शेप लघनक विदु।

अर्थ—जहाँ कषाय, विपय और आहार का त्याग किया जाता है उसे उपवास जानना। शेप को श्री गुरु लघन कहते हैं।

प्रश्न ३०—उपयोग शब्द कितने अर्थों मे किस-किस प्रकार प्रयुक्त होता है ?

उत्तर—(१) चैतन्यानुविधायी आत्म परिणाम अर्थात् चैतन्य-गुण के साथ सम्बन्ध रखने वाला जीव के परिणाम को उपयोग कहते हैं, (२) ज्ञान-दर्शन गुण को भी उपयोग कहते है, (३) ज्ञान-दर्शन गुण की पर्याय को भी उपयोग कहते हैं। (४) आत्मा के चारित्र गुण के अशुभ-शुभ और शुद्ध भाव को भी उपयोग कहते हैं।

प्रश्न ३१—क्या-क्या जाने तो अनन्त ससार का परिभ्रमण क्षण भर में अभाव हो जावे ?

उत्तर—(१) वस्तु के स्वभाव की व्यवस्था, (२) सर्वज्ञ का स्वी-

कार (३) प्रत्येक कार्य का सच्चा कारण उस समय पर्याय की योग्यता ही है।

प्रश्न ३२—क्या माने तो आकुलता की उत्पत्ति हो और क्या माने तो अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो ?

उत्तर—अपनी इच्छानुसार पर पदार्थों का परिणमन होना माने तो हर्ष होता है वह तो राग है और उसमे आकुलता की वृद्धि होती है। ज्ञान के अनुसार सब पदार्थों का परिणमन बने तो अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ३३—सिद्धान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीन काल और तीन लोक मे जिसमे जरा भी हेर-फेर ना हो सके उसे सिद्धान्त कहते हैं। जैसे एक और एक दो होते हैं। आप रूस जावो, अमेरिका जावो, चीन जाओ, सब जगह एक और एक दो ही होंगे।

प्रश्न ३४—जिनेन्द्र भगवान के सिद्धान्त क्या-क्या हैं, जिसमें कभी भी जरा भी हेर-फेर नहीं हो सकता है ?

उत्तर—(१) एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से कर्ता-भोक्ता का सम्बन्ध किसी भी अपेक्षा नही है। (२) आत्मा का सर्व पदार्थों के साथ व्यवहार मे ज्ञेय-ज्ञायक संबंध है। (३) एक मात्र अपने भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्ध दशा तक की प्राप्ति होती है, पर के, विकार के और एक समय की पर्याय के आश्रय से नही। (४) कार्य हमेशा उपादान से ही होता है निमित्त से नही होता। परन्तु जब-जब उपादान मे कार्य होता है, वहाँ उचित निमित्त की सन्निधि होती है—ऐसा वस्तु का स्वभाव है।

प्रश्न ३५—छह द्रव्यो का स्वभाव क्या है, इनको यथार्थ समझने से हमें क्या बोधपाठ मिलता है और शान्ति की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

उत्तर—जाति अपेक्षा छह द्रव्यो मे तीन जोड़े बनते हैं ?

(१) जीव का स्वभाव जानने का है, पुद्गल का स्वभाव कुछ भी नही जानने का है, दोनो का एक-दूसरे से विरुद्ध स्वभाव है।

(२) धर्म द्रव्य जीव-पुद्गल को चलने मे निमित्त है, अधर्म द्रव्य उनको ठहरने मे निमित्त है, दोनो का स्वभाव एक-दूसरे से विरुद्ध है।

(३) आकाश का स्वभाव तिर्यक प्रचय है, काल का स्वभाव ऊर्ध्व प्रचय है, दोनो का स्वभाव एक-दूसरे से विरुद्ध है। इनका अनादि अनन्त विरुद्ध स्वभाव होते हुए भी एक साथ रह सकते हैं और तेरे घर मे छह आदमी हैं। परमार्थ से सब ज्ञान स्वभावी हैं व्यवहार से रागी हैं। मान लो कि अल्पकाल के लिए कभी उनके साथ विरोध हो गया हो, फिर भी यदि तू उनके साथ सुमेल से रहना नही जानता, तो वीतरागी कैसे बन सकेगा ? इसलिए जब कि अनादि अनन्त विरुद्ध स्वभावी द्रव्य एक साथ रह सकते है, सो तुझे रहने मे कोई आपत्ति नही, ऐसा समझे तो जीवन मे शान्ति आवे।

प्रश्न ३६—'कारण शुद्ध पर्याय' का विषय कैसा है ?

उत्तर—कारण शुद्ध पर्याय का विषय बहुत सूक्ष्म और सरल है परन्तु प्रत्यक्ष ज्ञानियो के सत्समागम से समझने योग्य है।

प्रश्न ३७—अपेक्षित भाव कौन-कौन से हैं और क्या ये भाव सम्यग्दर्शन के कारण नहीं है ?

उत्तर—औदयिक भाव, औपशमिक भाव, क्षायोपशमिक भाव क्षायिक भाव सापेक्ष है, उत्पाद-व्यय वाली पर्याय रूप है। जैसे—समुद्र मे तरगें उठती है, उसी प्रकार आत्मा मे रागादि विकारी भावो अथवा उसके अभाव से प्रगट होने वाली निर्मल पर्याये हैं। यह सब अपेक्षित भाव है क्षणिक उत्पाद-व्ययरूप हैं इसलिए ये चारो भाव सम्यग्दर्शन के आश्रय भूत नही हैं।

प्रश्न ३८—कारण शुद्ध पर्याय क्या है ?

उत्तर—कारण शुद्ध पर्याय अर्थात् विशेष पारिणामिक भाव, वह निरपेक्ष है। इसमे औदयिक आदि चार भावो की अपेक्षा नही हैं।

अत इसे निरपेक्ष पर्याय अर्थात् ध्रुव पर्याय भी कहते हैं। जैसे—समुद्र मे पानी के दल की सपाटी एक स्वभाव है, उसी प्रकार आत्मा मे "कारण शुद्ध पर्याय" है। वह सदा एक समान है। उसको औदयिक आदि चार भावो की अपेक्षा नही लगती है। यह विशेष पारिणामिक भाव रूप है। यह आत्मा मे हमेशा सदृशपने वर्तती है। यह कारण शुद्ध पर्याय प्रत्येक गुण मे भी है।

प्रश्न ३९—पारिणामिक भाव की पूर्णता किससे है और सम्यग्दर्शन का कारण कौन है ?

उत्तर—सामान्य पारिणामिक भाव और विशेष पारिणामिक भाव यह दोनो मिलकर पारिणामिक भाव की पूर्णता है। इसे निरपेक्ष स्वभाव अर्थात् शुद्ध निरजन एक स्वभाव, अनादिनिधन भाव भी कहते है। जैसे—समुद्र मे पानी का दल, पानी का शीतल स्वभाव और पानी की सपाटी ये तीनो अभेदरूप वह समुद्र है। ये तीनो हमेशा 'ऐसे के ऐसे' ही रहते है, उसी प्रकार आत्मा मे आत्मद्रव्य उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण और उसका सदृशरूप-ध्रुव-वर्तमान अर्थात् कारण शुद्ध पर्याय ये तीनो मिलकर वस्तु स्वरूप की पूर्णता है। यही परम पारिणामिक भाव है और यही सम्यग्दर्शन का आश्रयभूत है।

प्रश्न ४०—क्या द्रव्य, गुण और कारण शुद्ध पर्याय भिन्न-भिन्न है ?

उत्तर—बिल्कुल नही; परन्तु जैसे—'समुद्र की सपाटी' ऐसा बोलने मे आता है। फिर भी समुद्र का पानी, उसकी शीतलता और उसकी वर्तमान एकरूप सपाटी ये तीनो भिन्न-भिन्न नही है, उसी प्रकार आत्मा मे द्रव्य, गुण जो कि सामान्य पारिणामिक भाव है और उसकी कारण शुद्ध पर्याय वह विशेष पारिणामिक भाव है। फिर भी द्रव्य, गुण और उसका ध्रुव रूप वर्तमान ये तीनो अर्थात् सामान्य पारिणामिक भाव और विशेष पारिणामिक भाव वास्तव मे भिन्न-भिन्न नही हैं, अभेद ही है। यही वस्तु स्वभाव की पूर्णता है। इसी

के आश्रय से सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहतपना और सिद्धपने की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ४१—द्रव्य, गुण सामान्य पारिणामिकभाव और कारण शुद्ध पर्याय अर्थात् विशेष पारिणामिक भाव का स्पष्टीकरण करिये ताकि स्पष्ट समझ में आ जावे ?

उत्तर—(१) द्रव्यगुण-पर्याय मे सज्ञा लक्षणादि भेद दिखते हैं परन्तु वस्तु स्वरूप से भिन्न नही है। (२) जो द्रव्य-गुण तथा निरपेक्ष कारण शुद्ध पर्याय है। वह त्रिकाल एक रूप है। उसमे हमेशा सदृश परिणमन हैं। अपेक्षित पर्यायो मे उत्पाद-व्ययरूप विसदृश परिणमन है। याद रहे ससार और मोक्ष दोनो पर्यायो को अपेक्षित पर्यायो मे गिना है। (३) जब अपेक्षित पर्याय का झुकाव ध्रुव वस्तु की तरफ परम पारिणामिक भाव की तरफ जाता है तब वह ध्रुववस्तु एकरूप सम्पूर्ण होने से वहाँ उस पर्याय का उपयोग स्थिर रह सकता है वह धर्म की प्राप्ति है। और फिर जैसे-जैसे स्थिरता बढती जाती है वैसे-वैसे उस पर्याय की निर्मलता बढती जाती है। (४) परम पारिणामिक के स्वरूप को श्रद्धा मे लेना, वही सम्यग्दर्शन है। (५) सम्यग्दर्शन के ध्येयरूप परम पारिणामिक भाव ध्रुव है और उसके साथ मे त्रिकाल अभेद रूप रही हुई कारण शुद्ध पर्याय है उसको "पूजित पचमभाव परिणति" कहने मे आता है।

(६) द्रव्यदृष्टि मे जो पर्याय गौण करने की बात आती है वह तो औदयिक आदि चार भावो की पर्याय समझना चाहिए। पचम भाव परिणति अर्थात् कारण शुद्ध पर्याय गौण हो नही सकती है, क्योकि वह तो वस्तु के साथ मे त्रिकाल अभेद है। सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायो को द्रव्य-गुण और कारण शुद्ध पर्याय—तीनो की अभेदता का ही अवलम्बन है। तीनो का भिन्न-भिन्न अवलम्बन नही है।

(७) धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यो की पर्याय सदा एक रूप पारिणामिक भाव से ही वर्तती है। उसका ज्ञाता जीव है। जीव

की प्रगट पर्याय मे तो ससार मोक्ष आदि विसदृशता है परन्तु उसके अलावा एकरूप, एक सदृश निरपेक्ष "कारण शुद्ध पर्याय" हमेशा पारिणामिक भाव से वर्तती है। वह सब प्रकार की उपाधि से रहित है और सभी निर्मल पर्याय प्रगट होने का कारण है। द्रव्य के साथ मे सदैव अभेद रूप वर्तती है। इस कारण शुद्ध पर्याय को 'परम पारिणामिक भाव की परिणति" कह करके, ऐसा बताया है कि जैसी त्रिकाल सामान्य वस्तु है वैसी ही विशेष भी सदृशपने वर्तती है।

(८) इस कारण शुद्ध पर्याय का व्यक्तपने का भोगना होता नही है क्योकि भोगना कार्य तो पर्याय मे होता है। ससार मोक्ष दोनो पर्याये है।

(९) जगत मे ससार पर्याय, साधक पर्याय वा सिद्धपर्याय सामान्यरूप से अनादिअनन्त है। वैसे यह कारण शुद्धपर्याय एक-एक जीव मे अनादि अनन्त सदृशरूप से है उसका विरह नही है। कारण शुद्ध पर्याय नई प्रगट नही होती है परन्तु कारण शुद्ध पर्याय को समझ करने वाले जीव को सम्यग्दर्शनादिक कार्य नया प्रगट होता है।

प्रश्न ४२—कई विद्वान कहे जाने वाले केवलज्ञान को गुण कहते हैं, क्या यह उनका कहना सत्य है ?

उत्तर—उनका कहना असत्य है क्योकि केवलज्ञान पर्याय है।

प्रश्न ४३—केवलज्ञान पर्याय है ऐसा कहीं षट्खडागम मे आया है ?

उत्तर—षट् खडागम—जीवस्थान—चूलिका खड एक सम्पादक हीरालाल जी पुस्तक ६ पुस्तकाकार पृष्ठ ३४ मे तथा शास्त्राकार पृष्ठ १७ मे लिखा है कि "केवलज्ञानमेव आत्मार्थविभासकमिति केचित् केवलदर्शनास्य भावमाचक्षते। तन्न पर्यायस्य केवलज्ञानस्य पर्यायाभावत सामर्थ्यद्वयाभावात्। भावे व अनवस्था न कैश्चिन्निवार्यते। तस्मादात्मा स्वपरावभासक इति निश्चेतव्यम्। तत्र स्वभावत केवल दर्शनम्। परावभास केवलज्ञानम् तथा सति कथ केवलज्ञान दर्शनया.

साम्यमिति चेन्न, ज्ञेयप्रमाण ज्ञानात्मकानुभवस्य ज्ञानप्रमाग त्वा विरोधात्। इति शब्दः ऐतवदर्थे दर्शनावरणीय स्य कर्मण ऐतावत्य एव प्रकृतयो नाधिका इत्यर्थ । अर्थ —केवलज्ञान ही अपने आपका और अन्य पदार्थो का जानने वाला है इस प्रकार मानकर कितने ही लोग केवलदर्शन के अभाव को कहते हैं। किन्तु उनका यह कथन युक्तिसगत नही है क्योकि केवलज्ञान स्वय पर्याय है। पर्याय से दूसरी पर्याय होती नही, इसलिए केवलज्ञान के स्व-पर के जानने वाली दो प्रकार की शक्तियो का अभाव है। यदि एक पर्याय से दूसरी पर्याय का सदभाव माना जावेगा तो आने वाला अनवस्था दोष किसी के द्वारा भी नही रोका जा सकता। इसलिए आत्मा ही स्वपर को जाननेवाला है ऐसा निश्चय करना चाहिए। उनमे स्व प्रतिभास को केवलदर्शन कहते हैं और पर प्रतिभास को केवलज्ञान कहते हैं।

शका—उक्त प्रकार की व्यवस्था मानने पर केवलज्ञान व केवल-दर्शन मे समानता कैसे रह सकेगी ?

समाधान—नही, क्योकि ज्ञेयप्रमाण ज्ञानात्मक आत्मानुभव के ज्ञान के प्रमाण होने मे कोई विरोध नही है।

प्रश्न ४४—कैसी भगवान की मूर्ति को वन्दनीय कहा है ?

उत्तर—भगवत् जिनसेनाचार्य ने जिन सहस्रनाम स्तोत्र मे कहा है कि —

"व्योममूर्तिरमूर्तात्मा, निर्लेपो निर्मलोऽचल।
सोममूर्ति सुसौम्यात्मा, सूर्यमूर्तिर्महाप्रभ. ।।७।।

प्रश्न ४५—दिवान अमरचन्द जयपुर मे बड़े दानी थे, ऐसा दान करते थे किसी को पता भी ना चले—एक बार उनके विषय में दरबार मे पूछा कि :—

"कहाँ सीखे दीवान जी, ऐसी देनी देन।
ज्यो ज्यो कर ऊँचे भए, त्यो त्यो नीचे नैन ।।

उत्तर—दिवान जी का —मैं उसका स्वामी नही, यह आती दिन रेन । लोग भरम ऐसी गिने-याते नीचे नैन ।

प्रश्न ४६—प्रवचनसार के ४७ नयो का सच्चा किसको ज्ञान होता है और किसको नहीं होता है ?

उत्तर—ज्ञानियो को ही होता है । अज्ञानियो को नही होता है । क्योकि नय श्रुतज्ञान प्रमाण का अश है । प्रमाण ज्ञान को प्रमाणता तभी प्राप्त होती है जब अन्तरदृष्टि मे विभाव तथा पर्याय भेदो से रहित अपने शुद्धात्मरूप ध्रुव ज्ञायक की श्रद्धा के अवलम्बन का जोर सतत वर्तता हो । ध्रुव ज्ञायक स्वभाव के अवलम्बन का बल ज्ञानी को सदैव वर्तता होने के कारण उसका ज्ञान सम्यक् प्रमाण है और ज्ञानी को ही क्रियानय, ज्ञाननय, व्यवहारनय तथा निश्चयनयादि नयो द्वारा वर्णित धर्मों का सच्चाज्ञान होता है । अज्ञानी मिथ्यादृष्टियो को नही होता है क्योकि अज्ञानी को निज शुद्धात्मरूप ध्रुव ज्ञायक स्वभाव की प्रतीति ना होने से उसका ज्ञान अप्रमाण है मिथ्या है ।

प्रश्न ४७—ज्ञानी की दशा कैसी होती है ?

उत्तर—(१) ज्ञानी की परिणति सहज रूप होती है । समय-समय भेद ज्ञान को याद करना नही पडता । परन्तु ज्ञानी का तो सहज रूप परिणमन हो गया है । जिससे आत्मा मे एक धारा परिणमन हुआ ही करता है । (२) किसको अपना अनुभव हो जाता है । वह सब जीवो को चैतन्यमयी भगवान ही देखता है । (३) ज्ञानी की दृष्टि अपने स्वभाव पर ही होती है । स्वानुभूति के समय या सविकल्प दशा के समय बाहर उपयोग होवे तो भी दृष्टि स्वभाव से छूटती नही है । (४) जैसे—वृक्ष का मूल पकडने से सब हाथो मे आ जाता है । वैसे ही ज्ञायक पर दृष्टि जाते ही सब हाथ मे आ जाता है । जिसने मूल स्वभाव की दृष्टि मे ले लिया चाहे जैसे प्रसगो मे हो शान्ति वर्तेगी और ज्ञाता दृष्टारूप ही रहेगा । (५) जैसे—आकाश मे पतग उडती है परन्तु डोरा हाथ मे ही रहता है, उसी प्रकार विकल्प आते है परन्तु

ज्ञानी की दृष्टि अपने एक चैतन्य स्वभाव पर ही रहती है (६) ज्ञानियो को अस्थिरता सम्बन्धी राग काले सर्प जैसा लगता है। क्योकि ज्ञानी विभाव भावो मे होने पर भी विभाव भावो को अपने से पृथक् जानता है। (७) वर्तमान काल मे सम्यक्त्व प्राप्त करता है यह 'अचम्भा है' क्योकि वर्तमान मे कोई वलवान योग्य देखने मे नही आता है। एक मात्र कही-कही सम्यक्दृष्टि का ही योग है। [परमात्म प्रकाश अध्याय दूसरा श्लोक १३९] (८) सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है। वह गृहस्थाश्रम मे होने पर भी ससार के कार्यों मे खडा हुआ दिखे परन्तु उसमे लिप्त नही होता है। निर्लेप रहता है क्योकि ज्ञान धारा और उदयधारा का परिणमन पृथक्-पृथक् है। अस्थिरता के राग का ज्ञानी ज्ञाता रहता है। (९) जैसे—मुसाफिर एक नगर से दूसरे नगर जाता है तब बीच के नगर छोडता जाता है उनमे रुकता नही है। उसी प्रकार साधक दशा मे शुभाशुभ बीच मे आते हैं। ज्ञानी उन्हे छोडता जाता है। उनमे रुकता नही है। (१०) एक समय मात्र स्वभाव से दृष्टि ज्ञानी की हटती नही है। यदि एक समय मात्र भी स्वभाव से दृष्टि हट जावे तो अज्ञानी हो जाता है।

प्रश्न ४८—अरि-रज-रहस का क्या अर्थ है और किस शास्त्र मे यह अर्थ किया है ?

उत्तर—अरि=मोहनीय कर्म। रज=ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय। रहस=अन्तराय। वृहत द्रव्यसग्रह गाथा ५० की टीका मे तथा चारित्र पाहुड गाथा १-२ की टीका मे किया है।

प्रश्न ४९—परमात्मप्रकाश प्रथम अधिकार गाथा ७ मे किसको उपादेय और किसको त्यागने योग्य कहा है ?

उत्तर—(१) पाँच अस्तिकायो मे निजशुद्ध जीवास्तिकाय को, (२) षट् द्रव्यो मे निजशुद्ध द्रव्य को, (३) सप्त तत्वो मे निज शुद्ध जीव-तत्व को, (४) नव पदार्थो मे निज शुद्ध जीव पदार्थ को उपादेय कहा है। अन्य सब त्यागने योग्य है। ऐसा कहा है।

प्रश्न ५०—परमात्म प्रकाश १२वीं गाथा की टीका में क्या बताया है ?

उत्तर—स्व सम्वेदन ज्ञान प्रथम अवस्था मे चौथे-पाँचवे गुणस्थान वाले गृहस्थ को भी होता है।

प्रश्न ५१—परमात्म प्रकाश २३वें श्लोक मे क्या बताया है ?

उत्तर—केवली की दिव्यध्वनि से, महामुनियो के वचनो से तथा इन्द्रिय मन से भी शुद्धात्मा जाना नही जाता है।

प्रश्न ५२—परमात्म प्रकाश ३४वें श्लोक मे क्या बताया है ?

उत्तर—इस देह मे रहता हुआ भी देह को स्पर्श नही करता, उसी को तू परमात्मा जान।

प्रश्न ५३—परमात्म प्रकाश ६८वें श्लोक मे क्या बताया है ?

उत्तर—प्रत्येक भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय रहित बध-मोक्ष की पर्याय से रहित और बध-मोक्ष के कारण रहित है। शुद्ध निश्चयनय से नित्यानद ध्रुव आत्मा है। वह भगवान आत्मा उत्पन्न नही होता अर्थात् उत्पाद की पर्याय मे नही आता, मरता नही अर्थात् व्यय मे भी नही आता। एकेन्द्रिय की पर्याय हो या सिद्ध की पर्याय हो ध्रुव भगवान तो सदा ज्ञानानन्द रूप ही रहता है।

प्रश्न ५४—परमात्म प्रकाश अध्याय दो गाथा ६३ में क्या बताया है ?

उत्तर—यह जीव पाप के उदय से नरकगति और तिर्यंचगति पाता है। पुण्य से देव होता है। पुण्य और पाप दोनो के मेल से मनुष्य गति को पाता है। और पुण्य-पाप दोनो के ही नाश होने से मोक्ष पाता है। ऐसा जानो।

प्रश्न ५५ - मुमुक्षु को क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर—(१) मुझ जीवतत्व का दूसरे द्रव्यो से सर्वथा सम्बन्ध नही है। (२) मुझ जीव तत्व से विकार अत्यन्त भिन्न है। (३) मुझ जीव तत्व से निर्मल पर्याय भी भिन्न है क्योकि द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नही

है और पर्याय मुझ जीवतत्व को स्पर्शती नही है। (४) द्रव्य का वेदन नही होता है, वेदन तो पर्याय का है।

प्रश्न ५६—ज्ञानियो को पर की महिमा कैसे उड़ जाती है ?

उत्तर—जैसे—गाय-भैंस आदि जानवरो का गोबर मिलने पर गरीब स्त्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं और धन-वैभव मिलने पर सेठ प्रसन्न हो जाता है। परन्तु गोबर और धनादि मे जरा भी फेर नही है। उसी प्रकार ज्ञानी बनते ही अपने चैतन्य निधान को देखते ही बाहर के कहे जाने वाले निधानो की और विकारी भावो की महिमा उड जाती है।

प्रश्न ५७—ज्ञानी दूसरे को अपना नाथ क्यो नहीं बनाता है ?

उत्तर—जिसे अपने चैतन्य स्वभाव के साथ प्रेम है ऐसा सम्यग्दृष्टि पच परमेष्टी के साथ भी प्रेम गाठ बाधता नही है, क्योकि अपनी आत्मा मे अनन्तो सिद्धदशा विराज रही है। अर्थात् अनन्त परमात्मा-दशा ज्ञानी के ध्रुव पद मे पडी है ऐसा ज्ञानी आत्मा दूसरे को अपना नाथ क्यो वनावे ? कभी भी न बनावे।

प्रश्न ५८—देव-गुरु-शास्त्र क्या बताते हैं ?

उत्तर—तुझे अपनी महिमा आवे तो उसमे हमारी महिमा आ जाती है और तुझे अपनी महिमा नही आती तो तुझे हमारी भी महिमा नही आ सकती है।

प्रश्न ५९—जैन का सच्चा संस्कार क्या है ?

उत्तर—राग से भिन्न चैतन्य को मानना वह ही जैन का सच्चा सस्कार है।

प्रश्न ६०—चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग।
काग बीट सम गिनत है, सम्यग्दृष्टि लोग॥

यह दोहा कहाँ लिखा है ?

उत्तर—शीशमहल मन्दिर इन्दौर मे लिखा है।

प्रश्न ६१—नियमसार मे कैसा द्रव्य आश्रय करने योग्य है।- यह बताया है ?

उत्तर—(१) केवलज्ञानादिपूर्ण निर्मल पर्याय। (२) मतिश्रुतज्ञानादि अपूर्ण पर्याय। (३) अगुरुलघुत्व की पर्याय। (४) नर-नारकादि पर्याय। पर्याय सहित होने पर भी इन चारो प्रकार की पर्यायों से रहित ऐसे शुद्ध जीव तत्व को—ज्ञायकतत्व को सकल अर्थ की सिद्धि के लिए अर्थात् मोक्ष की सिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ—भजता हूँ अर्थात् शुद्ध जीव तत्व मे एकाग्र होता हूँ।

प्रश्न ६२—परमात्मप्रकाश अध्याय प्रथम श्लोक ४३ मे कैसा द्रव्य आश्रय करने योग्य बताया है ?

उत्तर— "यद्यपि पर्यायार्थिकनय कर उत्पाद-व्यय कर सहित है। तो भी द्रव्यार्थिकनय कर उत्पाद-व्यय रहित है, सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है। वही परमात्मा निर्विकल्प समाधि के बल से तीर्थंकर देवो ने देह मे भी देख लिया है।

प्रश्न ६३—परमात्मप्रकाश अध्याय प्रथम सातवें श्लोक की टीका में कैसा द्रव्य आश्रय करने योग्य बताया है ?

उत्तर—"अनुपचरित अर्थात् जो उपचरित नही है, इसीसे अनादि सम्बन्ध है। परन्तु असदभूत (मिथ्या) है ऐसा व्यवहारनयकर द्रव्यकर्म नोकर्म का सम्बन्ध होता है उससे रहित है और अशुद्ध निश्चयकर रागादि का सम्बन्ध है। उससे तथा मतिज्ञादि विभावगुण के सम्बन्ध से रहित और नरनारकादि चतुर्गतिरूप विभाव पर्यायो से रहित ऐसा जो चिदानन्द चिद्रूप एक अखण्ड स्वभाव शुद्धात्मतत्व है। वही सत्य है। उसी को समयसार कहना चाहिए। वही सर्वप्रकार से आराधने योग्य है।

प्रश्न ६४—परमात्म प्रकाश अध्याय एक श्लोक ६५वें मे कैसा द्रव्य आश्रय करने योग्य बताया है ?

उत्तर—"यहाँ जो शुद्ध निश्चयकर बन्ध-मोक्ष का कर्त्ता नही है। वही शुद्धात्मा आराधने योग्य है।"

प्रश्न ६५—शास्त्रो में श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है आप प्रत्यक्ष कैसे कहते हो ?

उत्तर—(१) श्रुतज्ञान प्रमाण परोक्ष है, नय भी परोक्ष है। स्वानुभूति मे मन की, राग की अथवा पर की अपेक्षा नही होती है। इसलिए स्वानुभूति प्रत्यक्ष है। (२) असख्य प्रदेशी सम्पूर्ण आत्मा जानने मे नही आता इसलिए मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है। अनुभव तो स्वय स्वत से भोगता है इस अपेक्षा प्रत्यक्ष ही है। (३) केवलज्ञानी की तरह जैसे असख्यात् प्रदेशो सहित सम्पूर्ण आत्मा को सीधा नही जानता होने की अपेक्षा मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है।

प्रश्न ६६—शुद्ध पर्याय को असत् क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—(१) जैसे अपनी आत्मा की अपेक्षा पर द्रव्य अनात्मा है वैसे ही त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा पर्याय असत् है। क्योकि त्रिकाली ध्रुव द्रव्य से प्रगट शुद्ध पर्याय भिन्न हैं। इसलिए असत् है।

प्रश्न ६७—शुद्ध पर्याय असत् है ऐसा कोई शास्त्र का प्रमाण है ?

उत्तर—(१) समयसार गा० ४९ की टीका मे लिखा है कि व्यक्तता (शुद्ध पर्याय) अव्यक्तता (त्रिकाली द्रव्य) एकमेक मिश्रितरूप से प्रतिभापित होने पर भी वह (द्रव्य) व्यक्तता को (शुद्धपर्याय को) स्पर्श नही करता है"। तथा प्रवचनसार गाथा १७२ मे अलिंग-ग्रहण के १९वें बोल मे कहा है कि "पर्याय को द्रव्य स्पर्शता नही है" यह प्रमाण है।

प्रश्न ६८—ज्ञायक भाव तो स्वभाव की अपेक्षा अनादि से ऐसा का ऐसा ही है। परन्तु "विकल्प वह मैं" ऐसे मिथ्याभाव की आड़ में वह सहज स्वभाव दृष्टि में नहीं आता—इसलिए ज्ञायक भाव तिरोभूत हो गया है। इस बात को दृष्टान्त द्वारा समझाइये ?

उत्तर—जैसे—नजर के आगे टेढी अगुली करने पर सम्पूर्ण समुद्र दिखता नही, इसलिए देखने वाले के लिए समुद्र तिरोभूत हो गया है ऐसा कहा जाता है। दृष्टि मे नही आता इसलिए तिरोभाव कहा है।

परन्तु समुद्र तो ऐसा का ऐसा ही पडा है, उसी प्रकार ज्ञायक भाव तो स्वभाव से पूर्णानन्द का नाथ त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड अनादि का ऐसा का ऐसा ही है। वह कोई तिरोभूत नही हुआ है। परन्तु जानने वाले की दृष्टि मे "रागादि वह मैं" ऐसे मिथ्या-भाव की एकत्व वुद्धि होने से ज्ञायकभाव दृष्टि मे नही आता होने की अपेक्षा तिरोभूत हो गया है। ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न ६९—द्रव्यसंग्रह गाथा ४७ में क्या बताया है ?

उत्तर—निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग दोनो एक साथ त्रैकालिक आत्मा मे एकाग्रता रूप निश्चय धर्मध्यान से प्रगट होते है।"

प्रश्न ७०—अज्ञानी को ज्ञेयो के साथ मैत्री क्यो वर्तती है ?

उत्तर—त्रैकालिक आत्मा ज्ञान स्वरूप है, जानना-देखना उसका त्रिकाल स्वभाव है। उस स्वभाव का अनुभव न करके जो ज्ञान की अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न जानने की क्रियायें होती हैं। उसमे ज्ञेय पदार्थ निमित्त हैं। परन्तु अज्ञानी को ऐसा लगता है कि निमित्त के कारण ज्ञान की भिन्न-भिन्न पर्याये होती हैं। जबकि ज्ञान की भिन्न-भिन्न पर्याये अपने कारण से हुई है, ज्ञेय से नही हुई है। ऐसा न मानने से अज्ञानियो के ज्ञेय के (निमित्त-पर पदार्थों के) साथ मैत्री वर्तती है।

प्रश्न ७१—सम्यग्दर्शन को मोक्ष महल की प्रथम सीढी क्यो कहा है।

उत्तर—(१) सम्यग्दर्शन होने पर एक चैतन्य चमत्कार मात्र प्रकाश रूप प्रगट है वह स्पष्ट प्रतीति मे आता है। (२) सम्यग्दर्शन होने पर जन्ममरण के दु खो का अन्त आ जाता है। (३) अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए सम्यग्दर्शन को मोक्ष महल की प्रथम सीढी कहा है।

प्रश्न ७२—संसारचक्र का मूल कारण कौन है और क्यो है ?

उत्तर—ससार चक्र का मूल कारण एकमात्र मिथ्यात्व और राग-द्वेष ही है, क्योकि मिथ्यात्व, राग-द्वेष के निमित्त से कर्मबध होता

है। कर्मबध से गतियो की प्राप्ति होती है। गतियो की प्राप्ति से शरीर का सम्बन्ध होता है। शरीर के सम्बन्ध से इन्द्रियो का सम्बन्ध होता है। इन्द्रियो के सम्बन्ध से विषय ग्रहण की इच्छा होती है। विषय ग्रहण को इच्छा से राग-द्वेष होता है और फिर रागद्वेप से कर्मबध होता है। इस प्रकार ससार चक्र चलता ही रहता है।

प्रश्न ७३—ससार चक्र का अभाव कैसे हो ?

उत्तर—रागद्वेप रहित अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय करे तो कर्मबन्ध नही होगा। कर्मबन्ध न होने से गति की प्राप्ति नही होगी। गति की प्राप्ति ना होने से शरीर का सयोग नही होगा। शरीर का सयोग ना होने से इन्द्रियो का सयोग नही बनेगा। इन्द्रियो का सयोग ना होने से विपय ग्रहण की इच्छा ना रहेगी। जव विषय ग्रहण की इच्छा ना रहेगी तो ससार चक्र का अभाव हो जावेगा।

जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कहा मोक्ष-मार्ग सम्बन्धी प्रकरण समाप्त हुआ।

जय महावीर—जय महावीर

—:o:—

पचाध्यायी पर २९१ प्रश्नोत्तर—पॉचवां अधिकार

(प० सरनाराम कृत)

पहले भाग का दृष्टि परिज्ञान

सत् स्वभाव से ही अनेक धर्मात्मक (रूप बना हुआ अखण्ड पिण्ड है। उसका जीव को ज्ञान नही है। उसका ज्ञान कराने के लिए जैन

धर्म दृष्टियो से काम लेता है (१) जगत मे अभेद को, बिना भेद कोई समझ नही सकता। अत सबसे प्रथम जीव को भेद भाषा से ऐसा परिज्ञान कराते है कि द्रव्य है, गुण है, पर्याय है। प्रत्येक का लक्षण सिखलाते है कि जो गुण पर्यायो का समूह है वह द्रव्य है इत्यादि रूप से। इस भेद रूप पद्धति को व्यवहार नय कहते है। यह दृष्टि द्रव्य को खण्ड-खण्ड कर देती है। इस दृष्टि का कहना है कि द्रव्य जुदा है, गुण जुदा है, पर्याय जुदा है। यहा तक कि एक-एक गुण, उसका एक-एक अविभाग प्रतिछेद और एक-एक प्रदेश तक जुदा है। यह सब कुछ सीखकर शिष्य को ऐसा भान होने लगता है कि जिस प्रकार एक वृक्ष मे फल, फूल, पत्ते, स्कध, मूल, शाखा जुदी-जुदी सत्ता वाले हैं और उनका मिलकर एक सत्ता वाला वृक्ष बना है, उस प्रकार द्रव्य मे अनेक अवयव हैं और उनका मिलकर बना हुआ एक द्रव्य पदार्थ है अथवा जैसे अनेक भिन्न-भिन्न सत्तावाली दवाइयो से एकगोली बनती है वैसे गुण पर्यायो से बना हुआ द्रव्य है किन्तु पदार्थ ऐसा है नही। अत यह तो पदार्थ का गलत ज्ञान हो गया। तब (२) आचार्यो को दूसरी दृष्टि से काम लेना पडा और उसको समझाने के लिए वे शिष्य से कहने लगे कि देख भाई यह बता कि आम मे कितने गुण हैं वह सोच कर बोला चार। स्पर्श रस गध और वर्ण। तब गुरु महाराज कहने लगे ठीक पर अब ऐसा करो कि रस तो हमे दे दो और रूप तुम ले लो, स्पर्श राम को दे दो और गध श्याम को। अब शिष्य चक्कर मे पडा और कहने लगा कि महाराज यह तो नही हो सकता क्योकि आम तो अखण्ड पदार्थ है। उसमे ऐसा होना असभव है। बस भाई जैसे उस आम मे चारो का लक्षण जुदा-जुदा किया जाता है पर भिन्न नही किये जा सकते ठीक उसी प्रकार यह जो द्रव्य है इसमे ये गुण पर्याय केवल लक्षण भेद से भिन्न-भिन्न हैं वास्तव मे भिन्न नही किए जा सकते। यह तो तुझे अखण्ड सत् का परिज्ञान कराने का हमारा प्रयास था, एक ढग था। वास्तव मे वह भेद रूप नही है अभेद है। अब शिष्य की आँखे

खुली और यह अनुभव करने लगा कि वह तो स्वत सिद्ध निर्विकल्प अर्थात् भेद रहित अखण्ड है। इसको कहते हैं शुद्ध दृष्टि। यहाँ शुद्ध शब्द का अर्थ राग रहित नही किन्तु भेद रहित है। इस दृष्टि का पूरा नाम है शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि अर्थात् वह दृष्टि जो सत् को अभेद रूप ज्ञान करावे। और आगे चलिए। गुरु जी ने शिष्य से पूछा कि यह पुस्तक किसकी है तो शिष्य ने कहा महाराज मेरी। अब उससे पूछते हैं कि तू तो जीव है, चेतन है, पुस्तक तो अजीव है, जड है। यह तेरी कैसी हो गई। अब शिष्य फिर चक्कर मे पडा और बहुत देर सोचने के बाद जब और कुछ उत्तर न बन पडा तो कहने लगा, महाराज इस समय मेरे पास है मैं पढता हूँ। इसलिए व्यवहार से मेरी कह देते हैं वास्तव मे मेरी नही है। अरे बस यही बात है। द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, यहा भी भेद से ऐसा कह देते हैं, यहाँ भी यह व्यवहार है, वास्तव मे ऐसा नही है। वास्तव=निश्चय। जो द्रव्य को भेद रूप कहे वह व्यवहार और जो अभेद रूप कहे वह निश्चय। इसलिए इसका दूसरा नाम रक्खा निश्चयनय। इस प्रकार इसको शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि, निश्चय दृष्टि, भेद निषेधक दृष्टि, व्यवहार निषेधक दृष्टि, अखण्ड दृष्टि, अभेद दृष्टि, अनिर्वचनीय दृष्टि आदि अनेको नामो से आगम मे कहा है। और आगे चलिये अब शिष्य को (३) तीसरी दृष्टि का परिज्ञान कराते हैं। आचार्य कहने लगे कि अच्छा बताओ! आत्मा मे कितने प्रदेश हैं? वह बोला—असख्यात्। व्यवहार से या निश्चय से? व्यवहार से, क्योकि अब तो वह जान चुका था कि भेद व्यवहार से है। और फिर पूछा कि निश्चय से कैसा है तो बोला अखण्ड देश। साबाश तू होनहार है हमारी बात समझ गया। देख वे जो व्यवहार से असख्यात् है वे ही निश्चय से एक अखण्ड देश है। इसी को कहते हैं प्रमाण दृष्टि। जो ऐसा है वही ऐसा है। यही इसके बोलने की रीति है। यह पदार्थ को भेदाभेदात्मक कहता है अर्थात् जो भेद रूप है वही अभेद रूप है। इस प्रकार तीना दृष्टिया द्वारा

पदार्थ का ठीक-ठीक बोध हो जाता है और जैसा पदार्थ स्वतः सिद्ध बना हुआ है वैसा वह ठीक ख्याल मे पकड मे आ जाता है।

सो ग्रन्थकार ने यहाँ पहली व्यवहार दृष्टि का परिज्ञान ७४७ की दूसरी पक्ति मे तथा ७४९ मे कराया है। दूसरी निश्चय दृष्टि का परिज्ञान ७४७ की प्रथम पक्ति तथा ७५० की प्रथम पक्ति मे कराया है और तीसरी प्रमाण दृष्टि का परिज्ञान ७४८ मे तथा ७५० की दूसरी पक्ति मे कराया है। और इस ग्रन्थ मे न० ८ से ७० तक निश्चय अभेद दृष्टि से सत् का निरूपण किया है और ७१ से २६० तक भेद दृष्टि-व्यवहार दृष्टि से सत् का निरूपण किया है और २६१ मे तीसरी प्रमाण दृष्टि से सत् का निरूपण किया है। श्लोक न० ८४, ८८, २१६ तथा २४७ मे भेद और अभेद दृष्टियो को लगा कर भी दिखलाया है। इस प्रकार द्रव्य के भेदभेदात्मक स्वरूप को दिखलाया है।

अब दूसरी बात यह जानने की है कि ऐसे भेदाभेदात्मक द्रव्य मे दो स्वरूप पाये जाते है एक तो यह कि वह अपने स्वरूप को (स्वभाव को) त्रिकाल एक रूप बनाए रखता है और दूसरा स्वभाव यह कि वह उस स्वभाव को बनाये रखते हुए भी प्रति समय स्वतन्त्र निरपेक्ष स्वभाव या विभाव* रूप परिणमन किया करता है और उस परिणमन मे हानि-वृद्धि भी होती है। स्वभाव का नाम है द्रव्य, सत्त्व, वस्तु, पदार्थ आदि और उस परिणमन का नाम है पर्याय, अवस्था, दशा, परिणाम आदि। यहा भी द्रव्य को दो रूप से देखा जाता है जब स्वभाव को देखना है तो सारे का सारा द्रव्य स्वभाव रूप, त्रिकाल एक रूप, अवस्थित नजर आयेगा इसको कहते हैं द्रव्य दृष्टि, स्वभाव दृष्टि,

---

* देखिये श्री समयसार गाथा ११६ से १२५ तक तथा कलश न० ६४, ६५ तथा श्री पचास्तिकाय गा० ६२ टीका तथा श्री तत्त्वार्थसार तीसरे अजीव अधिकार का श्लोक न० ४३, प्रवचनसार गा० १६, ९५ टीका, पचाध्यायी दूसरा भाग १०३०।

अन्वय दृष्टि, त्रिकाली दृष्टि, निश्चय दृष्टि, सामान्य दृष्टि आदि।
जब अवस्था को देखना हो तो सारे का सारा द्रव्य परिणाम रूप, पर्यायरूप, अनवस्थित, हानिवृद्धि रूप अवस्था रूप दृष्टिगत होगा। इसको कहते हैं पर्याय दृष्टि, व्यवहार दृष्टि, विशेष दृष्टि आदि। यहाँ यह बात खास ध्यान रखने की है कि ऐसा नही है कि त्रिकाली स्वरूप तो किसी कोठे मे जुदा पडा है और पर्याय का स्वरूप कही ऊपर धरा हो। पर्यायरूप परिणमन उस स्वभाववान् का ही है। उनमे दोनो धर्मों के प्रदेश तो भिन्न हैं नही। पर स्वरूप दोनो इस कमाल से वस्तु मे रहते हैं कि उसको आप चाहे जिस दृष्टि से देख लो हूबहू वैसी की वैसी नजर आयेगी। जैसे एक जीव वर्तमान मे मनुष्य है। अब यदि स्वभाव दृष्टि से देखो तो वह चाहे मनुष्य है या देव, सिद्ध है या ससारी, जीव तो एक जैसा ही है। इसलिए तो जगत् मे कहा जाता है कि जो कर्ता है वह भोगता है। सिद्ध ससारी मे कही जीव के स्वरूप मे फर्क नही आ गया है और यदि पर्याय दृष्टि से देखे, परिणाम दृष्टि से देखें तो कहाँ देव कहाँ मनुष्य, कहाँ ससारी कहाँ सिद्ध। यह परिणमन स्वभाव का कमाल है कि स्वकाल की योग्यता अनुसार कही स्वभाव के अधिक अश प्रगट हैं कही कम अश प्रगट है। केवल प्रगटता अप्रगटता के कारण, अवगाहन के कारण, भूत्वाभवन के कारण, आकारान्तर के कारण यह अन्तर पडा है। स्वभाव को बनाये रखना अगुरुलघु गुण का काम है। परिणमन कराते रहना द्रव्यत्व गुण का काम है। क्या कहें वस्तु ही कुछ ऐसी बनी हुई है। इस ग्रन्थ मे इसको ६५, ६६, ६७ और १९८ मे लगा कर दिखलाया है।

अब एक बात और रह गई। कही द्रव्य दृष्टि प्रथमवर्णित अभेद अखण्ड के लिए प्रयोग की है और पर्याय दृष्टि भेद के लिए प्रयोग की है और कही द्रव्य दृष्टि स्वभाव के लिए और पर्याय दृष्टि परिणाम के लिए प्रयोग की जाती है। अब कहाँ क्या अर्थ है यह गुरुगम से भलीभाँति सीख लेने की बात है, वरना अर्थ का अनर्थ हो जाएगा और

पदार्थ का भान न होगा। जितना ग्रन्थ आप पढ चुके है इसमे नं० ८४, ८८, २१६, २४७ मे अभेद के लिए द्रव्य दृष्टि और भेद के लिए पर्याय दृष्टि का प्रयोग किया है। और नं० ६५, ६६, ६७, १९८ मे स्वभाव के लिए द्रव्य दृष्टि और परिणाम के लिए पर्याय दृष्टि का प्रयोग किया है। आप सावधान रहे इसमे बडे-बडे शास्त्रपाठी भी भूल कर जाते हैं। अध्यात्म के चक्रवर्ती श्री अमृतचन्द्र सूरि ने पुरुपार्थ-सिद्धयुपाय नं० ५८ मे लिखा है कि इस अज्ञानी आत्मा को वस्तु स्वरूप का भान कराने मे नयचक्र को चलाने मे चतुर ज्ञानी गुरु ही शरण हो सकते है। सद्गुरु विना न आज तक किसी ने तत्त्व पाया है न पा सकता है ऐसा ही अनादि अनन्त मार्ग है। वस्तु स्वभाव है। कोई क्या करे। अर्थ इसका यह है कि जब जीव मे यथार्थ बोध की 'स्वकाल' मे योग्यता होती है तो सामने अपने कारण से वस्तु स्वभाव नियमानुसार ज्ञानी गुरु होते हैं। तव उन पर आरोप आता है कि गुरुदेव की कृपा से वस्तु मिली। निश्चय से आत्मा का गुरु आत्मा ही है। जगत् मे सत् का परिज्ञान हुये बिना किसी की पर मे एकत्वबुद्धि, पर कर्तृत्व भोक्तृत्व का भाव नही मिटता तथा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नही होती और सत् का परिज्ञान करने के लिए इससे बढिया ग्रन्थ जगत् मे आज उपलव्ध नही है। यह ग्रन्थराज है। यदि मोक्षमार्गी बनने की इच्छा है तो इसका रुचिपूर्वक अभ्यास करिये। यह नावल की तरह पढने का नही है। कोर्स ग्रन्थ है। इसका वार-वार मथन कीजिए, विचार कीजिए। सद्गुरुदेव का समागम कीजिए तो कुछ ही दिनो मे पदार्थ का स्वरूप आपको झलकने लगेगा। सद्गुरु देव की जय। ओ शान्ति।

कण्ठस्थ करने योग्य प्रश्नोत्तर— **प्रमाण श्लोक नं०**

द्रव्यत्व अधिकार (१)

प्रश्न १—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से (निश्चय दृष्टि से-अभेद दृष्टि से) द्रव्य का क्या लक्षण है ?

उत्तर—जो सत् स्वरूप, स्वत सिद्ध, अनादि अनन्त, स्वसहाय और निर्विकल्प (अखण्डित) है वह द्रव्य है।

(८, ७४७ प्रथम पक्ति, ७५० प्रथम पक्ति)

प्रश्न २—पर्यायार्थिक नय से (व्यवहार दृष्टि से—भेद दृष्टि से) द्रव्य का क्या लक्षण है ?

उत्तर—(१) गुणपर्ययवद्द्रव्य (२) गुणपर्ययसमुदायो द्रव्य (३) गुणसमुदायो द्रव्य (४) समगुणपर्यायो द्रव्य (५) उत्पादव्ययध्रौव्य-युक्त सत्-सत् द्रव्य लक्षण। ये सब पर्यायवाची हैं। सब गुण और त्रिकालवर्ती सब पर्यायो का तन्मय पिण्ड द्रव्य है यह इसका अर्थ है।

(७२, ७३, ८६, ७४७ दूसरी पक्ति, ७४९)

प्रश्न ३—प्रमाण से (भेदाभेद दृष्टि से) द्रव्य का क्या लक्षण है ?

उत्तर—जो द्रव्य गुणपर्यायवाला है वही द्रव्य, उत्पादव्ययध्रौव्य-युक्त है तथा वही द्रव्य, अखण्डसत् अनिर्वचनीय है।

(२६१ प्रथम पक्ति, ७४८, ७५० दूसरी पक्ति)

प्रश्न ४—द्रव्य के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—द्रव्य, तत्व, सत्व, सत्ता, सत्, अन्वय, वस्तु, अर्थ, पदार्थ, सामान्य, धर्मी, देश, समवाय, समुदाय, विधि। (१४३)

प्रश्न ५—स्वतः सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु पर से सिद्ध नही है। ईश्वरादि की बनाई हुई नही है। स्वत स्वभाव से स्वय सिद्ध है। (८)

प्रश्न ६—अनादि अनन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु क्षणिक नही है। सत् की उत्पत्ति नही है, न सत् का नाश है, वह अनादि से है और अनन्त काल तक रहेगी। (८)

प्रश्न ७—स्वसहाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदार्थ पदार्थान्तिर के सम्बन्ध से पदार्थ नही है। निमित्त या अन्य पदार्थ से न टिकता है और न परिणमन करता है। अनादि अनन्त स्वभाव या विभाव रूप से स्वय अपने परिणमन स्वभाव के

कारण परिणमता है। कभी किसी पदार्थ का अश न स्वय अपने मे लेता है और न अपना कोई अश दूसरे को देता है। (८)

प्रश्न ८—अनादि अनन्त और स्वसहाय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—अनादि अनन्त मे उसे उत्पत्ति नाश से रहित बताना है और स्वसहाय मे उसकी स्वतन्त्र स्थिति तथा स्वतन्त्र परिणमन बताना है। (८)

प्रश्न ९—निर्विकल्प किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य के प्रदेश भिन्न, गुण के प्रदेश से भिन्न पर्याय के प्रदेश भिन्न, उत्पाद के प्रदेश भिन्न, व्यय के प्रदेश भिन्न, ध्रुव के प्रदेश भिन्न, जिसमे न हो अर्थात् जिसके द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से किसी प्रकार सर्वथा खण्ड न हो सकते हो, उसे निर्विकल्प या अखण्ड कहते है। (८)

प्रश्न १०—महासत्ता किसको कहते हैं ?

उत्तर—सामान्य को, अखण्ड को, अभेद को। (२६५)

प्रश्न ११—अवान्तरसत्ता किसको कहते हैं ?

उत्तर—विशेष को, खण्ड को, भेद को। (२६६)

प्रश्न १२ महासत्ता अवान्तरसत्ता भिन्न-भिन्न हैं क्या ?

उत्तर—नही, प्रदेश एक ही है, स्वरूप एक ही है, केवल अपेक्षाकृत भेद है। वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। अभेद की दृष्टि से वह सारी महासत्ता रूप दीखती है। भेद की दृष्टि से वही सारी अवान्तर सत्ता रूप दीखती है जैसे एक ही वस्तु को सत् रूप देखना महासत्ता और उसी को जीवरूप देखना अवान्तर सत्ता है।

(१५, १६, २६४, २६७, २६८)

प्रश्न १३—सामान्य विशेष से क्या समझते हो ?

उत्तर—द्रव्य को अखण्ड सत् रूप से देखना सामान्य है और उसी को किसी भेद रूप से देखना विशेष है। जैसे एक ही वस्तु को सत् रूप देखना सामान्य है उसी को जीव रूप देखना यह विशेष है। वस्तु है। वस्तु उभयात्मक है। (१५, १६)

प्रश्न १४—सत् को अखण्ड रूप से देखने वाली दृष्टियो का क्या नाम है ?

उत्तर—सत् को अभेद दृष्टि से देखने को सामान्य दृष्टि, शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि, अखण्ड दृष्टि, अभेद दृष्टि, निर्विकल्प दृष्टि, अनिर्वचनीय दृष्टि, निश्चय दृष्टि, शुद्ध दृष्टि आदि अनेक नामो से कहा जाता है। (८४, ८८, २१६, २४७)

प्रश्न १५—सत् को खण्ड रूप से देखने वाली दृष्टियो का क्या नाम है ?

उत्तर—सत् को भेद दृष्टि से देखने को विशेष दृष्टि, पर्याय दृष्टि, अश दृष्टि, खण्ड दृष्टि, व्यवहार दृष्टि, भेद दृष्टि कहा जाता है। (८४, ८८, २४७)

प्रश्न १६—द्रव्य का विभाग किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—एक विस्तार क्रम से, दूसरा प्रवाह क्रम से। विस्तार क्रम मे यह जानने की आवश्यकता है कि प्रत्येक द्रव्य कितने प्रदेशो का अखण्ड पिण्ड है और प्रवाह क्रम मे उसके अनन्त गुण, प्रत्येक गुण के अनन्त अविभाग प्रतिछेद तथा उनका अनादि अनन्त हीनाधिक परिणमन जानने की आवश्यकता है।

प्रश्न १७—द्रव्यों का विस्तार क्रम (लम्बाई) बताओ ?

उत्तर—धर्म अधर्म और एक जीव द्रव्य असख्यात् प्रदेशी है, आकाश अनन्त प्रदेशी है, कालाणु तथा शुद्ध पुद्गल परमाणु अप्रदेशी अर्थात् एक प्रदेशी है। (२५)

प्रश्न १८—एक द्रव्य के प्रत्येक प्रदेश को एक स्वतन्त्र द्रव्य मानने मे क्या आपत्ति है ? (३१)

उत्तर—गुण परिणमन प्रत्येक प्रदेश मे भिन्न-भिन्न रूप से होना चाहिए जो प्रत्यक्षबाधित है। (३२ से ३७)

प्रश्न १९—द्रव्य का चतुष्टय किसे कहते हैं ?

उत्तर—देश-देशाश-गुण-गुणाश को द्रव्य का चतुष्टय कहते हैं।

प्रश्न २०—देश किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रदेशो के अभिन्न पिण्ड को देश या द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न २१—देशांश किसे कहते हैं ?

उत्तर—भिन्न-भिन्न प्रत्येक प्रदेश को देशाश या क्षेत्र कहते हैं।

प्रश्न २२—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—त्रिकाली शक्तियो को गुण या भाव कहते है।

प्रश्न २३—गुणांश किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुण के एक-एक अविभाग प्रतिछेद को गुणाश या पर्याय कहते हैं।

प्रश्न २४—देश देशांश के मानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—देश से द्रव्य के अस्तित्व की प्रतीति होती है और देशाश के मानने से कायत्व-अकायत्व और महत्व-अमहत्व का अनुमान होता है जैसे काल द्रव्य अकायत्व है और आत्मा कायत्व है तथा आकाश आत्मा से महान है। (२८, २९, ३०)

प्रश्न २५—कायत्व, अकायत्व, महत्व अमहत्व किसे कहते हैं?

उत्तर—वहुप्रदेशी को कायत्व या अस्तिकाय कहते है और अप्रदेशी अर्थात् एक प्रदेशी को अकायत्व कहते हैं। वडे छोटे के परिज्ञान को महत्व अमहत्व कहते हैं।

प्रश्न २३—गुण-गुणांश के मानने से क्या लाभ है ? (६४)

उत्तर—गुण दृष्टि से वस्तु अवस्थित-त्रिकाल एक रूप है, पर्याय दृष्टि से वस्तु अनवस्थित-समय समय भिन्न रूप है इसका परिज्ञान होता है। (१९८)

प्रश्न २७—द्रव्य का स्वभाव क्या है ?

उत्तर—द्रव्य स्वत. सिद्ध परिणामी है। 'स्थित रहता हुआ बदला करता है' यही उसका स्वभाव है। इस स्वभाव के कारण ही वह गुण-पर्यायमय या उत्पादव्ययध्रौव्यमय है। स्वत. सिद्ध स्वभाव के कारण

उसमे गुण धर्म या ध्रौव्यधर्म है। परिणमन स्वभाव के कारण उसमें पर्यायधर्म या उत्पाद व्ययधर्म है। (८९, १७८)

प्रश्न २८—द्रव्य और पर्याय दोनो मानने की क्या आवश्यकता है ? (६४)

उत्तर—द्रव्य दृष्टि से वस्तु अवस्थित है और पर्याय दृष्टि से वस्तु अनवस्थित है। द्रव्य दृष्टि को निश्चय दृष्टि अन्वय दृष्टि, सामान्य दृष्टि, भी कहते हैं। पर्याय दृष्टि को अवस्था दृष्टि, विशेप दृष्टि व्यवहार दृष्टि भी कहते हैं। (६५, ६६, ६७)

प्रश्न २९—अवस्थित अनवस्थित से क्या समझते हो ?

उत्तर—यह द्रव्य 'वही का वही' और 'वैसा का वैसा' ही है इसको अवस्थित कहते हैं अर्थात् द्रव्य का त्रिकाली स्वरूप सदा एक जैसा रहता है। इस अपेक्षा वस्तु अवस्थित है तथा प्रत्येक समय पर्याय मे हीनाधिक परिणमन हुआ करता है, इस अपेक्षा अनवस्थित है।

प्रश्न ३०—अवस्थित न मानने से क्या हानि है ?

उत्तर—मोक्ष का पुरुषार्थ ज्ञानी किस के आश्रय से करेंगे ? किसी के भी नही।

प्रश्न ३१—अनवस्थित न मानने से क्या हानि है ?

उत्तर—मोक्ष और ससार का अन्तर मिट जायेगा, मोक्ष का पुरुषार्थ व्यर्थ हो जायेगा।

प्रश्न ३२—अवस्थित के पर्यायवाची नाम बताओ ?

उत्तर—अवस्थित, ध्रुव, नित्य, त्रिकाल एकरूप, द्रव्य, गुण, सामान्य, टकोत्कीर्ण।

प्रश्न ३३—अनवस्थित के पर्यायवाची नाम बताओ ?

उत्तर—अनवस्थित, अध्रुव, अनित्य, समय समय मे भिन्न-भिन्न रूप, पर्याय, विशेष।

गुणत्व अधिकार (२)

प्रश्न ३४—गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जो देश के आश्रय रहते हो, (२) देश के विशेष हो, (३) स्वय निर्विशेष हो, (४) सब के सब उन्ही प्रदेशो मे इकट्ठे रहते हो, (५) कथचित् परिणमनशील हो, उन्हे गुण कहते है ? (३८, १०३)

प्रश्न ३५—गुणो के जानने से क्या लाभ है।

उत्तर—इनके द्वारा प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न हाथ पर रक्खी हुई की तरह दृष्टिगत हो जाती है जिससे भेद विज्ञान की सिद्धि होती है और पर मे कर्तृत्व बुद्धि का भ्रम मिट जाता है। (२०४)

प्रश्न ३६—एक द्रव्य मे कितने गुण होते है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे अनन्त गुण होते है। (५२)

प्रश्न ३७—गुणों के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—गुण, शक्ति, लक्षण, विशेप, धर्म, रूप, स्वभाव, ध्रुव, प्रकृति, शील, आकृति, अर्थ, अन्वयी सहभू, ध्रुव, नित्य, अवस्थित, टकोत्कीर्ण, त्रिकाल एक रूप। (४८, १३८, ४७९)

प्रश्न ३८—गुणो को सहभू क्यो कहते हैं ?

उत्तर—क्योकि वे सब मिलकर साथ-साथ रहते हैं। पर्यायो की तरह क्रम से नही होते। (१३९)

प्रश्न ३९—गुण को अन्वयी क्यो कहते है ?

उत्तर—क्योकि सब गुणो का अन्वय द्रव्य एक है, सब मिलकर इकट्ठे रहते हैं तथा सब अनेक होकर भी अपने को एक रूप से प्रगट कर देते है। (१४४-१५३ से १५६)

प्रश्न ४०—गुण को अर्थ क्यो कहते हैं ?

उत्तर—क्योकि वे स्वतः सिद्ध परिणामी है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है। (१५८, १५९)

प्रश्न ४१—गुण के भेद लक्षण सहित बताओ ?

उत्तर—दो, साधारण असाधारण अर्थात् सामान्य विशेष। जो छहो द्रव्यो मे पाये जावे उन्हे सामान्य गुण कहते हैं जैसे अस्तित्व,

प्रदेशत्व इत्यादि। जो छहो द्रव्यो मे न पाये जाकर किसी द्रव्य मे पाये जाते हैं, उन्हे विशेष गुण कहते हैं जैसे जीव मे ज्ञान दर्शन या पुद्गल मे स्पर्श रस इत्यादि। (१६०, १६१)

प्रश्न ४२—गुणो के इस भेद से क्या सिद्धि है ?

उत्तर—सामान्य गुणो से द्रव्यत्व सिद्ध किया जाता है और विशेष गुणो से द्रव्य विशेष सिद्ध किया जाता है क्योकि उभयगुणात्मक वस्तु है। जो अस्तित्व गुण वाला है वही ज्ञान गुण वाला है। इनसे प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न सामान्य विशेषात्मक सिद्ध हो जाती है और जीव की अनादिकालीन एकत्व बुद्धि का नाश होकर भेद विज्ञान की सिद्धि होती है। पर मे कर्तृत्व बुद्धि का नाश होता है। स्व का आश्रय करके स्वभाव पर्याय प्रगट करने की रुचि जागृत हो जाती है।

(१६२, १६३)

पर्यायत्व अधिकार (३)

प्रश्न ४३—पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अखण्ड सत् मे अश कल्पना को पर्याय कहते है।

(२६, ६१)

प्रश्न ४४—पर्याय के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—पर्याय, अश, भाग, प्रकार, भेद, छेद, भग, उत्पादव्यय, क्रमवर्ती, क्रमभू, व्यतिरेकी, अनित्य, अनवस्थित। (६०, १६५)

प्रश्न ४५—व्यतिरेकी किसे कहते हैं ?

उत्तर—भिन्न-भिन्न को व्यतिरेकी कहते हैं। 'यह यही है यह वह नही है' यह उसका लक्षण है। (१५२, १५४)

प्रश्न ४६—व्यतिरेक के भेद लक्षण सहित लिखो ?

उत्तर—व्यतिरेक चार प्रकार का होता है (१) देश व्यतिरेक (२) क्षेत्र व्यतिरेक (३) काल व्यतिरेक (४) भाव व्यतिरेक। एक-एक प्रदेश का भिन्नत्व देश व्यतिरेक है। एक-एक प्रदेश क्षेत्र का

भिन्नत्व क्षेत्र व्यतिरेक है। एक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय का भिन्नत्व पर्याय व्यतिरेक है। एक-एक गुण के एक-एक अश का भिन्नत्व भाव व्यतिरेक है। (१४७ से १५० तक)

प्रश्न ४७—क्रमवर्ती किसको कहते हैं ?

उत्तर—एक, फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी, इस प्रकार प्रवाह क्रम से जो वर्तन करे उन्हे क्रमवर्ती या क्रमभू कहते है। क्रम व्यतिरेकपूर्वक तथा व्यतिरेक विशिष्ट ही होता है। (१६८)

प्रश्न ४८—तथात्व अन्यथात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—यह वही है इसको तथात्व कहते हैं तथा यह वह नही है इसको अन्यथात्व कहते हैं। जैसे यह वही जीव है जो पहले था यह तथात्व है तथा जीव देवजीव मनुष्य जीव नही है यह अन्यथात्व है। (१७४)

प्रश्न ४९—पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो। प्रदेशवत्व गुण की पर्याय को द्रव्य पर्याय या व्यजन पर्याय कहते हैं। शेष गुणो की पर्यायो को गुण पर्याय कहते हैं। (१३५, ६१, ६२, ६३)

प्रश्न ५०—पर्याय को उत्पाद व्यय क्यो कहते हैं ?

उत्तर—जो उत्पन्न हो और विनष्ट हो। पर्याय सदा उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है। कोई भी पर्याय गुण की तरह सदैव नही रहती, इसलिए पर्यायो को उत्पाद व्यय कहते है। (१६५)

उत्पाद व्यय ध्रौव्यत्व अधिकार (४)

प्रश्न ५१—उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य मे नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं। जैसे कि जीव मे देव का उत्पाद। (२०१)

प्रश्न ५२—व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य मे पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं जैसे देव पर्याय के उत्पाद होने पर मनुष्य पर्याय का नाश। (२०२)

प्रश्न ५३—ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—दोनो पर्यायो मे (उत्पाद और व्यय मे) द्रव्य का सदृशता रूप स्थायी रहना, उसे ध्रौव्य कहते हैं, जैसे कि देव और मनुष्य पर्याय मे जीव का नित्य स्थायी रहना। (२०३)

प्रश्न ५४—उत्पाद के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—उत्पाद, सभव, भव, सर्ग, सृष्टि, भाव।

प्रश्न ५५—व्यय के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—व्यय, भग, ध्वस, सहार, नाश, विनाश, अभाव, उच्छेद।

प्रश्न ५६—ध्रुव के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—ध्रुव, ध्रौव्य, स्थिति, नित्य, अवस्थित।

प्रश्न ५७—उत्पात व्यय ध्रौव्य के बारे में कुछ कहो ?

उत्तर—उत्पाद, व्यय ध्रौव्य मे अविनाभाव है। एक समय मे होते हैं। स्वय सत् का उत्पाद, सत् का व्यय या सत् का ध्रौव्य नही होता किन्तु सत् की किसी पर्याय का व्यय, किसी पर्याय का उत्पाद तथा कोई पर्याय ध्रौव्य है।

प्रश्न ५८—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य दोनों के मानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—ध्रौव्य दृष्टि से वस्तु अवस्थित और उत्पाद व्यय दृष्टि से अनवस्थित है। (१९८)

अन्तर अधिकार (५)

प्रश्न ५९—उत्पाद व्यय ध्रौव्य मे और सत् मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—अभेद दृष्टि से सत् गुण कहते है और भेद दृष्टि से उसी को उत्पाद व्यय ध्रौव्य कहते हैं। (८७)

प्रश्न ६०—सत् और द्रव्य में क्या अन्तर है ?

उत्तर—भेद दृष्टि से सत् गुण और द्रव्य गुणी कहलाता है। अभेद दृष्टि से जो सत् गुण है वही द्रव्य गुणी है। (८८)

प्रश्न ६१—द्रव्य और गुण मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—द्रव्य अवयवी है और प्रत्येक गुण उसका एक-एक अवयव है।

प्रश्न ६२—गुण और पर्याय में क्या अन्तर है ?

उत्तर—गुण त्रिकाली शक्ति को कहते है और पर्याय उसके एक अविभाग प्रतिच्छेद को या एक समय के परिणमन को कहते हैं।

प्रश्न ६३—उत्पाद व्यय और ध्रुव में क्या अन्तर है ?

उत्तर—ध्रुव तो द्रव्य के स्वत सिद्ध स्वभाव को कहते हैं और उत्पाद व्यय उसके परिणमन स्वभाव को कहते हैं

प्रश्न ६४—व्यतिरेकी और अन्वयी मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—व्यतिरेकी अनेको को, भिन्न-भिन्न को कहते हैं, ये पर्यायें हैं और जो अनेक होकर भी एक हो उन्हे अन्वयी कहते हैं, वे गुण हैं।

प्रश्न ६५—व्यतिरेकी और क्रमवर्ती में क्या अन्तर है ?

उत्तर—हैं तो दोनो एक समय की पर्याय के वाचक, पर प्रत्येक पर्याय की भिन्नता को व्यतिरेकी कहते हैं तथा पर्याय के क्रमबद्ध उत्पाद को क्रमवर्ती कहते हैं।

प्रश्न ६६—व्यतिरेक और अन्वय के लक्षण बताओ ?

उत्तर—'यह वह नही है' यह व्यतिरेक का लक्षण है तथा 'यह वही है' यह अन्वय का लक्षण है।

प्रश्न ६७—द्रव्य और पर्याय में क्या अन्तर है ?

उत्तर—स्वत सिद्ध स्वभाव को द्रव्य कहते हैं और उसके परिणमन को पर्याय कहते हैं।

नय प्रमाण अधिकार (६)

प्रश्न ६८—पर्यायार्थिक नय का विषय क्या है ?

उत्तर—जो द्रव्य का भेद रूप ज्ञान करावे जैसे द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्य है, सब भिन्न-भिन्न हैं। जो द्रव्य है वह गुण नही है, जो गुण है वह द्रव्य नही है जो द्रव्य गुण है वह पर्याय नही है, जो उत्पाद है वह व्यय ध्रौव्य नही है इत्यादि।

(८४, ८८, २४७, ७४७ दूसरी पक्ति, ७४९)

प्रश्न ६९—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय क्या है ?

उत्तर—जो द्रव्य का अभेद रूप ज्ञान करावे जैसे भेद रूप से न द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है, न उत्पाद है, न व्यय है, न ध्रौव्य है एक अखण्ड सत् अनिर्वचनीय है अथवा जो द्रव्य है वही गुण है, वही पर्याय है, वही उत्पाद है, वही व्यय है, वही ध्रौव्य है अर्थात् एक अखण्ड सत् है। (८, ८४, ८८, २१६, २४७, ४४७ प्रथम क्ति, ७५० प्रथम पक्ति)

प्रश्न ७०—प्रमाण का विषय क्या है ?

उत्तर—जो द्रव्य का सामान्यविशेषात्मक जोड रूप ज्ञान करावे जैसे जो भेद रूप है वही अभेद रूप है। जो गुण पर्याय वाला है वही गुण पर्याय वाला नही भी है। जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है वही उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त नही भी है। जो द्रव्य, गुण पर्याय वाला है वही द्रव्य, उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त है तथा वही द्रव्य, अनिर्वचनीय है। यह एक साथ दोनो कोटि का ज्ञान करा देता है। और दोनो विरोधी धर्मो को द्रव्य मे सापेक्षपने से, मैत्रीभाव से, अविरोध रूप से सिद्ध करता है।

(२६१ प्रथम पक्ति, ७४८ तथा ७५० की दूसरी पक्ति)

प्रश्न ७१—द्रव्य दृष्टि और पर्याय दृष्टि का दूसरा अर्थ क्या है ?

उत्तर—वस्तु जैसे स्वभाव के स्वत सिद्ध है वैसे ही वह स्वभाव से परिणमन शील भी है। उस स्वभाव को द्रव्य, वस्तु, पदार्थ, अन्वय सामान्य आदि कहते हैं। परिणमन स्वभाव के कारण उसमे पर्याय अवस्था परिणाम की उत्पत्ति होती है। जो दृष्टि परिणाम को गौण

करके स्वभाव को मुख्यता से कहे उसे द्रव्यदृष्टि, अन्वयदृष्टि, वस्तु दृष्टि, निश्चय दृष्टि, सामान्य दृष्टि आदि नामो से कहा जाता है और जो दृष्टि स्वभाव को गौण करके परिणाम को मुख्यता से कहे उसे पर्याय दृष्टि, अवस्था दृष्टि, विशेष दृष्टि आदि नामो से कहते हैं। जिसकी मुख्यता होती है सारी वस्तु उसी रूप दीखने लगती है।

(६५, ६६, ६७, १६८)

इस लेख मे पहले निश्चयाभासी का खण्डन किया है फिर व्यवहाराभासी का खण्डन किया है फिर 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' समझाया है। इसका सार तत्व :—

यो तो आत्मा अनन्त गुणो का पिण्ड है पर मोक्षमार्ग की अपेक्षा तीन गुणो से प्रयोजन है। ज्ञान, श्रद्धान और चारित्र। सबसे पहले जब जीव को हित की अभिलाषा होती है तो ज्ञान से काम लिया जाता है। पहले ज्ञान द्वारा पदार्थ का स्वरूप, उसका लक्षण तथा परीक्षा सीखनी पडती है। पदार्थ सामान्यविशेषात्मक है। अत पहले सामान्य पदार्थ का ज्ञान कराना होता है फिर विशेप का क्योकि जो वस्तु सत् रूप है वही तो जीव रूप है। सामान्य वस्तु को सत् भी कहते हैं। सो पहले आपको सत् का परिज्ञान कराया जा रहा है। सत् का आपको अभेदरूप, भेदरूप, उभयरूप हर प्रकार से ज्ञान कराया। इसको कहते हैं ज्ञानदृष्टि या पण्डिताई की दृष्टि। इससे जीव को पदार्थ ज्ञान होता चला जाता है और वह ग्यारह अग तक पढ लेता है पर मोक्षमार्गी रचमात्र भी नही बनता। यह ज्ञान मोक्षमार्ग मे कब सहाई होता है जब जीव का दूसरा जो श्रद्धागुण है उससे काम लिया जाय अर्थात् मिथ्यादर्शन से सम्यग्दर्शन उत्पन्न किया जाय। वह क्या है ? अनादिकाल की जीव की पर मे एकत्वबुद्धि है। अहकार ममकार भाव है। अर्थात् यह है सो मैं हूँ और यह मेरा है। तथा पर मे कर्तृत्वभोक्तृत्व भाव अर्थात् मैं पर की पर्याय फेर सकता हूँ और मैं पर पदार्थ को भोग सकता है। इसके मिटने का नाम है सम्यग्दर्शन। वह कैसे मिटे ?

वह जब मिटे जब आपको यह परिज्ञान हो कि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र सत् है। अनादिनिधिन है। स्वसहाय है। उसका अच्छा या बुरा परिणमन सोलह आने उसी के आधीन है। जब तक स्वतन्त्र सत् का ज्ञान न हो तब तक पर मे एकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व भाव न किसी का मिट सकता है न मिटा है। इसलिए पहले ज्ञानगुण के द्वारा सत् का ज्ञान करना पडता है क्योंकि वह ज्ञान सम्यग्दर्शन मे कारण पडता ही है। पर व्याप्ति उधर से है इधर से नही है अर्थात् सब जानने वालो को सम्यग्दर्शन हो ही ऐसा नही है किन्तु जिनको होता है उनको सत् के ज्ञानपूर्वक ही होता है। इससे पता चलता है कि ज्ञानगुण स्वतन्त्र है और श्रद्धागुण स्वतन्त्र है। दृष्टान्त भी मिलते हैं। अभव्यसेन जैसे ग्यारह अग के पाठी श्रद्धा न करने से नरक मे चले गये और श्रद्धा करने वाले अल्पश्रुति भी मोक्षमार्गी हो गए। इसलिए पण्डिताई दूसरी चीज है। मोक्षमार्गी दूसरी चीज है। बिना मोक्षमार्गी हुए कोरे ज्ञान से जीव का रचमात्र भी भला नही है। पण्डिताई की दृष्टि तो भेदात्मक ज्ञान, अभेदात्मक ज्ञान और उभयात्मक ज्ञान है सो आपको करा ही दिया।

जैसे जो श्रद्धा गुण से काम न लेकर केवलज्ञान से काम लेते हैं वे कोरे पण्डित रह जाते हैं और मोक्षमार्गी नही बन पाते उसी प्रकार जो श्रद्धा से काम न लेकर पहले चारित्र से काम लेने लगते है और बावा जी बनने का प्रयत्न करते हैं वे केवल मान का पोषण करते हैं। मोक्षमार्ग उनमे कहाँ! जब तक परिणति स्वरूप को न पकडे तब तक लाख सयम उपवास करे—उनसे क्या? श्री समयसार जी मे कहा है कोरी क्रियाओ को करता मर भी जाय तो क्या? अरे यह तो भान कर कि शुद्ध भोजन की, पर पदार्थ की तथा शुभ या अशुभ शरीर की क्रिया तो आत्मा कर ही नही सकता। इनमे तो न पाप है, न पुण्य है, न धर्म है। यह तो स्वतन्त्र दूसरे द्रव्य की क्रिया है। अब रही शुभ विकल्प की बात वह आस्रव तत्त्व है, बध है, पाप है? सोच तो तू कर

क्या रहा है और हो क्या रहा है। भाई जब तक परिणति स्वरूप को न ग्रहे ये तो पाखण्ड है। कोरा ससार है। पशुवत् क्रिया है। छह ढाले मे रोज तो पढता है 'मुनिव्रतधार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' वह तो शुद्ध व्यवहारी की दशा कही। यहाँ तो व्यवहार का भी पता नही और समभता है अपने को मोक्ष का ठेकेदार या समाज मे महान ऊँचा।

मोक्षमार्ग मे नियम है कि विकल्प (राग) ससार है और निर्विकल्प (वीतरागता) मोक्षमार्ग है। अब वह राग कैसे मिटे और वीतरागता कैसे प्रगट हो ? उसका विचार करना है। देखिये विषय कषाय का राग तो है ही ससार कारण। इसमें तो द्वैत ही नही है जिनका पिण्ड अभी उससे जरा भी नही छुटा वे तो करेगे ही क्या ? ऐसे अपात्रो की तो यहाँ बात ही नही है। यहाँ तो मुमुक्षु का प्रकरण है। सो उसे कहते है कि भाई यह तो ठीक है कि वस्तु भेदाभेदात्मक ही है पर भेद मे यह खरावी है कि उसका अविनाभावी विकल्प उठता है और वह आस्रव बन्ध तत्त्व है। इसलिये यह भेद को विषय करने वाली व्यवहार-नय तेरे लिये हितकर नही है। अभेद को बतलाने वाली जो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय है उसका विषय वचनातीत है। विकल्पातीत है। पदार्थ का ज्ञान करके सतुष्ट हो जा। भेद के पीछे मत पडा रह। यह भी विषय कषाय की तरह एक बीमारी है। यह तो केवल अभेद वस्तु पकडाने का साधन था। सो वस्तु तूने पकड ली। अब 'व्यवहार से ऐसा है' 'व्यवहार से ऐसा है' अरे इस रागनी को छोड और प्रयोजनभूत कार्य मे लग। वह प्रयोजनभूत कार्य क्या है ? सुन ! हम तुझे सिखा आये हैं कि प्रत्येक सत् स्वतन्त्र है। उसका चतुष्टय स्वतन्त्र है इसलिए पर को अपना मानना छोड। दूसरे जब वस्तु का परिणाम स्वतन्त्र है तो तू उसमे क्या करेगा ? अगर वह तेरे की हुई परिणमेगी तो उसका परिणमन स्वभाव व्यर्थ हो जायेगा और जो शक्ति जिसमे है ही नही वह दूसरा देगा भी कहाँ से ? इसलिये मैं इसका ऐसा परिणमन करा दूं या यह यूं परिणमे तो ठीक। यह पर की कर्तृत्व बुद्धि छोड। तीसरे

जब एक द्रव्य दूसरे को छू भी नही सकता तो भोगना क्या ? अत: यह जो पर के भोग की चाह है इसे छोड। यह तो नास्ति का उपदेश है किन्तु इस कार्य की सिद्धि 'अस्ति' से होगी और वह इस प्रकार है कि जैसा कि तुझे सिखाया है तेरी आत्मा मे दो स्वभाव है एक त्रिकाली स्वभाव-अवस्थित, दूसरा परिणाम पर्याय धर्म। अज्ञानी जगत तो अनादि से अपने को पर्याय बुद्धि से देखकर उसी मे रत है। तू तो ज्ञानी बनना चाहता है। अपने को त्रिकाली स्वभाव रूप समझ ! वैसा ही अपने को देखने का अभ्यास कर। यह जो तेरा उपयोग पर मे भटक रहा है। पानी की तरह इसका रुख पलट। पर की ओर न जाने दे। स्वभाव की ओर इसे मोड। जहाँ तेरी पर्याय ने पर की बजाय अपने घर को पकडा और निज समुद्र मे मिली कि स्वभाव पर्याय प्रगट हुई। बस उस स्वभाव पर्याय प्रगट होने का नाम ही सम्यग्दर्शन है। तीन काल और तीन लोक मे इसकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नही है। इसके होने पर तेरा पूर्व का सब ज्ञान सम्यक् होगा। ज्ञान का वलन (वहाओ, झुकाओ, रुख) पर से रुक कर स्व मे होने लगेगा। ये दोनो गुण जो अनादि से ससार के कारण बने हुए थे फिर मोक्षमार्ग के कारण होगे। ज्यो-ज्यो ये पर से छूट कर स्वधर मे आते रहेगे त्यो-त्यो उपयोग की स्थिरता आत्मा मे होती रहेगी। स्व की स्थिरता का नाम ही चरित्र है। और वह स्थिरता शनै-शनै पूरी हो कर तू अपने स्वरूप मे जामिलेगा (अर्थात् सिद्ध हो जायेगा)। सद्‌गुरुदेव की जय ! ओ शान्ति।

दूसरे भाग का दृष्टि परिज्ञान (२)

यह लेख इस ग्रन्थ के ७५२ से ७६७ तक १६ श्लोको का
मर्म खोलने के लिये लिखा है। (पृष्ठ २३६ पर)

इस पुस्तक मे चार दृष्टियो से काम लिया गया है उनका जानना

परम आवश्यक है अन्यथा आप ग्रन्थ का रहस्य न पा सकेगे। A B दो व्यवहार दृष्टि C एक प्रमाण दृष्टि D एक द्रव्य दृष्टि।

AB (१) राम अच्छा लडका है। यहाँ राम विशेष्य है और अच्छा उसका विशेषण है। जिसके बारे मे कुछ कहा जाय उसे विशेष्य कहते है और जो कहा जाय उसे विशेषण कहते है। इसी प्रकार यहा 'सत' विशेष्य है और चार युगल अर्थात् आठ उसके विशेषण हैं। सत् सामान्य रूप भी है और विशेप रूप भी है। अत यह कहना कि 'सत् सामान्य है' यहा सत् विशेष्य है और सामान्य उसका विशेषण है। इस वाक्य ने सत् के दो खण्ड कर दिये, एक सामान्य एक विशेष। उसमे से सामान्य को कहा। सो जो विशेष्य विशेषण रूप से कहे वह अवश्य सत् को भेद करता है जो भेद करे उसको व्यवहार नय कहते हैं। कौन सी व्यवहार नय कहते है ? तो उत्तर देते हैं कि जिस रूप कहे वही उस नय का नाम है। यह सामान्य व्यवहार नय है।

(२) फिर हमारी दृष्टि विशेष पर गई। हमने कहा 'सत् विशेष है' यहाँ सत् विशेष्य है और विशेप उसका विशेपण है यह विशेष नामवाली व्यवहार नय है। जिस रूप कहना हो वह अस्ति दूसरा नास्ति। अस्ति अर्थात् मुख्य, नास्ति अर्थात् गौण। इनका वर्णन न० ७५६, ७५७ मे है। सत् रूप देखना सामान्य, जीव रूप देखना विशेप। अब नित्य अनित्य नय को समझाते हैं।

(३) आपकी दृष्टि त्रिकाली स्वभाव पर गई। आपने कहा कि 'सत् नित्य है'। सत् विशेष्य है और नित्य उसका विशेपण है। यह सत् मे भेद सूचक नित्य नामा व्यवहार नय हुई। इसका वर्णन न० ७६१ मे है।

(४) फिर आपकी दृष्टि वस्तु के परिणमन स्वभाव पर (परिणाम पर, पर्याय पर) गई आपने कहा 'सत् अनित्य है' यहाँ सत् विशेष्य है और अनित्य उसका विशेपण है। यह अनित्य नामा व्यवहार नय है। इसका वर्णन न० ७६० मे है।

अब तत् अतत् नय को समझाते है।

(५) जब आपने वस्तु को परिणमन करते देखा, तो आपकी दृष्टि हुई कि अरे यह तो वही का वही है जिसने मनुष्य गति मे पुण्य कमाया था वही स्वर्ग मे फल भोग रहा है। तो आपने कहा 'सत् तत् है'। यह तत् नामा व्यवहार नय है। इसका वर्णन न० ७६५ मे है।

(६) फिर आपकी दृष्टि परिणाम पर गई आपने कहा अरे वह तो मनुष्य था, यह देव है, दूसरा ही है, तो आपने कहा 'सत् अतत् है' यह अतत् नामा व्यवहार नय है इसका वर्णन न० ७६४ मे है। अब एक अनेक का परिज्ञान कराते हैं।

(७) किसी ने आपसे पूछा कि सत् एक है या अनेक : तो पहले आपकी दृष्टि एक धर्म पर पहुची, आपने सोचा, उसमे प्रदेश भेद तो है नही, कई सत् मिलकर एक सत् बना ही नही, तो आपने झट कहा कि 'सत् एक है' यह एक नामा व्यवहार नय है इसका वर्णन न० ७५३ मे है।

(८) फिर आपकी दृष्टि अनेक धर्मों पर गई, आपने सोचा, अरे द्रव्य का लक्षण भिन्न है, गुण का लक्षण भिन्न है, पर्याय का लक्षण भिन्न है, इन सब अवयवो को लिये हुए ही तो सत् है तो आपने कहा 'सत् अनेक है' यह अनेक नामा व्यवहार नय है इसका वर्णन न० ७५२ मे है। इस प्रकार इस ग्रन्थ मे आठ प्रकार की व्यवहार नयो का परि-ज्ञान कराया है।

(C) अब आपको प्रमाण दृष्टि का परिज्ञान कराते है। जब आपकी दृष्टि सत् के एक-एक धर्म पर भिन्न-भिन्न रूप से न पहुच कर इकट्ठी दोनो धर्मो को पकडती है तो आपको सत् दोनो रूप दृष्टिगत होता है। दोनो को सस्कृत मे उभय कहते हैं।

(९) अच्छा बतलाइये कि सत् सामान्य है या विशेष। तो आप कहेगे जो सामान्य सत् रूप है वही तो विशेष जीव रूप है दूसरा थोडा ही है। सामान्य विशेष यद्यपि दोनो विरोधी धर्म हैं। पर प्रत्यक्ष वस्तु

मे दोनो धर्म दीखते हैं। आपस मे प्रेमपूर्वक रहते है कहो, या परस्पर की सापेक्षता से कहो, या मित्रता से कहो, या अविरोधपूर्वक कहो। इसलिए जो दृष्टि परस्पर दो विरोधी धर्मो को अविरोध रूप से एक ही समय एक ही वस्तु मे कहे उसे प्रमाण दृष्टि या उभय दृष्टि कहते है। सो सत् सामान्यविशेपात्मक है यह अस्ति नास्ति को बताने वाली प्रमाण दृष्टि है इसका वर्णन न० ७५९ मे है।

(१०) फिर आपकी द्वष्टि वस्तु के त्रिकाली स्वभाव और परिणमन स्वभाव—दोनो स्वभावो पर एक साथ पहुची तो आप कहने लगे कि वस्तु नित्य भी है अनित्य भी है। नित्यानित्य है। उभय रूप है। यह प्रमाण दृष्टि है इसका वर्णन न० ७६३ मे है।

(११) फिर परिणमन करती हुई वस्तु मे आपकी दृष्टि तत् अतत् धर्म पर गई। आपको दीखने लगा कि जो वही का वही हे वही तो नया-नया है—अन्य-अन्य है। दूसरा थोडा ही है। इसको कहते है तत् अतत् को बतलाने वाली प्रमाण दृष्टि। इसका वर्णन न० ७६७ मे है।

(१२) फिर आपकी दृष्टि वस्तु के एक अनेक धर्मो पर पहुची। जब आप प्रदेशो से देखने लगे तो अखण्ड एक दीखने लगा, लक्षणो से देखने लगे तो अनेक दीखने लगा तो झट आपने कहा कि वस्तु एकानेक है। जो एक है वही तो अनेक है। इसको कहते है एक अनेक को बतलाने वाली प्रमाण दृष्टि। इस दृष्टि का वर्णन ७५५ मे है।

(D) अब आपको अनुभय दृष्टि का परिज्ञान कराते हैं।

(१३) ऊपर आप यह जान चुके हैं कि एक दृष्टि से वस्तु सामान्य रूप है। दूसरी दृष्टि से वस्तु विशेष रूप है। तीसरी दृष्टि से वस्तु सामान्यविशेषात्मक है। अब एक चौथी दृष्टि वस्तु को देखने की और है। उस दृष्टि का नाम है अनुभय दृष्टि। जरा शान्ति से विचार कीजिये—वस्तु मे न सामान्य है, न विशेष है, वह तो जो है सो है। अखण्ड है। यह तो आपको वस्तु का परिज्ञान कराने का एक ढग था।

कही सामान्य के प्रदेश भिन्न और विशेष के प्रदेश भिन्न है क्या ? नही । इस दृष्टि मे आकर वस्तु केवल अनुभव का विषय रह जाती है। शब्द मे आप कह ही नही सकते क्योकि शब्द मे तो विशेषण विशेष्य रूप से ही बोलने का नियम है। बिना इस नियम के कोई शब्द कहा ही नही जा सकता। जो आप कहेगे वह विशेषण विशेष्य रूप पडेगा। इसलिये आप को अनुभव मे तो बराबर आने लगा कि वस्तु न सामान्य रूप है न विशेष रूप है, वह तो अखण्ड है। जो है सो है। अनुभय शब्द का अर्थ है—दोनो रूप नही। इसलिये इस का नाम रखा अनुभय दृष्टि। दोनो रूप नही का भाव यह नही है कि कुछ भी नही किन्तु यह है कि दोनो रूप अर्थात् भेद रूप नही किन्तु अखण्ड है। भेद के निषेध मे अखण्डता का समर्थन निहित (छुपा हुआ) है।

(क) क्योकि इसको विशेषण विशेष्य रूप से शब्द मे नही बोल सकते इसलिये इसका नाम रक्खा अनिर्वचनीय दृष्टि या अवक्तव्य दृष्टि।

(ख) क्योकि वस्तु मे किसी प्रकार भेद नही हो सकता। भेद को व्यवहार कहते है, अभेद को निश्चय कहते हैं। इसलिये इस दृष्टि का नाम रक्खा निश्चय दृष्टि।

(ग) क्योकि ये भेद का निषेध करती है इसलिये इसका नाम हुआ भेद निषेधक दृष्टि या व्यवहार निषेधक दृष्टि।

(घ) शब्द मे जो कुछ आप बोलेगे उसमे वस्तु के एक अग का निरूपण होगा, सारी का नही।

देखिये आपने कहा 'द्रव्य' ये तो द्रव्यत्व गुण का द्योतक है, वस्तु तो अनन्त गुणो का पिण्ड है। फिर आपने कहा 'वस्तु'। वस्तु तो वस्तुत्व गुण की द्योतक है पर वस्तु मे तो अनन्त गुण हैं। फिर आपने कहा 'सत्' या 'सत्त्व' ये अस्तित्व गुण के द्योतक हैं। फिर आपने कहा 'अन्वय' ये त्रिकाली स्वभाव का द्योतक है, पर्याय रह जाती है। आप

कही तक कहते चलिये, जगत मे कोई ऐसा शब्द नही जो वस्तु के पूरे स्वरूप को एक शब्द मे कह दे । इसलिये जो आप कहेगे वह विशेषण विशेष्य रूप—भेद रूप पडेगा । जब आप भेद रूप से सब वस्तु का निरूपण कर चुकेगे और फिर यह दृष्टि आपके सामने आयेगी तो आप झट कहेगे कि 'ऐसा नही' इसका अर्थ है भेद रूप नही किन्तु अखण्ड । इसको सस्कृत मे कहते हैं 'न इति' सधि करके कहते हैं 'नेति' । 'नेति' का यह अर्थ नही कि कुछ नही किन्तु यह अर्थ है कि भेद रूप कुछ नही किन्तु अभेद । शब्द रूप कुछ नही किन्तु अनुभव गम्य—इसलिये इसका नाम रक्खा 'न इति दृष्टि' या 'नेति दृष्टि' ।

(ङ) जैन धर्म मे भेद को अशुद्ध भी कहते हैं और अभेद को शुद्ध कहते हैं । इसलिये इसका नाम है शुद्ध दृष्टि ।

(च) जैन धर्म मे अखण्ड को द्रव्य कहते हैं और आप श्लोक न० २६ मे पढ चुके हैं कि अखण्ड के एक अश को पर्याय कहते हैं इसलिये इसका नाम है द्रव्य दृष्टि । द्रव्य शब्द का अर्थ अखण्ड दृष्टि ।

(छ) कभी इसको विशेष स्पष्ट करने के लिये शुद्ध और द्रव्य दोनो शब्द इकट्ठे मिलाकर बोल देते है तब इसका नाम होता है शुद्ध द्रव्य दृष्टि या शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि । शुद्ध दृष्टि भी इसी का नाम है, द्रव्य दृष्टि भी इसी का नाम है, शुद्ध द्रव्य दृष्टि भी इसी का नाम है ।

(ज) भेद को जैन धर्म मे विकल्प भी कहते है । विकल्प नाम राग का भी है, भेद का भी है । यहाँ भेद अर्थ इष्ट है । इसमे भेद नही है इसलिये इसका नाम है निर्विकल्प दृष्टि या विकल्पातीत दृष्टि ।

(झ) अभेद को सामान्य भी कहते हैं । इसलिये इसका नाम हुआ सामान्य दृष्टि । इस दृष्टि का वर्णन (१३) सत् मे सामान्य विशेष का भेद नही है इसका वर्णन तो न० ७५८ मे किया है ।

(१४) सत् मे नित्य अनित्य का भेद नही है इसका वर्णन ७६२ मे किया है ।

(१५) सत् मे तत् अतत् का भेद नही है इसका वर्णन न० ७६६ मे किया है ।

(१६) सत् मे एक अनेक का भेद नही है इसका वर्णन न० ७५४ मे किया है ।

इस प्रकार जितना ग्रन्थ का भाग आपके हाथ मे है अर्थात् २६१ से ५०२ तक । इसमे उपर्युक्त १६ दृष्टियो से काम लिया है । सारे का निरूपण इन्ही १६ दृष्टियो क आधार पर है जो मूल ग्रथ मे श्लोक न० ७५२ से ७६७ तक १६ श्लोको द्वारा कहा गया है । हमने चार-चार श्लोक प्रत्येक अवान्तर अधिकार के अन्त मे परिशिष्ट के रूप मे जोड दिये हैं ताकि आप जहाँ यह विषय पढे वही आप को दृष्टि परिज्ञान भी हो जाय । हमारी हार्दिक भावना यही है कि आप का भला हो आप ज्ञानी बनें । यह हम जानते हैं कि कोई किसी को ज्ञानी नही बना सकता । न हमारे भाव मे ऐसी एकत्वबुद्धि है किन्तु आशीर्वाद रूप से ऐसा बोलने की व्यवहार पद्धति है । जिसके उपादान मे समझने की योग्यता होगी, उन्हे ग्रथ निमित्त रूप मे पड जायेगा । ऐसी अलौकिक किन्तु सुन्दर वस्तु स्थिति समझाने वाले श्री कहानप्रभु सद्गुरुदेव की जय । ओ शान्ति ।

सप्तभंगी विज्ञान

यह लेख इस ग्रथ के श्लोक न० २८७, २८८, ३३५, ४९९ का मर्म खोलने के लिये लिखा गया है । प्रमाण के लिए देखिए श्री पचास्तिकाय गाथा १४ तथा श्री प्रवचनसार गा० ११५ । एक प्रमाण सप्तभङ्गी होती है एक नय सप्तभगी होती है । जो दो द्रव्यो पर लगाई जाती है वह प्रमाण सप्त भगी कहलाती है सो श्री पचास्तिकाय की उपर्युक्त गाथा मे तो प्रमाण सप्तभगी का कथन है 'जैसे एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अभाव' वह इस प्रकार चलती है । दूसरी नय सप्तभगी है वह सामान्य विशेष पर चलती है जो श्रीप्रवचनसार की उपर्युक्त

गाथा मे है । यह इस प्रकार चलती है कि सामान्य का विशेप मे अभाव, विशेप का सामान्य मे अभाव । चलाने का तरीका दोनो का एक प्रकार का है । श्री पचास्तिकाय मे तो छ द्रव्यो का विपय था, इसलिये वहां छ द्रव्यो पर लगने वाली द्रव्य सप्तभगी की आवश्यकता पडी और श्रीप्रवचनसार मे एक ही द्रव्य के सामान्य विशेप का विपय चल रहा था, इसलिए वहां नय सप्तभगी बतलाई । इस ग्रथ मे सब विपय नय सप्तभगी का है क्योकि यह सम्पूर्ण ग्रथ एक ही द्रव्य पर लिखा गया है । दूसरे द्रव्य को यह स्पर्श भी नही करता । वह सप्तभगी यहां सामान्य विशेष के चार युगलो पर लगेगी । सो सब से पहले एक नित्य अनित्य युगल पर लगाकर दिखलाते है । इस पर आपको सरलता से समझ मे आ जायेगी । देखिये द्रव्य मे दो स्वभाव हैं एक तो यह कि वह अपने स्वभाव को त्रिकाल एक रूप रखता है । दूसरा यह कि वह हर समय परिणमन करके नए-नए परिणाम उत्पन्न करता है । स्वभाव त्रिकाल स्थायी है । परिणाम एक समय स्थाई है । अत दोनो भिन्न हैं । अब जिसको आपको कहना हो, वह मुख्य हो जाता है । मुख्य को 'स्व' कहते हैं । दूसरा धर्म गौण हो जाता है । गौण को पर' कहते हैं । यह ध्यान रहे कि स्व या पर किसी खास का नाम नही है । जिसके विपय मे कहना हो, वही स्व कहलाता है । अब आपको त्रिकाली स्वभाव को कहना है तो त्रिकाली स्वभाव का नाम स्व हो जायेगा और परिणाम का नाम पर हो जायेगा तो आप इस प्रकार कहेगे—

(१) वस्तु स्व से है अर्थात् त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से है । इस दृष्टि वाले को सबकी सब वस्तु एक स्वभाव रूप दृष्टिगत होगी । जीव रूप दिखेगी—मनुष्य देव रूप नही दिखेगी । वह धर्म बिल्कुल गौण हो जाएगा । यह पहला अस्ति नय है । अस्ति अर्थात् मुख्य—जिसके कहने की आपने मुख्यता की है ।

(२) उसी समय वस्तु पर रूप से नही है अर्थात् परिणाम की अपेक्षा से नही है । इस दृष्टि वाले को वस्तु पर्याय रूप—मनुष्य रूप

नही दीख रही है। वह धर्म बिल्कुल गौण है, गौण वाले को नास्ति कहते हैं। यह दूसरा नास्ति नय है। यह ज्ञानियो के देखने की रीति है। अब अज्ञानी कैसे देखते है। यह बताते है उनको द्रव्य दृष्टि का तो ज्ञान ही नही। उनकी केवल पर्याय दृष्टि ही रहती है। अब आप भी यदि इस दृष्टि से देखना चाहते हो तो पर्याय को मुख्य करिये—स्वभाव को गौण करिये। पर्याय स्व हो जायेगी। स्वभाव पर हो जायेगा। अब कहिये—

(१) वस्तु स्व से है—अस्ति, इसको सारा जीव मनुष्य रूप दृष्टिगत होगा।

(२) वस्तु पर से नही है। स्वभाव अत्यन्त गौण है। इस सप्तभगी का प्रयोग तो ज्ञानी ही जानते हैं। ऊपर अज्ञानी का तो दृष्टात रूप से लिखा है। अज्ञानी को तो एकत्व दृष्टि है। सप्तभगी का प्रयोग तो अनेकान्त दृष्टि वाले ज्ञानी प्रयोजन सिद्धि के लिये करते हैं।

(३) अब दोनो धर्मों को क्रमश ज्ञान कराने के लिये कहते है कि वस्तु स्व (त्रिकाली स्वभाव से है) और पर (परिणाम) से नही है या वस्तु स्व (परिणाम) से है और पर (त्रिकाली स्वभाव से नही है) यह अस्ति-नास्ति तीसरा भग है। इसका लाभ यह है कि वस्तु के दोनो पडखो का क्रमशः ज्ञान हो जाता है।

(४) अब वे दोनो धर्म वस्तु मे तो एक समय मे युगपत इकट्ठे हैं और आप क्रम से कह रहे हैं। अब आपकी इच्छा हुई कि मैं एक साथ ही कहूँ तो उस भाव को प्रगट करने के लिए अवक्तव्य शब्द नियुक्त किया गया। अवक्तव्य कहने वाले तथा समझने वाले का इस शब्द से यह भाव स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि वह दोनो भावों को युगपत कह रहा है। यह चौथा अवक्तव्य भग है। एक बात यहाँ खास समझने की है कि यह अवक्तव्य नय और है और दृष्टि परिज्ञान मे जो अनुभय दृष्टि बतलाई थी वह और चीज है। यहाँ वस्तु के दोनो धर्मों की भिन्न-भिन्न स्वीकारता है। कहने वाला दोनों को एक समय मे कहना चाहता

है पर शब्द नही है इसलिये अवक्तव्य नय नाम रक्खा। वहाँ सामान्य विशेप का भेद ही नही है। उसका लक्षण ऐसा है कि न सामान्य है न विशेप है। यह भेद ही जहाँ नही है। उसकी दृष्टि मे वस्तु मे भेद कहना ही भूल है। जो है सो है। उसका विषय अनुभव गम्य है। शब्द मे अनिर्वचनीय है। अवक्तव्य है। पर वह अखण्ड वस्तु की द्योतक है। नयभगी मे अवक्तव्य नय वस्तु के एक अश की कहने वाली है। यह भेद सहित दोनो धर्मों को युगपत स्वीकार करती है। वह दोनो धर्मों को ही वस्तु मे स्वीकार नही करती। इतना अन्तर है वह दष्टि श्री-समयसार गा० २७२ से निकाली है। वहाँ उसका लक्षण व्यवहार प्रतिषेध लिखा है। वह आध्यात्मिक वस्तु है। यह दृष्टि श्री पचास्तिकाय गाथा १४ तथा श्री प्रवचनसार गा० ११५ से निकाली है। इस का लक्षण इन दोनो मे ऐसा लिखा है 'स्यादस्त्यवक्तव्यमेव स्वरूपपर-रूपयौगपद्याभ्या'। यह आगम की वस्तु है। वह निर्विकल्प है यह सविकल्प है। वह अखण्ड की द्योतक है यह अश की द्योतक है। वह नयातीत अवस्था है यह नयदृष्टि है। आगम मे कहाँ अनुभय शब्द या अवक्तव्य शब्द या अनिर्वचनीय शब्द किसके लिये आया है। यह गुरुगम से ध्यान रखने की बात है। भाव आपके हृदय मे झलकना चाहिये फिर आप मार नही खायेगे। भावभासे बिना तो आगम का निरूपण मोक्षशास्त्र मे कहा है कि सत् (सच्चे) और असत् (झूठे)की विशेपता बिना पागल के समान इच्छानुसार बकता है। यह आपकी चौथी नय पूरी हुई। शेप तीन तो इनके सयोग रूप हैं और उनमे कोई खास बात नही है।

(B) अब एक अनेक युगल पर लगाते हैं। एक या अनेक जिस को आप कहना चाहते हैं। या जिस रूप वस्तु को देखना चाहते हो उसका नाम होगा स्व और दूसरे का पर। मानो आप एक रूप से कहना चाहते हैं तो (१) वस्तु स्व (एक रूप)से है। इसमे सारी वस्तु अखण्ड नजर आयेगी (२) और उस समय वस्तु पर रूप से (अनेक रूप से)

नही है। यह धर्म बिल्कुल गौण हो जायेगा। यदि अनेक रूप देखने की इच्छा है तो कहिये (१) वस्तु स्व (अनेक) रूप से है। इस दृष्टि वाले को द्रव्य अपने लक्षण से भिन्न नजर आयेगा, गुण अपने लक्षण से भिन्न नजर आयेगा, पर्याय अपने लक्षण से भिन्न नजर आयेगी और उस समय वही वस्तु (२) पर (एकत्व) से नही है। वस्तु का अखण्डपना लोप हो जायेगा। डूब जायगा। ज्ञानी की एकत्व दृष्टि की मुख्यता रहती है। अज्ञानी जगत की सर्वथा अनेकत्व दृष्टि है।(३) एक अनेक दोनो को क्रम से देखना हो तो कहिये—'स्व से है पर से नही है। यह अस्ति-नास्ति, (४) एक अनेक दोनो रूप एक साथ देखना हो तो कहेगे 'वस्तु अवक्तव्य है'। शेष तीन भग इनके योग से जान लेना।

(C) अब तत् अतत् पर लगाते हैं। जब आपको वह देखना हो कि वस्तु वही की वही है तो तत् धर्म की मुख्यता होगी और इसका नाम होगा 'स्व' अब कहिये (१) वस्तु स्व (तत् धर्म से) है। इसमे सारी वस्तु वही की वही नजर आयेगी (२) वस्तु पर से नही है। अतत् धर्म (नई-नई वस्तु) बिल्कुल गौण हो जायगा। अगर आपको अतत् धर्म से देखना है तो अतत् धर्म स्व हो जायगा तो कहिये (१) वस्तु स्व (अतत्) रूप से है। इसमे समय २ की वस्तु नई-नई नजर आयेगी। (२) वस्तु पर नही से है। इसमे वस्तु वही ही वही है। ये धर्म बिल्कुल गौण हो जायगा। (३) क्रम से वही की वही और नई-नई देखनी है तो कहिये अस्ति-नास्ति। (४) एक समय मे दोनो रूप देखनी है तो अवक्तव्य। शेष तीन इनके योग से जान लेना। ज्ञानियो को तत् धर्म की मुख्यता रहती है। अज्ञानी जगत् तो देखता ही अतत् धर्म से है। तत् धर्म का उसे ज्ञान ही नही।

(D) अब सामान्य विशेष पर लगाते हैं। आपको सामान्य रूप ा वस्तु देखनी हो तो सामान्य धर्म स्व होगा। (१) कहिये वस्तु स्व ा है। इसमे सारी वस्तु सत् रूप ही नजर आयेगी फिर कहिये (२) स्तु पर से नही है। विशेष रूप से बिल्कुल गौण हो जायेगी। जीव

रूप नही दिखेगी। यदि आप विशेप रूप से देखना चाहते हो तो विशेप को स्व वना लीजिये। कहिये (१) वस्तु स्व से है तो आपको सारी वस्तु विशेष रूप नजर आयेगी। जीव रूप ही दृष्टिगत होगी। (२) वस्तु पर से नही है। सामान्य पक्ष उसी समय विल्कुल नजर न आयेगा। सत् रूप से नही दिखेगा। (३) दोनो धर्मो को क्रम से देखना हो तो अस्ति-नास्ति। (४) युगपत देखना हो तो अवक्तव्य। शेप तीन इनके योग से। ज्ञानी सदा विशेप को गौण करके सामान्य से देखते हैं। अज्ञानी सदा विशेप को देखता है वह वेचारा सामान्य को समझता ही नही। विशेप की दृष्टि हलकी पडे तो सामान्य पकड मे आये। ऐसा ग्रथकार का पेट उपर्युक्त चार श्लोको मे निहित (छुपा हुआ) है।

अनेकान्त के जानने का लाभ

अव यह देखना है कि यह मदारी का तमाशा है या कुछ इसमे सार वात भी है। भाई इसको कहते हैं 'स्याद्वाद-अनेकान्त' यही तो हमारे सिद्धात की भित्ती है। हमारे सरताज श्री अमृतचन्द्र सूरी ने श्री पुरुपार्थसिद्ध मे इसको जीवभूत या वीजभूत कहा है। श्री समयसार के परिशिष्ट मे इसके न जानने वाले को सीधा पशु शब्द से सम्बोधित किया है। यद्यपि आध्यात्मिक सन्त ऐसा कडा शब्द नही कहते पर अधिक करुणा वुद्धि से शिष्य को यह बतलाने के लिये कि यदि यह न समझा तो कुछ नही समझा—ऐसा कहा है। श्री प्रवचन सार तथा श्री समयसार के दूसरे कलश मे इसको मगलाचरण मे स्मरण किया है। इसका कारण क्या है ? इसका कारण हम आपको इस ग्रथ के प्रारम्भ के श्लोक न० २६१-२६२-२६३ मे बतला चुके है कि वस्तु उपर्युक्त चार युगलो से गुथी हुई है। और द्रव्य क्षेत्र काल भाव हर प्रकार से गुथी हुई है। यह तो पुस्तक ही "वस्तु की अनेकान्तात्मक स्थिति" के नाम से आप के हाथ मे है। वह चीज जैसी है वैसा ही तो उसका ज्ञान होना चाहिये अन्यथा मिथ्या हो जायगा। अब देखिये इससे लाभ क्या है।

(१) वस्तु मे नित्य धर्म है जिसके कारण वस्तु अवस्थित है। इस धर्म के जानने से पता चलता है कि द्रव्य रूप से तो मोक्ष वस्तु मे वर्तमान मे विद्यमान ही है तो फिर उसका आश्रय करके कैसे नही प्रकट किया जा सकता ।

(B) अनित्य धर्म से पता चलता है कि पर्याय मे मिथ्यात्व है, राग है, दु ख है। साथ ही यह पता चल जाता है कि परिणमन स्वभाव द्वारा बदलकर यह सम्यक्त्व, वीतरागता और सुख रूप परिवर्तित किया जा सकता है तो भव्य जीव नित्य स्वभाव का आश्रय करके पर्याय के दु ख को सुख मे बदल लेता है।

(C) मानो वस्तु ऐसे ख्याल मे न आवे। केवल एकान्त नित्य ख्याल मे आवे तो अपने को अभी सर्वथा मुक्त मान कर निश्चयाभासी हो जायेगा और पुरुपार्थ को लोप करेगा।

(D) केवल अनित्य ही वस्तु ख्याल मे आई तो मूल तत्त्व ही जाता रहा। सारा खेल ही बिगड गया। पुरुषार्थ करने वाला कर्ता ही न रहा। इस प्रकार वस्तु अनेकान्तात्मक है। यह प्रत्यक्ष अनुभव मे आता है।

(२) एक जगह दु ख होने से सम्पूर्ण मे दु ख होता है इससे उस की अभेदता, अखण्डता, एकता ख्याल मे आती है।

(B) चौथे गुणस्थान मे क्षायिक सम्यक्त्व हो जाता है। चारित्र मे पुरुषार्थ की दुर्बलता के कारण कृष्ण लेश्या चलती है। इससे वस्तु की भेदता, अनेकता खण्डता का परिज्ञान प्रत्यक्ष होता है।

(३) जो यहाँ पुण्य करता है वही स्वर्ग मे सुख भोगता है। जो यहाँ पाप करता है वही नरक मे दु ख भोगता है। जो यहाँ शुद्ध भाव करता है मोक्ष मे निराकुल सुख पाता है। इससे उसके तत्‌धर्म का ज्ञान होता है।

(B) हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि लड़का मर जाता है। घर वाले रोते हैं। जिसके यहाँ जन्म लेता है, वह जन्मोत्सव मनाते हैं। इस पर्याय

दृष्टि से पता चलता है कि यहाँ का जीव नष्ट हो गया। वहाँ नया पैदा हुआ। यह प्रत्यक्ष अज्ञानी जगत की अतत् दृष्टि है।

(४) आपको क्या यह अनुभव नही है कि आप सत् है। इससे वस्तु के सामान्य धर्म का परिज्ञान होता है।

(B) पर आप जीव हैं पुद्गल तो नही इससे वस्तु विशेष भी है यह ख्याल आता है। इस प्रकार वस्तु चार युगलो से गुम्फित है, यह सर्व साधारण को प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यह जो हमने अनेकान्त का लाभ लिखा है यद्यपि यह विषय इस पुस्तक मे नही है, इसमे तो केवल वस्तु का अनेकान्तात्मकता का परिज्ञान कराया है, हमने चूलिका रूप मे आपकी अनेकान्त के मर्म को जानने की रुचि हो जाये इस ध्येय से सक्षिप्त रूप मे लिखा है। अनेकान्त का विषय वहुत रूखा है, अत लोगो के समझने की रुचि नही होती तथा विवेचन भी पडिताई के ढग से बहुत कठिन किया जाता है जो समझ नही आता। हमने तो सरल देसी भाषा मे आपके हितार्थ लिखा है। श्री सद्गुरुदेव की जय। ओ शान्ति।

'अस्ति नास्ति युगल' (१)

प्रश्न ७२—वस्तु की अनेकान्तात्मक स्थिति वताओ ?

उत्तर—प्रत्येक वस्तु स्यात् अस्ति नास्ति, स्यात् तत् अतत्, स्यात् नित्य अनित्य, स्यात् एक अनेक इन चार युगलो से गुंथी हुई है। इस का अर्थ यह है कि जो वस्तु द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से अस्ति रूप है वही वस्तु उसी समय द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से नास्ति रूप भी है तथा वही वस्तु इसी प्रकार अन्य चार युगल रूप भी है। एक दृष्टि से वस्तु का चतुष्टय त्रिकाल एक रूप है। एक दृष्टि से वस्तु का चतुष्टय समय-समय का भिन्न-भिन्न रूप है। (२६२-२६३)

प्रश्न ७३—'अस्ति-नास्ति' युगल के नामान्तर बताओ ? इनका वर्णन कहाँ-कहाँ आया है।

उत्तर—अस्ति नास्ति युगल को सत् असत् युगल भी कहते हैं। महासत्ता अवान्तरसत्ता युगल भी कहते है। सामान्य विशेष युगल भी कहते हैं, भेदाभेद युगल भी कहते हैं। इसका वर्णन प्रारम्भ मे १५ से २२ तक, मध्य मे २६४ से ३०८ तक, अन्त मे ७५६ से ७५९ तक आया है।

प्रश्न ७४—महासत्ता के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—महासत्ता, सामान्य, विधि, निरश, स्व, शुद्ध, प्रतिषेधक, निरपेक्ष, अस्ति, व्यापक।

प्रश्न ७५—अवान्तर सत्ता के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—अवान्तर सत्ता, विशेष, प्रतिषेध, साश, पर, अशुद्ध, प्रतिषेध्य, सापेक्ष, नास्ति, व्याप्य।

प्रश्न ७६—द्रव्य से अस्ति नास्ति बताओ ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव से ही सामान्यविशेपात्मक बनी हुई है। उसे सामान्य रूप से अर्थात् केवल सत् रूप से देखना महासत्ता और द्रव्य गुण पर्याय उत्पाद व्यय ध्रुव आदि के किसी भेद रूप से देखना अवान्तर सत्ता है। प्रदेश दोनो के एक ही है। स्वरूप दोनो का एक ही है। जिस दृष्टि से देखते हैं उसको अस्ति या मुख्य कहते हैं और जिस दृष्टि से नही देखते उसे नास्ति या गौण कहते है। जो वस्तु सत् रूप है वही तो जीव रूप है। (२६४ से २६८ तक)

प्रश्न ७७—क्षेत्र से अस्ति नास्ति बताओ ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव से देश देशाश रूप बनी हुई है। प्रदेश वही है स्वरूप वही है। देश दृष्टि से देखना सामान्य दृष्टि है। इससे वस्तुओ मे भेद नही होता है। देशाश दृष्टि से देखना विशेष दृष्टि है। जिस दृष्टि से देखना हो वह क्षेत्र से अस्ति दूसरी नास्ति। जो वस्तु देश मात्र है वही तो विशेष देश रूप है जैसे जो देश रूप है वही तो असख्यात् प्रदेशी आत्मा है। (२७० से २७२ तक)

प्रश्न ७८—काल से अस्ति नास्ति बताओ ?

उत्तर— वस्तु स्वभाव से ही काल-कालाश रूप बनी हुई है। प्रदेश वही है स्वरूप वही है। काल से देखना सामान्य दृष्टि, कालाश दृष्टि से देखना विशेप दृष्टि। जिस दृष्टि से देखना वह काल से अस्ति और जिससे नही देखना वह काल से नास्ति। जो वस्तु सामान्य परिणमन रूप है वही तो विशेप परिणमन रूप है जैसे आत्मा मे पर्याय यह सामान्य काल, मनुष्य पर्याय यह विशेष काल।

(२७४ से २७७ तक, ७५६, ७५७)

प्रश्न ७९—भाव से अस्ति नास्ति बताओ ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव से ही भाव भावाश रूप बनी हुई है। प्रदेश वही है स्वरूप वही है। भाव की दृष्टि से देखना सामान्य दृष्टि-भावाश की दृष्टि से देखना विशेष दृष्टि। जिस दृष्टि से देखो वह भाव से अस्ति-दूसरी नास्ति। जो वस्तु भाव सामान्य रूप है वही तो भाव विशेप (ज्ञान गुण) रूप है। (२७९ से २८२ तक)

प्रश्न ८०—उपर्युक्त चारो का सार क्या है ?

उत्तर—वस्तु सत् सामान्य की दृष्टि से, द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से हर प्रकार निरश है और वही वस्तु द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा अशो मे विभाजित हो जाती है अत साश है। वस्तु दोनो रूप है। वह सारी की सारी जिस रूप देखनी हो उसको मुख्य या अस्ति कहते हैं। दूसरी को गौण या नास्ति कहते है। (२८४ से २८६)

प्रश्न ८१—अस्ति नास्ति का उभय भंग बताओ ?

उत्तर—जो स्व (सामान्य या विशेष जिसकी विवक्षा हो) से अस्ति है, वही पर (सामान्य या विशेप जिसकी विवक्षा न हो) से नास्ति है, तथा वही अनिर्वचनीय है। यह उभय भग या प्रमाण दृष्टि है।

(२८९ से ३०८ तक तथा ७५९)

प्रश्न ८२—अस्ति नास्ति का अनुभय भंग बताओ ?

उत्तर— वस्तु किस रूप से है और किस रूप से नही है, यह भेद ही जहाँ नही है किन्तु वस्तु की अनिवर्चनीय-अवक्तव्य निर्विकल्प (अखण्ड)

दृष्टि है। वह अनुभय नय या शुद्ध (अखण्ड) द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है। (७५८)

प्रश्न ८३—पर्यायार्थिक नय के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—पर्याय दृष्टि, व्यवहारदृष्टि, विशेपदृष्टि, भेददृष्टि, खण्ड-दृष्टि, अशदृष्टि, अशुद्धदृष्टि, म्लेच्छदृष्टि।

प्रश्न ८४—उभयदृष्टि के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—प्रमाणदृष्टि, उभयदृष्टि, अविरुद्ध दृष्टि, मैत्रीभाव दृष्टि, सापेक्षदृष्टि।

प्रश्न ८५—अनुभय दृष्टि के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—अनुभय दृष्टि, अनिर्वचनीय दृष्टि, अवक्तव्य दृष्टि, निश्चय दृष्टि, भेद निषेधकदृष्टि, व्यवहार निषेधक दृष्टि, नेतिदृष्टि, शुद्धदृष्टि, द्रव्यदृष्टि वा द्रव्यार्थिक दृष्टि, शुद्ध द्रव्यदृष्टि, निर्विकल्प दृष्टि, विकल्पातीत दृष्टि, सामान्य दृष्टि, अभेददृष्टि, अखण्डदृष्टि आदि।

'तत्-अतत् युगल' (२)

प्रश्न ८६—तत्-अतत् मे किस बात का विचार किया जाता है ?

उत्तर—नित्य अनित्य अधिकार मे बतलाये हुए परिणमन स्वभाव के कारण वस्तु मे जो समय समय का परिणाम उत्पन्न होता है वह परिणाम सदृश है या विसदृश है या सदृशासदृश है। इसका विचार तत् अतत् मे किया जाता है। (३१२)

प्रश्न ८७—तत् किसे कहते हैं ?

उत्तर—परिणमन करती हुई वस्तु वही की वही है। दूसरी नही है। इसको तत्-भाव कहते हैं। (३१०, ७६४)

प्रश्न ८८—अतत् किसे कहते हैं ?

उत्तर—परिणमन करती हुई वस्तु समय समय मे नई नई उत्पन्न हो रही है। वह की वह नही है इसको अतत्-भाव कहते हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक समय का सत ही भिन्न भिन्न रूप है। (३१०, ७६५)

प्रश्न ८९—तत् अतत् युगल का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर—तत् अतत् को भाव अभाव युगल भी कहते हैं। सदृश विसदृश युगल भी कहते है। सत् असत् युगल भी कहते हैं।

प्रश्न ९०—तत् धर्म का क्या लाभ है ?

उत्तर—इससे तत्त्व की सिद्धि होती है। (३१४, ३३१)

प्रश्न ९१—अतत् धर्म से क्या लाभ है ?

उत्तर—इससे क्रिया, फल, कारक, साधन, साध्य, कारण, कार्य आदि भावो की सिद्धि होती है। (३१४, ३३१)

प्रश्न ९२—तत् अतत् युगल पर नय प्रमाण लगाकर दिखलाओ।

उत्तर—वस्तु एक समय मे तत् अतत् दोनो भावो से गुथी हुई है। (१) सारी की सारी वस्तु को वही की वही है। इस दृष्टि से देखना तत् दृष्टि है। (२) सारी की सारी वस्तु समय समय मे नई नई उत्पन्न हो रही है इस दृष्टि से देखना अतत् दृष्टि है। (३) जो वही की वही है वह ही नई नई उत्पन्न हो रही है इस प्रकार दोनो धर्मों से परस्पर सापेक्ष देखना उभय दृष्टि या प्रमाण दृष्टि है तथा (४) दोनो रूप नही देखना अर्थात् न वही की वही है—न नई नई है किन्तु अखण्ड है इस प्रकार देखना अनुभय दृष्टि या शुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि है। (३३३, ३३४, ७३४ से ७३७ तक)

नित्य अनित्य युगल (३)

प्रश्न ९३—नित्य अनित्य युगल का रहस्य बताओ ?

उत्तर—वस्तु जैसे स्वभाव से स्वत सिद्ध है वैसे वह स्वभाव से परिणमनशील भी है। स्वत· सिद्ध स्वभाव के कारण उसमे नित्यपना (वस्तुपना) है और परिणमन स्वभाव के कारण उसमे अनित्यपना (पर्यायपना-अवस्थापना) है। दोनो स्वभाव वस्तु मे एक समय मे है। (३३८)

प्रश्न ६४—दोनो स्वभावों को एक समय में एक ही पदार्थ मे देखने के दृष्टान्त बताओ ?

उत्तर—(१) जीव और उसमे होने वाली मनुष्य पर्याय (२) दीप और उसमे होने वाला प्रकाश (३) जल और उसमे होने वाली कल्लोले (४) मिट्टी और उसमे होने वाला घट। जगत् का प्रत्येक पदार्थ इसी रूप है। (४११, ४१२, ४१३)

प्रश्न ६५—नित्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—पर्याय पर दृष्टि न देकर जब द्रव्य दृष्टि से केवल अविनाशी-त्रिकाली स्वभाव देखा जाता है तो वस्तु नित्य (अवस्थित) प्रतीत होती है। (३३९, ७६१)

प्रश्न ६६—नित्य स्वभाव की सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर—'यह वही है' इस प्रत्यभिज्ञान से इसकी सिद्धि होती है। (४१४)

प्रश्न ६७—अनित्य किसको कहते हैं ?

उत्तर—त्रिकाली स्वत सिद्ध स्वभाव पर दृष्टि न देकर जब पर्याय से केवल क्षणिक अवस्था देखी जाती है तो वस्तु अनित्य (अनवस्थित) प्रतीत होती है। (३४०, ७६०)

प्रश्न ६८—अनित्य की सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर—'यह वह नही है' इस अनुभूति से इसकी सिद्धि होती है। (४१४)

प्रश्न ६९—उभय किसको कहते हैं ?

उत्तर—जब एक साथ स्वत सिद्ध स्वभाव और उसके परिणाम दोनो पर दृष्टि होती है तो वस्तु उभय रूप दीखती है यह प्रमाण दृष्टि है। जैसे जो जीव है वही तो यह मनुष्य है। जो मिट्टी है वही तो घडा है। जो दीप है वही तो प्रकाश है। जो जल है वही तो कल्लोले है। (४१५, ७६३)

प्रश्न १००—अनुभय किसको कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु न नित्य है न अनित्य है अखड है और अखड का वाचक शब्द कोई है ही नही। जो कहेगे वह विशेपण विशेष्य रूप हो जायगा और वह भेद रूप पडेगा। इसलिए अखण्ड दृष्टि से अनुभय है। इसको शुद्ध (अखण्ड) द्रव्यार्थिक दृष्टि भी कहते हैं। (४१५, ७६२)

प्रश्न १०१—पूर्वोक्त प्रश्न 'नित्य किसे कहते है के उत्तर में जो द्रव्य दृष्टि कही है उसमें और अनुभय के उत्तर मे जो शुद्ध द्रव्य दृष्टि है इसमे—दोनो मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—वह पर्याय (अश) को गौण करके त्रिकाली स्वभाव अश की द्योतक है उसको द्रव्य दृष्टि या नित्य पर्याय दृष्टि भी कहते हैं और यहाँ दोनो अशो के अखण्ड पिण्ड को नित्य अनित्य का भेद न करके अखण्ड का ग्रहण शुद्ध द्रव्य दृष्टि है। यहाँ शुद्ध शब्द अखण्ड अर्थ मे है। (७६१, ७६२)

प्रश्न १०२—शुद्ध द्रव्यदृष्टि और प्रमाण मे क्या अन्तर है क्योंकि यह भी पूरी वस्तु को ग्रहण करती है और प्रमाण भी पूरी वस्तु को ग्रहण करता है ?

उत्तर—प्रमाण दृष्टि मे नित्य अनित्य दोनो पडखो का जोड रूप ज्ञान किया जाता है। जैसे जो नित्य है वही अनित्य है। इसमे वस्तु उभय रूप है और उसमे वस्तु अनुभव गोचर है। शब्द के अगोचर है। अनिर्वचनीय है। उसमे नित्य अनित्य का भेद नही है। उसमे वस्तु अखण्ड एक रूप अखण्ड है। (७६२, ७६३)

प्रश्न १०३—व्यस्त-समस्त किसको कहते हैं ?

उत्तर—भिन्न-भिन्न को व्यस्त कहते है। अभिन्न को समस्त कहते है। स्वभाव दृष्टि से समस्त रूप है क्योकि स्वभाव का कभी भेद नही होता है जैसे जीव। अवस्था दृष्टि से व्यस्त रूप है क्योकि समय-समय का परिणाम अर्थात अवस्था प्रत्यक्ष भिन्न-भिन्न रूप है जैसे मनुष्य देव। (४१६)

प्रश्न १०४—क्रमवर्ती अक्रमवर्ती किसको कहते हैं ?

उत्तर—स्वभाव दृष्टि को अक्रमवर्ती कहते हैं क्योंकि वह सदा एकरूप है जैसे जीव और परिणाम-अवस्था-पर्याय दृष्टि को क्रमवर्ती कहते हैं क्योंकि अनादि से अनन्त काल तक क्रमबद्ध परिणमन करना भी वस्तु का स्वभाव है जैसे मनुष्य देव। (४१७)

प्रश्न १०५—परिणाम के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—परिणाम, पर्याय, अवस्था, दशा, परिणमन, विक्रिया, कार्य, क्रम, परिणति, भाव।

प्रश्न १०६—सर्वथा नित्य पक्ष में क्या हानि है ?

उत्तर—सत् को सर्वथा नित्य मानने से विक्रिया (परिणति) का अभाव हो जायेगा और उसके अभाव मे तत्त्व क्रिया, फल, कारक, कारण, कार्य कुछ भी नही बनेगा। (४२३)

प्रश्न १०७—तत्त्व किस प्रकार नहीं बनेगा ?

उत्तर—परिणाम सत् की अवस्था है और उसका आप अभाव मानते हो तो परिणाम के अभाव मे परिणामी का अभाव स्वय सिद्ध है। व्यतिरेक के अभाव मे अन्वय अपनी रक्षा नही कर सकता। इस प्रकार तत्त्व का अभाव हो जायगा। (४२४)

प्रश्न १०८—क्रिया फल आदि किस प्रकार नहीं बनेगा ?

उत्तर—आप तो वस्तु को कूटस्थ नित्य मानते हैं। क्रिया, फल, कार्य आदि तो सब पर्याय मे होते हैं। पर्याय की आप नास्ति मानते हैं, अत ये भी नही बनते। (४२३)

प्रश्न १०९—तत्त्व और क्रिया दोनों कैसे नहीं बनते ?

उत्तर—मोक्ष का साधन जो सम्यग्दर्शनादि शुद्ध भाव हैं वे परिणाम हैं और उनका फल जो मोक्ष है वह भी निराकुल सुख रूप परिणाम है। ये दोनो साधन और साध्य रूप भाव हैं। परिणाम हैं। णाम आप मानते नही हैं। इस प्रकार तो क्रिया का अभाव हुआ इन दोनो भावो का कर्ता-साधक आत्मद्रव्य है वह विशेष के

सामान्य न रहने से नहीं वनता है। इस प्रकार तत्त्व का भी अभाव ठहरता है अर्थात कर्ता कर्म क्या कोई भी कारक नही वनता है। (४२६)

प्रश्न ११०—सर्वथा अनित्य पक्ष मे क्या हानि है ?

उत्तर—(१) सत् को सर्वथा अनित्य मानने वालो के यहाँ सत तो पहले ही नाश हो जायेगा फिर प्रमाण और प्रमाण का फल नही वनेगा। (४२६)

(२) जिस समय वे सत् को अनित्य सिद्ध करने के लिए अनुमान प्रयोग मे यह प्रतिज्ञा बोलेंगे कि "जो सत् है वह अनित्य है" तो यह कहना तो स्वय उनकी पकड का कारण हो जायेगा क्योकि सत् तो है ही नही फिर 'जो सत् है वह" यह शब्द कैसा ? (४३०)

(३) सत् को नही मानने वाले उसका अभाव कैसे सिद्ध करेंगे। (४३१)

(४) सत् को निन्य सिद्ध करने मे जो प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है वह क्षणिक एकान्त का वाधक है। (४३२)

(५) सामान्य (अन्वय) के अभाव मे विशेप (व्यतिरेक) तो गधे के सीगवत् है। वस्तु के अभाव मे परिणाम किसका।

'एक-अनेक युगल' (४)

प्रश्न १११—सत् एक है इसमें क्या युक्ति है ?

उत्तर—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से गुण पर्याय या ..ाद व्यय ध्रौव्य रूप अशो का अभिन्न प्रदेशी होने से सत् एक है ..ात् क्योकि वह निरश देश है इसलिए अखण्ड सामान्य की अपेक्षा सत् एक है। (४३६, ४३७)

प्रश्न ११२—द्रव्य से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—क्योकि वह गुण पर्यायो का एक तन्मय पिण्ड है इसलिए

एक है। ऐसा नही है कि उसका कुछ भाग गुण रूप हो और कुछ भाग पर्याय रूप हो अर्थात् गौरस के समान, अथ स्वर्णपाषाण के समान, छाया आदर्श के समान अनेकहेतुक एक नही है किन्तु स्वत सिद्ध एक है। (४३८ से ४४८ तक, ७५३)

प्रश्न ११३—क्षेत्र से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—जिस समय जिस द्रव्य के एक देश मे जितना, जो, जैसे सत् स्थित है, उसी समय उसी द्रव्य के सब देशो मे भी उतना, वही वैसा ही समुदित स्थित है। इस अखण्ड क्षेत्र मे दीप के प्रकाशो की तरह कभी हानिवृद्धि नही होती। (४५३, ७५३)

प्रश्न ११४—काल से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—एक समय मे रहने वाला जो, जितना और जिस प्रकार का सम्पूर्ण सत् है—वही, उतना और उसी प्रकार का सम्पूर्ण सत् समुदित सब समयो मे भी है। काल के अनुसार शरीर की हानिवृद्धि की तरह सत् मे काल की अपेक्षा से भी हानिवृद्धि नही होती है। वह सदा अखण्ड है। (४७३, ७५३)

प्रश्न ११५—भाव से सत् एक कैसे है ?

उत्तर—सत् सब गुणो का तादात्म्य एक पिण्ड है। गुणो के अतिरिक्त और उसमे कुछ है हो नही। किसी एक गुण की अपेक्षा जितना सत् है प्रत्येक गुण की अपेक्षा भी वह उतना ही है तथा समस्त गुणो की अपेक्षा भी वह उतना ही है यह भाव से एकत्व है। स्कध मे परमाणुओ की हानिवृद्धि की तरह सत् के गुणो मे कभी हानिवृद्धि नही होती। (४८१ से ४८५ तक ७५३)

प्रश्न ११६—सत् के अनेक होने में क्या युक्ति है ?

उत्तर—व्यतिरेक के बिना अन्वय पक्ष नही रह सकता अर्थात् अवयवो के अभाव मे अवयवी का भी अभाव ठहरता है। अत अवयवो की अपेक्षा से सत् अनेक भी है।

प्रश्न ११७—द्रव्य से सत् अनेक कैसे है ?

उत्तर—गुण अपने लक्षण से है, पर्याय अपने लक्षण से है। प्रत्येक अवयव अपने-अपने लक्षण से (प्रदेश से नही) भिन्न-भिन्न है। अत. सत् द्रव्य से अनेक है। (४९५, ७५२)

प्रश्न ११८—क्षेत्र से सत् अनेक कैसे है ?

उत्तर—प्रत्येक देशांश का सत् भिन्न-भिन्न है इस अपेक्षा क्षेत्र से अनेक भी है। प्रतीति के अनुसार अनेक है। सर्वथा नही। (४९६, ७५२)

प्रश्न ११९—काल से सत् अनेक कैसे है ?

उत्तर—पर्याय दृष्टि से प्रत्येक काल (पर्याय) का सत् भिन्न-भिन्न है इस प्रकार सत् काल की अपेक्षा अनेक है। (४९७, ७५२)

प्रश्न १२०—भाव की अपेक्षा सत् अनेक कैसे है ?

उत्तर—प्रत्येक भाव (गुण) अपने-अपने लक्षण से (प्रदेश से नही) भिन्न-भिन्न है इस प्रकार सत् भाव की अपेक्षा अनेक है। (४९८, ७५२)

प्रश्न १२१—एक अनेक पर उभय नय लगाओ ?

उत्तर—जो सत् गुण पर्यायादि अंगो से विभाजित अनेक है, वही सत अनशी होने से अभेद्य एक है, यह उभय नय या प्रमाण पक्ष है। (७५५)

प्रश्न १२२—एक अनेक पर अनुभव नय लगाओ ?

उत्तर—अखण्ड होने से जिसमे द्रव्य गुण पर्याय की कल्पना ही नही है। जो किसी विकल्प से भी प्रगट नही किया जा सकता है। यह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय या अनुभय पक्ष है। (७५४)

निर्पेक्ष, सापेक्ष विचार (५)

प्रश्न १२३—निर्पेक्ष से क्या समझते हो ?

उत्तर—अस्ति-नस्ति, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, चारो

युगल भिन्न-भिन्न सर्वथा जुदा माने जावें तो मिथ्या है और चारो यदि परस्पर के मैत्रीभाव से सम्मिलित मानकर मुख्य गौण की विधि से प्रयोग किये जायें तो सम्यक् हैं।

प्रश्न १२४—परस्पर सापेक्षता का या मुख्य गौण का रहस्य क्या है ?

उत्तर—परस्पर सापेक्षता का यह रहस्य है कि आप वस्तु को जिस धर्म से देखना चाहे सारी की सारी वस्तु आपको उसी रूप दृष्टिगत होगी यह नही कि उसका कुछ हिस्सा तो आपको एक धर्म रूप नजर आये और दूसरा हिस्सा दूसरे रूप जैसे नित्यानित्यात्मक वस्तु मे नित्य अनित्य दोनो धर्म इस प्रकार परस्पर सापेक्ष हैं कि त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि से वस्तु देखो तो सारी स्वभाव रूप और परिणाम की दृष्टि से वस्तु देखो तो सारी परिणाम रूप नजर आयेगी। अब तुम अपने को चाहे जिस रूप देख लो। ज्ञानी अपने को सदैव नित्य अवस्थित स्वभाव की दृष्टि से देखता है। अज्ञानी जगत् अपने का सदा परिणाम दृष्टि से देखता है। क्योकि उसमे दोनो धर्म रहते हैं इसलिए जिस रूप देखना चाहो उसी रूप दीखने लगती है। इसी को मुख्य गौण कहते हैं। निरपेक्ष मानने वालो को वस्तु सर्वथा एक रूप नजर आयेगी। यही बात अन्य चार युगलो मे भी है।

प्रश्न १२५—सर्वथानिरपेक्षपने का निषेध कहाँ-कहाँ किया है ?

उत्तर—(१) सामान्य और विशेष दोनो के निरपेक्षपने का निषेध तो १६ से १९ तक तथा २८९ से ३०८ तक किया है। (२) तत् अतत् के सर्वथा निरपेक्ष का निषेध ३३२ मे किया है (३) सर्वथा नित्य का निषेध ४२३ से ४२८ तक तथा सर्वथा अनित्य का निषेध ४२९ से ४३२ तक किया है (४) सर्वथा एक का निषेध ५०१ मे और सर्वथा अनेक का निषेध ५०२ मे किया है।

प्रश्न १२६—परस्पर सापेक्षता का समर्थन कहाँ-कहाँ किया है ?

उत्तर—(१) सामान्य विशेष की सापेक्षता न० १५, १७, २०,

२१, २२ तथा २८९ से ३०८ तक है (२) तत् अतत् की सापेक्षता ३३२ मे ३३४ मे बताई है (३) नित्य अनित्य की सापेक्षता ४३३ मे कही है (४) एक अनेक की सापेक्षता ५०० मे कही है।

प्रश्न १२७—निरपेक्ष के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—निरपेक्ष, निरकुश, स्वतन्त्र, सर्वथा, भिन्न-भिन्न प्रदेश।

प्रश्न १२८—सापेक्ष के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—सापेक्ष, परस्पर मिथ प्रेम, कथचित्, स्यात् किसी अपेक्षा मे, दोनो के अभिन्न प्रदेश। अविरुद्ध रूप से, मैत्रीभाव, सप्रतिपक्ष।

प्रश्न १२९—मुख्य के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—विवक्षित, उन्मग्न, अर्पित, मुख्य, अनुलोम, उन्मज्जत, अस्ति, जिस दृष्टि से देखना हो, अपेक्षा, स्व।

प्रश्न १३०—गौण के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—अविवक्षित, अवमग्न, अनर्पित, गौण, प्रतिलोम, निमज्जत, नास्ति, जिस दृष्टि से न देखना हो, उपेक्षा, पर।

शेष विधि विचार (६)

प्रश्न १३१—'शेष विधि पूर्ववत् जान लेना' इसमें क्या रहस्य है ?

उत्तर—अस्ति-नास्ति, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, चारो युगल अपने-अपने रूप से अस्ति और नास्ति (जिसकी मुख्यता हो वह अस्ति, दूसरी नास्ति) रूप तो है ही (एक-एक नय दृष्टि) पर वे उभय (प्रमाण दृष्टि) और अनुभय (शुद्ध अखण्ड द्रव्यार्थिक दृष्टि) रूप भी है यह बात भी दृष्टि मे अवश्य रहे और इसका विस्मरण न हो जाय, यही इसका रहस्य है।

प्रश्न १३२—'शेष विधि पूर्ववत् जान लेना' इसका कथन कहाँ-कहाँ है ?

उत्तर—अस्ति-नास्ति का २८७, २८८ मे, अतत्-अतत् का ३३५ मे, नित्य-अनित्य का ४१४ से ४१७ मे, एक-अनेक का ४९९ मे किया

है। (इनका परस्पर अभ्यास करने से अनेकान्त की सब विधि लगाने का परिज्ञान हो जाता है)।

तीसरे भाग का दृष्टि परिज्ञान (३)

पहली पुस्तक मे तीन दृष्टियो से काम लिया गया था। अखण्ड को वतलाने वाली द्रव्यदृष्टि, उसके एक-एक गुण पर्याय आदि अशो को वतलाने वाली पर्याय दृष्टि, खण्ड अखण्ड उभयरूप वतलाने वाली प्रमाण दृष्टि। दूसरी पुस्तक मे चार दृष्टि से काम लिया गया था। वस्तु चार युगलो से गुम्फित है। उन युगलों के एक-एक धर्म को वतलाने वाली एक-एक पर्याय दृष्टि, दोनो को इकट्ठा वतलाने वाली प्रमाण दृष्टि तथा अभेद-अखण्ड वतलाने वाली अनुभय दृष्टि या शुद्ध दृष्टि। अब इस तीसरी पुस्तक मे अन्य प्रकार की दृष्टियो से काम लिया गया है। पहली व्यवहार दृष्टि, दूसरी निश्चय दृष्टि, तीसरी प्रमाण दृष्टि, चौथा नयातीत आत्मानुभूति दशा। इनकी शुद्धि के लिये नयाभासो का भी परिज्ञान कराया गया है। अब इन पर सक्षेप से कुछ प्रकाश डालते हैं।

(१) सबसे पहले यह समझने की आवश्यकता है कि जैन धर्म एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से कोई सम्बन्ध नही मानता। उनमे किसी प्रकार का सम्बन्ध वतलाना नयाभास है चाहे वह कर्ता सम्बन्धी हो या भोगता सम्बन्धो हो या और कोई प्रकार का भी हो। इतनी वात भली-भाँति निर्णीत होनी चाहिए तव आगे गाडी चलेगी।

(२) फिर वह जानने की आवश्यकता है कि विभाव सहित एक अखण्ड धर्मी का परिज्ञान करना है। विना भेद के जानने का और कोई साधन नही है अत उस द्रव्य के चतुष्टय मे दो अश हैं एक विभाव अश, शेष स्वभाव अश। विभाव अश उसमे क्षणिक है, मैल है, आगन्तुक भाव है, बाहर निकल जाने वाली चीज है। उसका नाम असद्भूत है अर्थात् जो द्रव्य का मूल पदार्थ नही है। उसको दर्शाने वाली दृष्टि

असद्भूत व्यवहार नय है। ये नय विभाव को उस द्रव्य का बतलाती है और असद्भूत बतलाती है। ये नय केवल जीव पुद्गल मे ही लगती है क्योकि विभाव इन्ही दो मे होता है। वह विभाव एक बुद्धिपूर्वक-व्यक्त-अपने ज्ञान की पकड मे आने वाला। दूसरा अव्यक्त-अपने ज्ञान की पकड मे न आने वाला। पकड मे आने वाले को उपचरित असद्भूत कहते है। उपचरित का अर्थ ही पकड मे आने वाला और असद्भूत का अर्थ विभाव। और पकड मे नही आने वाला अनुपचरित असद्भूत। इस नय के परिज्ञान से जीव को मूल मेटर का और मैल का भिन्न-भिन्न परिज्ञान हो जाता है और वह स्वभाव का आश्रय करके मैल को निकाल सकता है।

फिर जो बचा उसका सद्भूत कहते है। उसमे पर्याय को उपचरित सद्भूत और गुण को अनुपचरित सद्भूत क्योकि पर्याय सदा पर से उपचरित की जाती है। और गुण से उपचरित नही होता अत' अनुपचरित। ये नय छहो द्रव्यो पर लगती है जैसे—ज्ञान स्व पर को जानता है यह तो जीव मे सद्भूत उपचरित, पुद्गल मे हरा-पीला आदि उपचरित, धर्म द्रव्य मे जो जीव पुद्गल को चलने मे मदद दे यह स्पष्ट पर से उपचरित किया गया है, अधर्म मे जो जीव पुद्गल को ठहरने मे मदद करे, आकाश मे जो सबको जगह दे और काल मे जो सबको परिणमावे। ये सब उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का कथन है। अब पर्याय दृष्टि को गौण करके द्रव्य और गुण का भेद करके कहना अनुपचरित जैसे आत्मा का ज्ञान गुण, पुद्गल का स्पर्श, रस, गध, वर्ण गुण, धर्म का गतिहेतुत्व गुण, अधर्म का स्थितिहेतुत्व गुण, आकाश का अवगाहत्व गुण, काल का परिणमनहेतुत्व गुण। इन गुणो को द्रव्य के अनुजीवी गुण बतलाना। स्वत. सिद्ध अपने कारण से रहने वाले, ये अनुपचरित सदभूत व्यवहार नय है। अनुपचरित अर्थात् पर से बिल्कुल उपचार नही किये गये। किन्तु स्व से ही उपचार किये गये।

अब एक दृष्टि और समझने की है वह यह कि दूसरा धर्मी तो

दूसरा ही है। उसकी तो बात ही क्या। विभाव क्षणिक है। निकल जाता है। वह कोई मूल वस्तु ही नही। अत उसकी भी क्या बात। अव द्रव्य मे केवल पूर्ण स्वभाव पर्याय और गुण बचता है क्योकि एक देश स्वभाव पर्याय भी साथ मे विभाव के अस्तित्व के कारण थी। जब विभाव निकल गया तो एक देश स्वभाव पर्याय को कोई अवकाश नही रहा। पूर्ण शुद्ध पर्याय द्रव्य का सोलह आने निरपेक्ष स्वत सिद्ध गुण परिणमन है। गुणो का स्वभाव ही नित्यानित्यात्मक है। जब तक पर्याय मे विभाव था तब तक गुण और पर्याय का स्वभाव भेद दिखलाना प्रयोजनवान था। अब पर्याय को गुण से भिन्न कहने का कोई प्रयोजन न रहा। वह गुण मे समाविष्ट हो जायेगी। जिन आचार्यों ने केवल गुण समुदाय द्रव्य कहा है वह इसी दृष्टि की मुख्यता से कहा है। अब उस द्रव्य को न असद्भूत नय से कुछ प्रयोजन रहा, और पर्याय भिन्न न रहने से उपचरित सद्भूत से भी प्रयोजन न रहा। अनुपचरित सद्भूत तो उपचरित के मुकावले मे था। जब उपचरित न रहा तो अनुपचरित भी व्यर्थ हो गया। उसके लिए आचार्यों ने कहा कि अब द्रव्य को भेद करने का और तरीका है और इन नयो की अव आवश्यकता नही। अब तो और ही प्रकार से भेद होगा, वह प्रकार है गुण भेद। जितने गुणो का वह अखण्ड पिण्ड है बस केवल उतने ही भेद होगे और कोई भेद न होगा और न हो सकता है। एक-एक गुण को बतलाने वाली एक-एक नय। जो गुण का नाम, वही नय का नाम जैसे ज्ञान गुण को बतलाने वाली ज्ञान नय। जहाँ तक गुण गुणी का भेद है वहाँ तक व्यवहार नय है। वे सब व्यवहार नय का विस्तार है, परिवार है। ये सब काल्पनिक भेद केवल समझाने की दृष्टि से किया गया है। जो अभेद मे भेद करे वह सब व्यवहार है।

अब निश्चय नय को समझाते हैं। निश्चय नय का विषय परवस्तु रहित, विभाव रहित, एकदेश स्वभाव पर्याय रहित, पूर्ण स्वभाव पर्याय को गुणो मे समाविष्ट करके, गुण भेद को द्रव्य मे समाविष्ट करके

अखण्ड वस्तु है। ऐसा कुछ वस्तु का नियम है कि पूर्ण अखण्ड द्रव्य का द्योतक कोई शब्द ही जगत मे नही है। जो कहोगे वह एक गुण भेद का द्योतक होगा जैसे सत्—अस्तित्व गुण का द्योतक है, वस्तु-वस्तुत्व गुण का, जीव-जीवत्व गुण का, द्रव्य-द्रव्यत्व गुण का। अत लाचार होकर अभेद के लिए आपको यही कहना पडेगा कि भेदरूप नही अर्थात् 'नेति' शब्द से वह आशय प्रकट किया जायेगा। अर्थ उसका होगा भेद रूप नही—अभेद रूप। यह जीव को हर समय ऐसा दिखलाता है जैसा सिद्ध मे है। पुद्‌गल को हर समय एक शुद्ध परमाणु। धर्मादिक तो है ही शुद्ध।

अब प्रमाण दृष्टि समझाते हैं। यह कहती है, जो भेद रूप है, वही तो अभेद रूप है। जो नित्य है वही तो अनित्य है। इत्यादि रूप से दोनो विरोधी धर्मों को एकधर्मी मे अविरोध पूर्वक स्थापित करती है।

उपर्युक्त तीनो दृष्टियो का ज्ञान होने पर वस्तु का परिज्ञान हर पहलू से हो जाता है। वस्तु स्वतन्त्र पर से निरपेक्ष, ख्याल मे आ जाती है। यहा तक सब ज्ञान का कार्य है। इससे आगे अब नयातीत दशा को समझाते हैं। जो कोई जीव ऊपर बतलाये हुये सब विकल्प जाल को जानकर वस्तु के परिज्ञान से सन्तुष्ट हो जाता है और अपने को मूलभूत शुद्ध जीवास्तिकाय रूप जानकर उसका श्रद्धान करता है। उपयोग जो अनादि काल से पर की एकत्वबुद्धि, परकर्तृत्व, परभोक्तृत्व मे अटका हुआ है, उसको वहा से हटाकर अपने सामान्य स्वरूप की ओर मोडता है और सब प्रकार के नय प्रमाण निक्षेपो के विकल्प जाल से हटकर सामान्य तत्त्व मे लीन होता हुआ अतीन्द्रिय सुख को भोगता है वह पुरुष नयातीत दशा को प्राप्त होता है उनको आत्मानुभूति, समयसार, आत्मख्याति, आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र इत्यादिक अनेक नामो से कहा है। इसका फल कर्म कलङ्क से रहित पूर्ण शुद्ध आत्मा की प्राप्ति है।

प्रश्न १३३—नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—नित्य-अनित्य आदि विरुद्ध दो धर्म स्वरूप द्रव्य मे किसी एक धर्म का वाचक नय है जैसे सत् नित्य है, या सत् अनित्य है अथवा अनन्त धर्मात्मक-वस्तु को देखकर उसके एक-एक धर्म का नाम रखना नय है जैसे ज्ञान दर्शन इत्यादिक। (५०४, ५१३)

प्रश्न १३४—नय के औपचरिक भेद लक्षण सहित लिखो ?

उत्तर—(१) द्रव्य नय (२) भाव नय। पौद्‌लिक शब्दो को द्रव्य नय कहते हैं और उसके अनुसार प्रवृत्ति करने वाले विकल्प सहित जीव के श्रुतज्ञानाश को भाव नय कहते है। (५०५)

प्रश्न १३५—नय क्या करता है ?

उत्तर—वस्तु के अनन्त धर्मो का भिन्न-भिन्न ज्ञान कराकर वस्तु को अनन्त धर्मात्मक सिद्ध करता है तथा उसका अनुभव करा देता है। (५१५)

प्रश्न १३६—नयो के मूल भेद कितने हैं ?

उत्तर—दो (१) द्रव्यार्थिक या निश्चय नय (२) पर्यायार्थिक या व्यवहार नय। (५१७)

प्रश्न १३७—द्रव्यार्थिक नय किसे कहते हैं और वे कितने हैं ?

उत्तर—केवल अखण्ड सत् ही जिसका विपय है वह द्रव्यार्थिक है। यह एक ही होता है। इसमे भेद नही हैं। (५१८)

प्रश्न १३८—पर्यायार्थिक नय किसे कहते हैं ?

उत्तर—अशो को पर्यायें कहते है। उन अशो मे से किसी एक विवक्षित अश को कहने वाली पर्यायार्थिक नय है। (५१९)

प्रश्न १३९—व्यवहार नय का लक्षण, कारण और फल बताओ ?

उत्तर—अभेद सत् मे विधि पूर्वक गुण गुणो भेद करना व्यवहार नय है। साधारण या असाधारण गुण इसकी प्रवृत्ति मे कारण है। अनन्तधर्मात्मक एकधर्मी मे आस्तिक्य बुद्धि का होना इसका फल है क्योकि गुण के सद्भाव मे नियम से द्रव्य का अस्तित्व प्रतीति मे आ जाता है। (५२२, ५२३, ५२४)

प्रश्न १४०—सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, कारण, फल बताओ ?

उत्तर—विवक्षित किसी द्रव्य के गुणो को उसी द्रव्य मे भेद रूप से प्रवृत्ति कराने वाले नय को सद्भूतव्यवहार नय कहते हैं। सत् का असाधारण गुण इसकी प्रवृत्ति मे कारण है। एक वस्तु का अस्तित्व दूसरी वस्तु से सर्वथा भिन्न है तथा प्रत्येक वस्तु पूर्ण स्वतन्त्र और स्वसहाय हैं ऐसा भेद विज्ञान होना इसका फल है। (५२५ से ५२८)

प्रश्न १४१—असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, कारण, फल और दृष्टान्त बताओ ?

उत्तर—मूल द्रव्य मे वैभाविक परिणमन के कारण जो एक द्रव्य के गुण दूसरे द्रव्य मे सयोजित करना असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण है। उसकी वैभाविक शक्ति की उपयोगता इसका कारण है। विभाव भाव क्षणिक है। उसको छोडकर जो कुछ बचता है वह मूल द्रव्य है। ऐसा मानकर सम्यग्दृष्टि होना इसका फल है पुद्गल के क्रोध को जीव का क्रोध कहना यह इसका दृष्टात है। (५२९ से ५३३)

प्रश्न १४२—अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, उदाहरण तथा फल बताओ ?

उत्तर—जिस सत् मे जो शक्ति अन्तर्लीन है। उसको उसी की पर्याय निरपेक्ष केवल गुण रूप से कहना अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है जैसे जीव का ज्ञान गुण। इससे द्रव्य की त्रिकाल स्वतन्त्र सत्ता का परिज्ञान होता है। (५३४ से ५३९)

प्रश्न १४३—उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, उदाहरण कारण और फल बताओ ?

उत्तर—अविरुद्धतापूर्वक किसी कारणवश किसी वस्तु का गुण उसी मे पर की अपेक्षा से उपचार करना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। अर्थ विकल्प ज्ञान प्रमाण है यह इसका उदाहरण है। बिना पर के स्वगुण उपचार नही किया जा सकता यह इसकी प्रवृत्ति मे

कारण है। विशेष को साधन बनाकर सामान्य की सिद्धि करना इसका फल है। (५४० से ५४५)

प्रश्न १४४—अनुपचरित असद्भुत व्यवहार नय का लक्षण, कारण, फल बताओ ?

उत्तर—अबुद्धिपूर्वक विभाव भावो को जीव का कहना अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। वैभाविक शक्ति का उपयोग दशा मे द्रव्य से अनन्यमय होना इसकी प्रवृत्ति मे कारण है। विभाव भाव मे हेय बुद्धि का होना इसका फल है। (५४६ से ५४८)

प्रश्न १४५—उपचरित असद्भूत व्यवहार नय का लक्षण, कारण फल बताओ ?

उत्तर—बुद्धि पूर्वक विभाव भावो को जीव के कहना उपचरित असद्भूत व्यवहार नय है। इसमे पर निमित्त है यह इसका कारण है। अविनाभाव के कारण अबुद्धि पूर्वक भावो की सत्ता का परिज्ञान होता इसका फल है। (५४९ से ५५१)

प्रश्न १४६—उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का मर्म क्या है ?

उत्तर—"ज्ञान पर को जानता है" ऐसा कहना अथवा तो ज्ञान मे राग ज्ञात होने से "राग का ज्ञान है" ऐसा कहना अथवा ज्ञाता स्वभाव के भानपूर्वक ज्ञानी "विकार को भी जानता है" ऐसा कहना उपचरित सद्भूत व्यवहार नय का कथन है।

प्रश्न १४७—अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय का मर्म क्या है ?

उत्तर—ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी के भेद से आत्मा को जानना वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है। साधक को राग रहित ज्ञायक स्वभाव की दृष्टि हुई हो तथापि अभी पर्याय मे राग भी होता है। साधक स्वभाव की श्रद्धा मे राग का निषेध हुआ हो, तथापि, उसे गुण भेद के कारण चारित्र गुण की पर्याय मे अभी राग होता है—ऐसे गुण भेद से आत्मा को जाना वह अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय है।

प्रश्न १४८—उपचरित असद्‌भूत व्यवहार नय का मर्म बताओ ?

उत्तर—साधक ऐसा जानता है कि अभी मेरी पर्याय मे विकार होता है। उसमे व्यक्त राग-बुद्धि पूर्वक का राग—प्रगट ख्याल मे लिया जा सकता है ऐसे बुद्धिपूर्वक के विकार को आत्मा का जानना यह उपचरित असद्‌भूत व्यवहार नय है।

प्रश्न १४९—अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहार नय का मर्म बताओ ?

उत्तर—जिस समय बुद्धिपूर्वक का विकार है उस समय अपने ख्याल मे न आ सके—ऐसा अबुद्धिपूर्वक का विकार भी है, उसे जानना वह अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहार नय है।

प्रश्न १५०—सम्यक् नय का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जो नय तद्‌गुणसविज्ञान सहित (जीव के भाव वे जीव के तद्‌गुण हैं तथा पुद्‌गल के भाव वे पुद्‌गल के तद्‌गुण हैं—ऐसे विज्ञान सहित हो) उदाहरण सहित हो, हेतु सहित और फलवान (प्रयोजनवान्) हो वह सम्यक् नय है। जो उससे विपरीत नय है वह नयाभास (मिथ्या नय) है क्योकि पर भाव को अपना कहने से आत्मा को क्या साध्य (लाभ) है (कुछ नही)।

प्रश्न १५१—नयाभास का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जीव को पर का कर्ता-भोक्ता माना जाय तो भ्रम होता है व्यवहार से भी जीव पर कर्ता भोक्ता नही है। व्यवहार से आत्मा राग का कर्ता भोक्ता है क्योकि राग वह अपनी पर्याय का भाव है इसलिए उसमे तद्‌गुण सविज्ञान लक्षण लागू होता है। जो उससे विरुद्ध कहे वह नयाभास (मिथ्या नय) है।

प्रश्न १५२—सम्यक् नय और मिथ्या नय की क्या पहचान है ?

उत्तर—जो भाव एकधर्मी का हो, उसको उसी का कहना तो सच्चा नय है और एक धर्मी के धर्म को दूसरे धर्मी का धर्म कहना मिथ्या नय है। जैसे राग को आत्मा का कहना तो सम्यक् नय है और वर्ण को आत्मा का कहना मिथ्या नय है।

प्रश्न १५३—नयाभासो के कुछ दृष्टांत बताओ ?

उत्तर—(१) शरीर को जीव कहना (२) द्रव्य कर्म नोकर्म का कर्ता-भोक्ता आत्मा को कहना (३) घर धन धान्य स्त्री पुत्रादि वाह्य पदार्थो का कर्ता-भोक्ता जीव को कहना (४) ज्ञान को ज्ञेयगत या ज्ञेय को ज्ञानगत कहना इत्यादि। दो द्रव्य मे कुछ भी सम्वन्ध मानना नयाभास है।

प्रश्न १५४—व्यवहार नयो के नाम बताओ ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे जितने गुण हैं। उनमे हर एक गुण को भेद रूप से विषय करने वाली उसी नाम की नय है। जितने एक वस्तु मे गुण हैं उतनी नय हैं। ये शुद्ध द्रव्य को जानने का तरीका है। जैसे आत्मा के अस्तित्व गुण को बताने वाली अस्ति नय ज्ञान गुण को बताने वाली ज्ञान नय।

प्रश्न १५५—उपर्युक्त नयो के पहचानने का क्या तरीका है ?

उत्तर—विशेषण विशेष्य रूप से उदाहरण सहित जितना भी कथन है वह सब व्यवहार नय है यही इसके जानने का गुर है।

प्रश्न १५६—निश्चय नय का लक्षण क्या है ?

उत्तर—जो व्यवहार का प्रतिषेधक हो, वह निश्चय नय है। 'नेति' से इसका प्रयोग होता है। यह उदाहरण रहित है।

प्रश्न १५७—व्यवहार प्रतिषेव्य क्यो है ?

उत्तर—क्योकि वह मिथ्या विषय का उपदेश करता है। वह इस प्रकार द्रव्य मे गुण पर्यायो के टुकडे करता है जैसे परशु से लकडी के टुकडे कर दिये जाते हैं किन्तु द्रव्य अखण्ड एक है उसमे ऐसे टुकडे नही हैं। अत व्यवहार नय मिथ्या है। व्यवहार नय के कथनानुसार श्रद्धान करने वाले मिथ्या दृष्टि हैं।

प्रश्न १५८—जब वह मिथ्या है तो उसके मानने की आवश्यकता ही क्या है ?

उत्तर—निश्चय नय अनिर्वचनीय है। अत वस्तु समझने समझाने

के लिए व्यवहार नय की आवश्यकता है। यह केवल वस्तु को पकड़ा देता है। इतना ही उसमे कार्यकारीपना है क्योंकि वस्तु पकड़ने का और कोई साधन नही है।

प्रश्न १५६—निश्चय नय का विषय क्या है ?

उत्तर—जो व्यवहार नय का विषय है वही निश्चय नय का विषय है। व्यवहार नय मे से भेद विकल्प निकाल देने पर निश्चय नय का ही विषय बनता है।

प्रश्न १६०—निश्चयनयावलम्बी स्वसमयी है या परसमयी ?

उत्तर—निश्चयनयावलम्बी भी परसमयी है क्योंकि इसमे निषेध रूप विकल्प है। दूसरे दोनो नय सापेक्ष है। जहाँ विधि रूप विकल्प होगा वहाँ निषेधरूप विकल्प भी अवश्य होगा।

प्रश्न १६१—स्वसमयी जीव कौन है ?

उत्तर—जो निश्चनय के विकल्प को भी पार करके स्वात्मानुभूति मे प्रवेश कर गया है। नयातीत अवस्था को स्वसमय प्रतिबद्ध अवस्था कहते है।

प्रश्न १६२—निश्चयनय के कितने भेद हैं। कारण सहित बताओ ?

उत्तर—निश्चयनय का कोई भेद नही क्योकि वह अखण्ड सामान्य को विषय करती है अत उसमे भेद हो ही नही सकता। वह केवल एक ही है।

प्रश्न १६३—निश्चयनय के शुद्ध निश्चय, अशुद्ध निश्चय आदि भेद हैं या नहीं ?

उत्तर—नही। वे व्यवहार नय के ही नामान्तर हैं। केवल कथन-शैली का अन्तर है। जो उन कथनो को वास्तव मे ही कोई सामान्य की द्योतक निश्चय नय मान ले तो वह मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न १६४—व्यवहार नय और निश्चयनय का क्या फल है ?

उत्तर—व्यवहारनय को हेय श्रद्धान करना चाहिए। यदि उसे

उपादेय माने तो उसका फल अनन्त ससार है। निश्चय नय का विषय उपादेय है। निश्चयनय का विषय जो सामान्य मात्र वस्तु है, यदि उसका आश्रय करे और निश्चयनय का विकल्प भी छोडे तो स्वसमयी है। उसका फल आत्मसिद्धि है।

प्रश्न १६५—निश्चय और व्यवहार के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—व्यवहार भेद को कहते है। भेद मे राग आस्रव बध ससार है। निश्चय अभेद को कहते हैं। अभेद मे मोक्ष मार्ग, वीतरागता, सवर और निर्जरा है।

प्रश्न १६६—फिर आचार्यों ने भेद का उपदेश क्यो दिया ?

उत्तर—केवल अभेद को समझने के लिए। भेद मे अटकने के लिए नही। जो केवल व्यवहार के पीछे हाथ धोकर पडे हैं उनके लिए जिनोपदेश ही नही है। ऐसा पुरुषार्थसिद्धयुपाय मे कहा है। श्री समयसार जी मे व्यवहार को म्लेच्छभाषा और व्यवहारावलम्बी को मलेच्छ कहा है क्योकि म्लेच्छो के धर्म नही होता।

प्रश्न १६७—व्यवहार तो ज्ञानियो के भी होता है ना ?

उत्तर—ज्ञानियो के व्यवहार का अवलम्बन, आश्रय श्रद्धा मे कदापि नही होता किन्तु वे तो व्यवहार के केवल ज्ञाता होते है। व्यवहार का अस्तित्व वस्तु स्वभाव के नियमानुसार उनके होता अवश्य है पर ज्ञेय रूप से।

प्रश्न १६८—व्यवहार को श्री समयसार जी में प्रयोजनवान कहा है ना ?

उत्तर—तुमने ध्यान से नही पढा वहाँ लिखा है। "जानने मे आता हुआ उस काल प्रयोजनवान है।" इसका अर्थ गुरुगम अनुसार यह है कि व्यवहार ज्ञानी की पर्याय मे उस समय मात्र के लिए ज्ञेय रूप से मौजूद है न कि इसका यह अर्थ है कि ज्ञानी को उसका आश्रय होता है (श्रीसमयसारजी गाथा १२ टीका)। श्री पचास्तिकाय गाथा ७० टीका मे लिखा है "कर्तृत्व और भोक्तृत्व के अधिकार को समाप्त करके

सम्यक्पने प्रगट प्रभुत्व शक्तिवाला होता हुआ ज्ञान को ही अनुसरण करने वाले मार्ग मे चलता है-प्रवर्तता है—परिणमता है-आचरण करता है तब वह विशुद्ध आत्म-तत्त्व की उपलब्धि रूप अपवर्गनगर को पाता है।' तीन काल और तीन लोक मे यही एक मोक्षप्राप्ति का उपाय है। श्री प्रवचनसार अन्तिम पचरत्न मे शुद्ध के ही मुनिपना, ज्ञान दर्शन निर्वाण कहा है। और नवमे ग्रीवक मे जाने वाले पूर्ण शुद्ध व्यवहारी मुनि को ससार तत्त्व अर्थात् विभाव का राजा या मिथ्यादृष्टियो का सरताज कहा है। ऐसी रहस्य की बातें बिना सद्गुरु समागम नही आती। ऐसा मालूम होता है कि आपने बिना गुरुगम अभ्यास किया है। यदि बिना गुरुगम तत्त्व हाथ लग जाया करता तो सम्यक्त्व मे देशनालब्धि की आवश्यकता न रहती। केवल शास्त्रो से काम चल जाता।

प्रश्न १६९—प्रमाण ज्ञान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—जो ज्ञान सामान्य विशेष दोनो स्वरूपो को मैत्री पूर्वक जानता है वह प्रमाण है अर्थात् वस्तु के सम्पूर्ण अशो को अविरोधपूर्वक ग्रहण करने वाला ज्ञान प्रमाण है इसका विषय सपूर्ण वस्तु है। इसके द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का अनुभव एक साथ हो जाता है। (६६५, ६७६)

प्रश्न १७०—प्रमाण ज्ञान के भेद बताओ ?

उत्तर—प्रमाण के दो भेद है (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष। असहाय ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं और सहाय सापेक्ष ज्ञान को परोक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद है। सकल प्रत्यक्ष और विकल प्रत्यक्ष। केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है। अवधि मन पर्यय विकल प्रत्यक्ष है। मतिश्रुत परोक्ष है किन्तु इनमे इतनी विशेषता है कि अवधि मन पर्यय निश्चय से परोक्ष है उपचार से प्रत्यक्ष है। मतिश्रुतज्ञान स्वात्मानुभूति मे प्रत्यक्ष है। परपदार्थ को जानते समय परोक्ष है। इतनी विशेषता और है कि आत्म सिद्धि मे दो मतिश्रुत ज्ञान ही उपयोगी है। अवधि मन पर्यय नही।

प्रश्न १७१—निक्षेपो का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—गुणो के आक्षेप को निक्षेप कहते हैं। इसके चार भेद है। नाम स्थापना, द्रव्य और भाव। अतद्‌गुण वस्तु मे व्यवहार चलाने के लिये जो नाम रक्खा जाता है वह नाम निक्षेप है। जैसे किसी व्यक्ति मे जिनके गुण नही है पर उसका नाम जिन रक्खना। उसी के आकार वाली वस्तु मे यह वही है ऐसी बुद्धि का होना स्थापना निक्षेप है जैसे प्रतिमा। वर्तमान मे वैसा न हो किन्तु भावि मे नियम मे वैसा होने वाले को द्रव्य निक्षेप कहते है जैसे गर्भ जन्म मे ही भगवान को जिन कहना। जिस शब्द से कहा जाय, उसी पर्याय मे होने वाली वस्तु को भाव निक्षेप कहते हैं जैसे साक्षात् केवली को जिन कहना।

नय प्रमाण प्रयोग पद्धति

प्रश्न १७२—द्रव्य गुण पर्याय पर पर्यायार्थिक नय का प्रयोग करके दिखाओ ?

उत्तर—द्रव्य, गुण पर्याय वाला है अर्थात् जो द्रव्य को भेद रूप कहे जैसे गुण है। पर्याय है। और उनका समूह द्रव्य है। उस द्रव्य मे जो द्रव्य है वह गुण नही है, जो गुण है वह द्रव्य नही है, पर्याय भी द्रव्य गुण नही है। यह पर्यायार्थिक नय का कहना है।

(७४७ दूसरी पक्ति, ७४६)

प्रश्न १७३—द्रव्य गुण पर्याय पर कुछ द्रव्यार्थिक नय का प्रयोग करो ?

उत्तर—तत्त्व अनिर्वचनीय है अर्थात् जो द्रव्य है वही गुण पर्याय है। जो गुण पर्याय है वही द्रव्य है क्योकि पदार्थ अखण्ड है। यह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का कहना है। (७४७ प्र० पक्ति, ७५० प्र० प०)

प्रश्न १७४—द्रव्य गुण पर्याय पर प्रमाण का प्रयोग करो ?

उत्तर—जो अनिर्वचनीय है, वही गुण पर्याय वाला है, दूसरा नही है अथवा जो गुण पर्याय वाला है वही अनिर्वचनीय है इस प्रकार जो

व्यवहार निश्चय दोनों के पक्ष को मैत्री पूर्वक कहे, वह प्रमाण है।
(७४८, ७५० दूसरी पंक्ति)

प्रश्न १७५—अनेक नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, तीनो अनेक हैं। अपने-अपने लक्षण से भिन्न-भिन्न है। यह अनेक नामा व्यवहार नय का पक्ष है।
(७५२)

प्रश्न १७६—एक नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—नाम से चाहे द्रव्य कहो अथवा गुण कहो अथवा पर्याय कहो पर सामान्यपने ये तीनो ही अभिन्न एक सत् है इसलिये इन तीनो मे से किसी एक के कहने से बाकी के दो भी बिना कहे ग्रहण होते ही हैं यह एक नामा व्यवहार नय है। (७५३)

प्रश्न १७७—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—निरश देश होने से न द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है और न विकल्प से प्रगट है यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। (७५४)

प्रश्न १७८—प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—पर्यायार्थिक नय से जो सत् द्रव्य गुण पर्यायो के द्वारा अनेक रूप भेद किया जाता है, वही सत् अशरहित (अखण्ड) होने से अभेद्य एक है यह प्रमाण का पक्ष है। (७५५)

प्रश्न १७९—अस्ति नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—विपक्ष की अविवक्षा रहते वस्तु सामान्य अथवा विशेष जिसकी विवक्षा हो, उस रूप से है। यह कहना एक अ'स्त नामा व्यवहार नय है। (७५६)

प्रश्न १८०—नास्तिनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—विपक्ष की विवक्षा रहते वस्तु सामान्य अथवा विशेष जिस रूप से नही है वह नास्ति पक्ष है। (७५७)

प्रश्न १८१—अस्ति नास्ति पर द्रव्यार्थिक नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—तत्त्व स्वरूप से है यह भी नही है। तत्त्व पररूप से नही

है यह भी नही है क्योकि वस्तु सब विकल्पो से रहित है यह शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का पक्ष है। (७५८)

प्रश्न १८२—अस्ति नास्ति पर प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—जो परस्वरूप के अभाव से नही है, वही स्वरूप के सद्भाव से है, तथा वही अनिर्वचनीय है यह सब प्रमाण पक्ष है। (७५८)

प्रश्न १८३—अनित्य नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—सत् प्रत्येक समय उत्पन्न होता है और नाश होता है यह अनित्य नामा व्यवहार नय है।

प्रश्न १८४—नित्य नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—सत् न उत्पन्न होता है, न नाश होता है, वह सदा एक रूप ध्रुव रहता है यह नित्य नामा व्यवहार नय है। (७६१)

प्रश्न १८५—निश्चय नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—सत् का न नाश होता है, न उत्पन्न होता है न ध्रुव है, वह तो निर्विकल्प है यह निश्चय नय का पक्ष है। (७६२)

प्रश्न १८६—प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—जो अनित्य की विवक्षा मे नित्य रूप से नही है वही नित्य की विवक्षा मे अनित्य रूप से नही है। इस प्रकार तत्व नित्यानित्य है यह प्रमाण पक्ष है। (७६३)

प्रश्न १८७—अतत् नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—वस्तु मे नवीन भाव रूप परिणमन होने से "यह तो वस्तु ही अपूर्व २ है" यह अतत् नामा व्यवहार नय का पक्ष है। (७६४)

प्रश्न १८८—तत् नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—वस्तु के नवीन भावो से परिणमन करने पर भी तथा पूर्व भावो से नष्ट होने पर भी यह अन्य वस्तु नही है किन्तु वही की वही है यह तत् नय नामा व्यवहार नय का पक्ष है। (७६५)

प्रश्न १८९—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर—वस्तु मे न नवीन भाव होता है, न पराचीन भाव का नाश

होता है, क्योकि न वस्तु अन्य है, न वही है किन्तु अनिर्वचनीय अखड है यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। (७६६)

प्रश्न १६०—प्रमाण का प्रयोग बताओ?

उत्तर—जो सत् प्रतिक्षण नवीन-नवीन भावो से परिणमन कर रहा है वह न तो असत् उत्पन्न है और न सत् विनष्ट है यह प्रमाण पक्ष है। (७६७)

चौथे भाग का परिशिष्ट

प्रश्न १६१—सामान्य धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो धर्म सब द्रव्यो मे पाया जाये उसे सामान्य धर्म कहते है जैसे द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायत्व, उत्पादव्ययध्रुवत्व, अस्तित्व-नास्तित्व, नित्यत्व-अनित्यत्व, तत्पना-अतत्पना, एकत्व-अनेकत्व इत्यादि। (७, ७७०)

प्रश्न १६२—विशेष धर्म किसे कहते हैं?

उत्तर—जो सब द्रव्यो मे न पाया जाये किन्तु कुछ मे पाया जाये उसे विशेप धर्म कहते हैं जैसे चेतनत्व-अचेतनत्व, क्रियत्व-भावत्व, मूर्तत्व-अमूर्तत्व, लोकत्व-अलोकत्व इत्यादिक। (७, ७७०)

प्रश्न १६३—जीव अजीव की विशेषता बताओ?

उत्तर—चेतना लक्षण जीव है, अचेतन लक्षण अजीव है। जीव चेतन हैं शेष पाँच अचेतन हैं। (७७१)

प्रश्न १६४—मूर्त अमूर्त की विशेषता बताओ?

उत्तर—जो इन्द्रिय के ग्रहण योग्य हो अथवा जिसमे स्पर्श रस गध वर्ण पाया जाए वह मूर्त है। इससे विपरीत अमूर्त है। एक पुद्गल मूर्त है। शेष पाँच अमूत हैं। (७७५, ७७७)

प्रश्न १६५—लोक अलोक की विशेषता बताओ?

उत्तर—षट्द्रव्यात्मक लोक है उससे विपरीत अर्थात् आकाश मात्र अलोक है। (७६०, ७६१)

प्रश्न १९६—क्रिया, भाव की विशेषता बताओ ?

उत्तर—प्रदेशो का चलनात्मक परिस्पन्द क्रिया है तथा प्रत्येक वस्तु मे धारावाही परिणाम भाव है। क्रियावान् दो जीव और पुद्गल है। भाववान छहो हैं। (७९४)

प्रश्न १९७—सामान्य जीव का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—जीव स्वत सिद्ध, अनादि अनन्त, अमूर्तिक, ज्ञानादि अनन्त-धर्ममय, साधारण असाधारण गुण युक्त, लोकप्रमाण असख्यात किन्तु अखण्ड अपने प्रदेशो मे रहने वाला सबको जानने वाला किन्तु उन सब से भिन्न तथा उनसे और कोई सम्बन्ध न रखने वाला, अविनाशी द्रव्य है। सब जीव समान रूप से इसी स्वभाव के धारी हैं।

(७९८, ७९९, ८००)

प्रश्न १९८—पर्यायदृष्टि से जीव के भेद स्वरूप बताओ ?

उत्तर—एक बद्ध, एक मुक्त। जो ससारी है और अनादि से ज्ञानावरणादि कर्मों से मूर्च्छित होने के कारण स्वरूप को अप्राप्त है, वह बद्ध है। जो सब प्रकार के कर्म रहित स्वरूप को पूर्ण प्राप्त है वह मुक्त है। (८०२)

प्रश्न १९९—बन्ध का स्वरूप भेद सहित बताओ ?

उत्तर—बन्ध तीन प्रकार का होता है (१) भावबन्ध, (२) द्रव्य-बन्ध, (३) उभयबन्ध। राग और ज्ञान के बन्ध को भावबन्ध या जीव-बन्ध कहते हैं। पुद्गल कर्मों को अथवा उनकी कर्मत्वशक्ति को द्रव्य-बन्ध कहते है। जीव और कर्म के निमित्त नैमित्तिक सबध को उभय बध कहते है। (८१५, ८१६)

प्रश्न २००—निमित्तमात्र के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—निमित्तमात्र, कर्ता, असर, प्रभाव, बलाधान, प्रेरक, सहायक, सहाय, इन सब शब्दो का अर्थ निमित्तमात्र है (प्रमाण-श्रीतत्त्वार्थ सार तीसरा अजीव अधिकार श्लोक न० ४३)

प्रश्न २०१—निमित्त नैमित्तिक संबंध के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—निमित्त नैमित्तिक, अविनाभाव, कारणकार्य, हेतु हेतुमत्, कर्त्ता-कर्म, साध्य साधक, वध्य वन्धक, एक दूसरे के उपकारक वस्तु स्वभाव, कानूने कुदरत Autometic system ये शब्द पर्यायवाची हैं। सब शब्दो का प्रयोग आगम मे मिलता है। अर्थ केवल निमित्त की उपस्थिति मे उपादान का स्वतन्त्र निरपेक्ष नैमित्तिक परिणमन है (प्रमाण श्रीपचास्तिकाय गाथा ६२ टीका)

प्रश्न २०२—जीव कर्म और उनके बंध की सिद्धि करो ?

उत्तर—प्रत्यक्ष अपने मे सुख-दु.ख का सवेदन होने से तथा "मैं-मैं" रूप से अपना शरीर से भिन्न अनुभव होने से जीव सिद्ध है। कोई दरिद्र कोई धनवान देखकर उसके अविनाभावी रूप कारण कर्म पदार्थ की सिद्धि होती है। जीव मे रागद्वेषमोह और सुख-दु ख रूप विभाव भावो की उत्पत्ति उनके वध को सिद्ध करती है। यदि इनका वध न होता तो जीव धर्मद्रव्यवत् विभाव न कर सकता।

(७७३, ८१८, ८१९)

प्रश्न २०३—वैभाविकी शक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा मे ज्ञानादि अनन्त शुद्धशक्तियो की तरह यह भी एक शुद्ध शक्ति है। पुद्गल कर्म के निमित्त मिलने इसका विभाव परिणमन होता है। स्वत. स्वभाव परिणमन होता है। इसी प्रकार पुद्गल मे भी यह एक शक्ति है और उसका भी दो प्रकार का परिणमन होता है। इसी शक्ति के कारण जीव ससारी और सिद्ध रूप बना है।

(८४८, ८४९)

प्रश्न २०४—आत्मा को मूर्त क्यो कहते हैं ?

उत्तर—जब तक आत्मा विभाव परिणमन करता है तब तक विभाव के कारण उसे उपचार से मूर्त कहा जाता है। वास्तव मे वह अमूर्त ही है। (८२८)

प्रश्न २०५—बद्ध ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो ज्ञान मोहकर्म से आच्छादित है, प्रत्यर्थ परिणमन शील है अर्थात् इष्ट-अनिष्ट पदार्थों के सयोग मे रागी द्वेषी मोही होता है, वह वद्ध ज्ञान है। पहले गुणस्थानवर्ती अज्ञानी के ज्ञान को बद्ध ज्ञान कहते है। (८३५)

प्रश्न २०६—अबद्ध ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मोहकर्म से रहित है, क्षायिक है, शुद्ध है, लोकालोक का प्रकाशक है। वह अवद्ध ज्ञान है। केवली के ज्ञान को अवद्ध ज्ञान कहते हैं। (८३६)

प्रश्न २०७—विभाव के नामान्तर बताओ ?

उत्तर—परकृतभाव, परभाव, पराकारभाव, पुद्गलभाव, कर्मजन्य-भाव, प्रकृति शीलस्वभाव, परद्रव्य, कर्मकृत, तद्गुणाकारसक्रान्ति, परगुणाकार, कर्मपदस्थितभाव, जीव मे होने वाला अजीवभाव, जीव-सवधी अजीव भाव, तद्गुणाकृति, परयोगकृतभाव, निमित्तकृत भाव, विभावभाव, राग, उपरक्ति, उपाधि, उपरजक, बधभाव, बद्धभाव, बद्धत्व, उपराग, परगुणाकारक्रिया, आगन्तुक भाव, क्षणिक-भाव, ऊपरतरताभाव, स्वगुणच्युति, स्वस्वरूपच्युति इत्यादि बहुत नाम है।

प्रश्न २०८—बद्धत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदार्थ मे एक वैभाविकी शक्ति है। वह यदि उपयोगी होवे अर्थात् विभावरूप कार्य करती होवे तो उस पदार्थ की अपने गुण के आकार की अर्थात् असली स्वरूप की जो सक्रान्ति-च्युति-विभाव परिणति है वह सक्रान्ति ही अन्य है निमित्त जिसमे ऐसा बन्ध है अर्थात् द्रव्य का विभाव परिणमन बद्धत्व है जैसे ज्ञान का राग रूप परिणमना बद्धत्व है। पुद्गल का कर्मत्वरूप परिणमना बद्धत्व है अर्थात् परगुणाकार क्रिया बद्धत्व है। (८४०, ८४४, ८६८)

प्रश्न २०६—अशुद्धत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने गुण से च्युत होना अशुद्धत्व है अर्थात् विभाव के कारण अद्वैत से द्वैत हो जाना अशुद्धत्व है। जैसे ज्ञान का अज्ञान रूप होना। (८८०, ८९८)

प्रश्न २१०—बद्धत्व और अशुद्धत्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर—एक अन्तर तो यह है कि बन्ध कारण है और अशुद्धत्व कार्य है क्योकि बन्ध के विना अशुद्धता नही होती अर्थात् विभाव परिणमन किये बिना ज्ञान की अज्ञानरूप दशा नही होती। ज्ञान का विभाव परिणमन बद्धत्व है और उसकी अज्ञान दशा अशुद्धत्व है। समय दोनो का एक ही है। यहा बद्धत्व कारण है और अशुद्धत्व कार्य है। (८९९)

दूसरा अन्तर यह है कि बध कार्य है क्योकि बन्ध अर्थात् विभाव पूर्वबद्धकर्मों के उदय से होता है और अशुद्धत्व कारण है क्योकि वह नए कर्मों को खेचती है अर्थात् उनके बधने के लिए निमितमात्र कारण हो जाती है। (९००)

पहले अन्तर मे बध कारण है दूसरे मे बध कार्य है। पहले अन्तर मे अशुद्धत्व कार्य है दूसरे मे कारण है यही बद्धत्व और अशुद्ध दोनो मे अन्तर है। (८९७)

प्रश्न २११—शुद्ध अशुद्ध का क्या भाव है ?

उत्तर—औदयिक भाव अशुद्ध है, क्षायिक भाव शुद्ध है। यह पर्याय मे शुद्ध अशुद्ध का अर्थ है। दूसरा अर्थ यह है कि औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक चारो नैमित्तिक भाव अशुद्ध है और उनमे अन्वय रूप से पाये जाने वाला सामान्य शुद्ध है। (९०१)

प्रश्न २१२—निश्चय नय का विषय क्या है तथा बद्धाबद्धनय (व्यवहार नय) का विषय क्या है ?

उत्तर—निश्चय नय का विषय उपर्युक्त शुद्ध सामान्य है तथा व्यवहार नय का विषय जीव की नौ पर्याये अर्थात् अशुद्ध नौतत्त्व है। (९०३)

प्रश्न २१३—द्रव्यदृष्टि से जीव तत्त्व का निरूपण करो ?

उत्तर—ऊपर प्रश्न न० १९७ के उत्तर में कह चुके हैं। (७९८, ७९९, ८००)।

प्रश्न २१४—पर्यायदृष्टि से जीव तत्त्व का निरूपण करो ?

उत्तर—जीव चेतना रूप है। वह चेतना दो प्रकार की है एक ज्ञान-चेतना, दूसरी अज्ञान चेता। अत उनके स्वामी भी दो प्रकार के हैं। ज्ञानचेतना का स्वामी सम्यग्दृष्टि। अज्ञानचेतना का स्वामी मिथ्या-दृष्टि, पर्यायदृष्टि से तीन लोक के जीव इन्ही के दो रूप है।

(९५८ से १००५)

प्रश्न २१५—सम्यग्दृष्टि का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—(१) जो ज्ञान चेतना का स्वामी हो (२) ऐन्द्रिय सुख तथा ऐन्द्रिय ज्ञान मे जिसकी हेय बुद्धि हो (३) अतीन्द्रिय सुख तथा अतीन्द्रियज्ञान मे जिसकी उपादेय बुद्धि हो (४) जिसे अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष हो गया हो (५) वस्तु स्वरूप को विशेषतया नौ तत्त्वो को और उनमे अन्वय रूप से पाये जाने वाले सामान्य का जानने वाला हो (६) भेदविज्ञान को प्राप्त हो (७) किसी कर्म मे खास कर सातावेदनीय मे तथा कर्मों के कार्य मे जिसकी उपादेय बुद्धि न हो (८) जिसके वीर्य का झुकाव हर समय अपनी ओर हो (९) पर के प्रति अत्यन्त उपेक्षा-रूप वैराग्य हो (१०) कर्म चेतना और कर्मफल चेतना का ज्ञाता द्रष्टा हो (११) सामान्य का सवेदन करने वाला हो (१२) विषय सुख मे और पर मे अत्यन्त अरुचि भाव हो (१३) केवल (मात्र) ज्ञानमय भावो को उत्पन्न करने वाला हो। ये मोटे-मोटे लक्षण हैं। वास्तव मे तो 'एक ज्ञान चेतना' ही सम्यग्दृष्टि का लक्षण है। उसके पेट मे यह सब कुछ आ जाता है। हमने अपने परिणामो से मिला कर लिखा है। सन्त जन अपने परिणामो से मिला कर देखे (९९९, १०००, ११३९, ११४२)।

प्रश्न २१६—मिथ्यादृष्टि का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(१) जो कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना का स्वामी हो (२) ऐन्द्रिय सुख और ऐन्द्रिय ज्ञान मे जिसकी उपादेय बुद्धि हो (३) वस्तु स्वरूप से अज्ञात हो (४) सातावेदनीय के कार्य मे जिसकी अत्यन्त रुचि हो (५) हर समय पर के ग्रहण का अत्यन्त अभिलाषी हो (६) अपने को पर्याय जितना ही मानकर उसी का सवेदन करने वाला हो (७) केवल अज्ञानमय भावो का उत्पादक हो। ये मोटे-मोटे लक्षण है। वास्तव मे तो 'एक अज्ञान चेतना' ही मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। उसके पेट मे यह सब कुछ आ जाता है।

प्रश्न २१७—चेतना के पर्यायवाची नाम बताओ ?

उत्तर—(क) चेतना, उपलब्धि, प्राप्ति, सवेदन, सचेतन, अनुभवन, अनुभूति अथवा आत्मोपलब्धि इन शब्दो का एक अर्थ। चाहे वह सवेदन ज्ञानरूप हो या अज्ञानरूप। ये शब्द सामान्य रूप से दोनो मे प्रयोग होते हैं (ख) शुद्ध चेतना ज्ञानचेतना, शुद्धोपलब्धि शुद्धात्मोपलब्धि ये पर्यायवाची है। ज्ञानी के ही होती है। (ग) अशुद्धचेतना, अज्ञानचेतना, कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना, अशुद्धोपलब्धि ये पर्यायवाची हैं। अज्ञानी के ही होती है।

प्रश्न २१८—ज्ञान चेतना का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—ज्ञान चेतना मे शुद्ध आत्मा अर्थात् ज्ञानमात्र का स्वाद आता है। यह ज्ञान की सम्यग्ज्ञान रूप अवस्थान्तर है। यह शुद्ध ही होती है। इससे कर्मबन्ध नही होता। (६६४, ६६५)

प्रश्न २१९—अज्ञानचेतना का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—अपने को सर्वथा रागद्वेष या सुख दु ख रूप अनुभव करना अज्ञान चेतना है, जो आत्मा स्वभाव से ज्ञायक था वह स्वय वेदक बन कर अज्ञानभाव का सवेदन करता है। इसमे ज्ञान का रचमात्र सवेदन नही है। यह सब जगत के पायी जाती है। अशुद्ध ही होती है और इससे बन्ध ही होता है। (६७६)

प्रश्न २२०—कर्मचेतना का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—अपने को सर्वथा राग द्वेष मोह रूप ही अनुभव करना, ज्ञायक का रचमात्र अनुभव न होना कर्मचेतना है। जीव भेद विज्ञान के अभाव के कारण आत्मा के ज्ञायक स्वरूप को भूलकर सर्वथा पर पदार्थ को अपने रूप अथवा अपने को परपदार्थ रूप समझता है तो मोहभाव की उत्पत्ति होती है। जिसको इष्ट मानता है उस के प्रति राग की उत्पत्ति होती है, जिसको अनिष्ट मानता है, उसके प्रति द्वेष की उत्पत्ति होती है। फिर सर्वथा राग द्वेष मोह का अनुभव करने लगता है। उसे आत्मा, मात्र राग द्वेष मोह जितना ही अनुभव मे आता है। (९७५)

प्रश्न २२१—कर्मफलचेतना का स्वरूप बताओ ?

उत्तर—अपने को सर्वथा सुख-दुःख रूप ही अनुभव करना। ज्ञायक का रचमात्र अनुभव न होना कर्मफल चेतना है। जीव भेदविज्ञान के अभाव के कारण आत्मा के ज्ञायक स्वरूप को भूलकर इष्ट विषयो मे सुख की कल्पना करता है तथा अनिष्ट विषयो मे दुःख भाव से सर्वथा तन्मय होकर उसी को सवेदन करता है। उसे आत्मा, मात्र सुख-दुःख जितना ही अनुभव मे आता है। (९७४)

प्रश्न २२२—ज्ञानी को साधारण क्रियाओ से बध क्यो नहीं होता ?

उत्तर—क्योकि वह कर्मचेतना और कर्मफल चेतना का स्वामी नही है। ज्ञानचेतना का स्वामी है। ज्ञानचेतना के स्वामियो को कर्म चेतना और कर्मफलचेतना से बन्ध नही होता अन्यथा मोक्ष ही न हो। (९९७ से १०००)

प्रश्न २२३—ज्ञानी; अज्ञानी की परिभाषा क्या है ?

उत्तर—जो अपने को सामान्यरूप सवेदन करे वह ज्ञानी तथा जो अपने को विशेष रूप सवेदन करे वह अज्ञानी। बाकी परलक्षी ज्ञान के

क्षयोपशम या वहिरङ्ग चारित्र से इसका कुछ सम्वन्ध नही है। जगत् मे एक सम्यग्दृष्टि ही ज्ञानी है। शेष सब जगत् अज्ञानी है।

(९८९, ९९०, ९९१)

प्रश्न २२४—आत्मा का सामान्य स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(१) अवद्धस्पृष्ट (२) अनन्य (३) नियत (४) अविशेष (५) असयुक्त (६) शुद्ध (७) ज्ञान की एक मूर्ति (८) सिद्ध समान् आठ गुण सहित (९) मैलरहित शुद्ध स्फटिकवत् (१०) परिगहरहित आकाशवत् (११) इन्द्रियो से उपेक्षित अनन्त ज्ञान दर्शन वीर्य की मूर्ति (१२) अनन्त अतीन्द्रिय सुखरूप (१३) अनन्त स्वाभाविक गुणो से अन्वित (युक्त) आत्मा का सामान्य स्वरूप है।

(१००१ से १००५)

प्रश्न २२५—अवद्धस्पृष्टादि का कुछ स्वरूप वताओ ?

उत्तर—(१) आत्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म से वद्ध नही है तथा नोकर्म से छुआ नही है इसको अवद्धस्पृष्ट कहते है (२) आत्मा मनुष्य तिर्यञ्चादि नाना विभाव व्यञ्जन पर्यायरूप नही है यह अनन्य भाव है (३) आत्मा मे ज्ञानादि गुणो के स्वाभाविक अविभाग प्रतिच्छेद की हानिवृद्धि नही है यह नियत भाव है (४) आत्मा मे गुणभेद नही है यह अविशेष भाव है (५) आत्मा राग से सयुक्त नही है यह असयुक्त भाव है। (६) आत्मा नौ पदार्थ रूप नही है यह शुद्धभाव है।

(१००१ से १००५)

प्रश्न २२६—इन्द्रियसुख का सैद्धान्तिक स्वरूप बताओ ?

उत्तर—(१) जो पराधीन है क्योकि कर्म, इन्द्रिय और विषय के अधीन है (२) बाधा सहित है क्योकि आकुलतामय है (३) व्यच्छिन्न है क्योकि असाता के उदय से टूट जाता है (४) बन्ध का कारण है क्योकि राग का अविनाभावी है (५) अस्थिर है क्योकि हानि-वृद्धि सहित है (६) दुःखरूप है क्योकि तृष्णा का बीज है। अतः सम्यग्दृष्टि को इसमे रुचि नही होती।

(१०१३)

प्रश्न २२७—इन्द्रियज्ञान में सबसे बड़ा दोष क्या है ?

उत्तर—इन्द्रिय ज्ञान मे सबसे बडा दोष यह है कि वह जिस पदार्थ को जानता है उसमे मोह राग द्वेष की कल्पना करके आकुलित हो जाता है। और आकुलता ही आत्मा के लिए महान् दु ख है। इसको प्रत्यर्थपरिणमन कहते हैं। (१०४६)

प्रश्न २२८—अबुद्धिपूर्वक दुःख किसे कहते हैं ?

उत्तर—चारघाति कर्मों के निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध से जो जीव के अनन्त चतुष्ट का घात हो रहा है यह अबुद्धिपूर्वक महान् दु ख है। अनन्त चतुष्ट रूप स्वभाव का अभाव ही इसकी सिद्धि मे कारण है। (१०७६ से ११११२)

प्रश्न २२९—अतीन्द्रिय ज्ञान तथा सुख की सिद्धि करो ?

उत्तर—यह आत्मा के दो अनुजीवी गुण हैं। अनादि से घातिकर्मों के निमित्त से इनका विभाव रूप परिणमन हो रहा है। उनका अभाव होते ही इनकी स्वभाव पर्याय प्रकट हो जाती है। उसी का नाम अतीन्द्रियज्ञान तथा अतीन्द्रिय सुख है। इसी को अनन्त-चतुष्टय भी कहते हैं क्योंकि अनन्तवीर्य तथा अनन्तदर्शन इसके अविनाभावी हैं। यही वास्तव मे आत्मा का पूर्ण स्वरूप है जिस पर उपादेय रूप से सम्यग्दृष्टि को दृष्टि जमी हुई है। (१११३ से ११३८ तक)

पाँचवें भाग का परिशिष्ट

सम्यक्त्व के लक्षणों का तुलनात्मक अध्ययम

श्रीसमयसार जी मे कहा है

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबधो मोक्खो य सम्मत्तं ॥१३॥

अर्थ—भूतार्थ नय से जाने हुवे जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, सवर, निर्जरा, बध और मोक्ष ये नौ तत्त्व सम्यक्त्व है। भाव

यह है कि नौ तत्व मे अन्वय रूप से पाये जाने वाले सामान्य का अनुभव सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन का स्वात्मानुभूति रूप अनात्मभूत लक्षण है, जिसका हमारे नायक श्री पचाध्यायीकार ने सूत्र न० ११५५ से ११७७ तक २३ सूत्रो मे विवेचन किया है।

श्रीनियमसार जी मे कहा है

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं ॥५॥
विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ॥५१॥
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ॥५२॥

अर्थ—आप्त, आगम और तत्त्वो की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है ॥५॥ विपरीत अभिनिवेश (अभिप्राय-आग्रह) रहित श्रद्धान वह ही सम्यक्त्व है ॥५१॥ चलता, मलिनता और अगाढता रहित श्रद्धान वह ही सम्यक्त्व है ॥५२॥ इसमे व्यवहार सम्यग्दर्शन का वर्णन है जो इस ग्रन्थ मे सूत्र ११७८ से ११८१ तक १४ सूत्रो मे है।

श्री पचास्तिकाय पन्ना १६६ श्री जयसेन टीका मे कहा है—

एवं जिणपण्णत्तें सद्दहमाणस्य भावदो भावे।
पुरिसस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदिजुत्तें ॥१॥
एवं जिनप्रज्ञप्तान् श्रद्दधतः भावतः भावान्।
पुरुषस्य आभिनिबोधे दर्शनशब्दः भवति युक्तः ॥

अर्थ—इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गये पदार्थों को भाव पूर्वक श्रद्धान करने वाले पुरुष के मति (श्रुत) ज्ञान मे दर्शनशब्द प्रयुक्त होता है। इस लक्षण मे निरूपण तो श्रद्धा गुण की असली सम्यग्दर्शन पर्याय का है किन्तु वह नीची भूमि वाले सम्यग्दृष्टि के ज्ञान को सहचर करके निरूपण किया गया है क्योंकि लेखक को आगे सम्यग्दृष्टि के ज्ञान के ज्ञेयभूत नौ पदार्थों का वर्णन करना था, और उनकी भूमिका रूप यह सूत्र रचा गया है। इसका निरूपण हमारे नायक ने सूत्र न० ११७८ से ११९१ तक १४ सूत्रो मे किया है।

श्री प्रवचनसार जी सूत्र २४२ की टीका मे कहा है

"ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण"

अर्थ—ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथा प्रकार (जैसी है वैसी ही, यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है वह सम्यग्दर्शन पर्याय है ··· । यहा सम्यग्दर्शन रूप असली पर्याय का निरूपण है। स्व पर श्रद्धान लक्षण से उसे निरूपण किया है। यह लक्षण हमारे नायक ने सूत्र ११७८ से ११९१ मे निरूपण किया है।

श्री दर्शनप्राभृत मे कहा है

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥२०॥

अर्थ—जीव आदि कहे जे पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो तो व्यवहार तै सम्यक्त्व जिन भगवान नै कह्या है, बहुरि निश्चयतै अपना आत्मा ही का श्रद्धान सो सम्यक्त्व है। वहा व्यवहार सम्यक्त्व तो विकल्प रूप है जो निश्चय सम्यग्दर्शन का अविनाभावी चारित्र गुण का विकल्प है। इसका निरूपण हमारे नायक ने सूत्र ११७८ से ११९१ तक किया है। नीचे की पक्ति मे सम्यक्त्व का स्वात्मानुभूति लक्षण है जिसको निश्चय सम्यक्त्व कहा है इसका निरूपण यहाँ सूत्र ११५५ से ११७७ तक २३ सूत्रो मे किया है।

श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय जी मे कहा है

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताऽभिनिवेशविविक्तमात्मरूप तत् ॥२२॥

अर्थ—जीव अजीव आदि नो तत्त्वो का श्रद्धान सदा करना चाहिये। वह श्रद्धान विपरीत अभिप्राय से रहित हैं और वह 'आतमरूप' है। आत्मरूप राग को नही कहते। शुद्ध भाव को ही कहते हैं। यह लक्षण श्रद्धा गुण की असली सम्यग्दर्शन पर्याय का है। आरोपित नही

है। जिसका निरूपण हमारे नायक ने सूत्र ११४३ से ११५३ तक ११ सूत्रो मे किया है।

श्रीद्रव्यसग्रह जी मे कहा है

जीवादिसद्दहण सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्म खु होदि सदि जह्मि ॥४१॥

अर्थ—जीवादि नौ तत्वो का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है और वह आत्मा का रूप है। जिसके होने पर निश्चय करके ज्ञान विपरीताभिनिवेश (मिथ्या अभिप्राय) से रहित सम्यक् हो जाता है। यह लक्षण ज्यो का त्यो ऊपर के श्री पुरुपार्थसिद्धयुपाय से मिलता है। आत्मरूप लिखकर इसमे आरोपित लक्षणो का तथा राग का निषेध कर दिया है और श्रद्धा गुण की असली स्वभाव पर्याय रूप सम्यग्दर्शन का द्योतक है। उसके होने पर ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है यह उसका लाभ है। इसका निरूपण इस ग्रन्थ मे सूत्र ११४३ से ११५३ तक है।

श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचार जी में कहा है

श्रद्धान परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥४॥

अर्थ—सच्चे देव, आगम, और गुरुवो का तीन मूढता रहित, आठ मद रहित तथा आठ अग सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह लक्षण उपर्युक्त श्री नियमसार के लक्षण से लिया गया है। है तो यह असली सम्यग्दर्शन का लक्षण, पर सम्यग्दर्शन के अविनाभावी चारित्र गुण के बुद्धिपूर्वक विकल्प पर आरोप करके निरूपण किया है क्योकि उन्हें चरणानुयोग का ग्रन्थ बनाना इष्ट था। इसका निरूपण हमारे नायक ने सूत्र ११७८ से १५८५ तक किया है।

श्रीमोक्षशास्त्र जी मे कहा है

"तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन"—सात तत्वो का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। है तो यह भी असली सम्यग्दर्शन का लक्षण पर अविनाभावी ज्ञान

की पर्याय का सहचर करके निरूपण किया है क्योकि उन्होने सात तत्त्वो के ज्ञान कराने के उद्देश्य से ग्रन्थ लिखा है। शेप सब ग्रन्थो के लक्षण उपर्युक्त सब लक्षणो के पेट मे ही आ जाते हैं तथा उपर्युक्त के समझ लेने से पाठक अन्य पुस्तको के लक्षणो को स्वय समझ जाता है।

निश्चय व्यवहार सम्यग्दर्शन

यह विपय समझना परमावश्यक है और हम उस पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं। यह विषय वास्तविक रूप मे उसी को समझ आयेगा जिसको द्रव्य गुण पर्याय का अच्छा ज्ञान होगा। इस विषय मे जितनी भी भूल जगत् मे चलती है वह सब द्रव्य गुण पर्याय की अज्ञानता के कारण चलती है। अस्तु (१) आत्मा मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य इत्यादि अनन्त गुणो की तरह एक सम्यक्त्व नाम गुण है। इसको श्रद्धा गुण भी कहते हैं। इसकी केवल छ पर्यायें होती हैं (१) मिथ्यात्व (२) सासादन (३) मिश्र अर्थात् सम्यक् मिथ्यात्व (४) औपशमिक सम्यग्दर्शन (५) क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन (६) क्षायिक सम्यग्दर्शन। सातवी कोई पर्याय इस गुण मे नही होती। व्यवहार सम्यग्दशन, निश्चयसम्यग्दर्शन नाम का कोई पर्याय भेद इस गुण मे है ही नहो। यह सिद्धान्त पद्धति है। केवल ज्ञान के आधार पर इसका निरूपण होता है। इस पद्धति मे एक गुण की पर्याय का आरोप दूसरे गुण पर नही होता किन्तु प्रत्येक गुण का भिन्न-भिन्न विचार किया जाता है। इस पद्धति मे क्षायिक सम्यग्दर्शन को वीतराग सम्यग्दर्शन भी कहते हैं और औपशमिक तथा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन को सराग सम्यग्दर्शन भी कहते हैं। इस प्रकार सराग और वीतराग सम्यग्दर्शन दोनो श्रद्धा गुण को वास्तविक पर्याय बन जाती हैं। यह पद्धति श्रीराजवार्तिक जी मे है तथा श्री अमितगतिश्रावकाचार मे यह श्लोक है :—

वीतरागं सरागं च सम्यक्त्वं कथितं द्विधा।
विरागं क्षायिकं तत्र सरागमपरं द्वयम् ॥६५॥

अर्थ—वीतराग पर सराग ऐसे सम्यक्त्वदोय प्रकार कह्या है। तथा क्षायिक सम्यक्त्व वीतराग है और क्षयोपशम, उपशम ए दोय सम्यक्त्व सराग हैं।

(२) अध्यात्म मे पहली तीन पर्यायो को सामान्यतया मिथ्यादर्शन कहा जाता है और पिछली तीन पर्यायो को सामान्यतया सम्यग्दर्शन कहा जाता है। अथवा यूं भी कह सकते हैं कि सासादन और सम्यक् मिथ्यात्व का अध्यात्म मे निरूपण नही होता केवल मिथ्यात्व पर्याय का निरूपण होता है जो श्रद्धा गुण की विभाव या विपरीत पर्याय कही जाती है क्योंकि अध्यात्म का निरूपण ऐसे ढग से होता है जो हम लोगो की पकड मे आ सके। उसी प्रकार औपशमिक सम्यक्त्य, क्षायो-पशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व, ये तत्त्वार्थ श्रद्धान या आत्म श्रद्धान इसका लक्षण है। इस पर्याय मे निश्चय व्यवहार का कोई भेद नही है। गुणभेद करके केवल श्रद्धागुण की अपेक्षा यदि जानना चाहते हो तो बस सम्यग्दर्शन के बारे मे इतनी ही बात है।

(३) अब अभेद की दृष्टि से कुछ निरूपण करते है। सम्यग्दृष्टि आत्मा मे सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय चौथे मे ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है। उस ज्ञान गुण का परिणमन उपयोग रूप भी है। यह उप-योग किसी समय स्व को जानता है तो किसी समय पर को जानता है। जिस समय चौथे मे ही उस सम्यग्दृष्टि आत्मा का ज्ञानोपयोग सब पर ज्ञेयो से हटकर केवल आत्मसचेतन करने लगता है उस समय उसको उपयोग रूप स्वात्मानुभूति कहते हैं। उस समय बुद्धिपूर्वक विकल्प (राग) नही होता। आत्मा का उपयोग केवल स्व सन्मुख होकर अपने अतीन्द्रिय सुख का भोग करता है। इस ज्ञान की स्वात्मानुभूति को अखण्ड आत्मा होने के कारण 'सम्यग्दर्शन' भी कह देते हैं पर इतना विवेक रखना चाहिये कि यह मति श्रुत ज्ञान की पर्याय है। श्रद्धा गुण

की पर्याय नही है। और इसको सम्यग्दर्शन कहना सम्यग्दर्शन का अनात्मभूत लक्षण है आत्मभूत लक्षण नही है। क्योकि इस स्वात्मानुभूति मे बुद्धिपूर्वक विकल्प (राग) नही होता अत इसको निश्चय सम्यग्दर्शन भी कहा जाता है। सम्यग्दर्शन के साथ निश्चय विशेषण लगाने से बुद्धिपूर्वक राग का निषेध हो जाता है और वह स्वात्मानुभूति दशा का द्योतक हो जाता है। श्रीसमयसार जी मे इस पद्धति का निरूपण है। वह दशा चौथे गुणस्थान मे भी होती है, पाचवें छठे मे भी होती है तथा सातवें से सिद्ध तक तो है ही स्वात्मानुभूति रूप दशा (प्रमाण श्री आत्मावलोकन पन्ना १६५-१६६)।

(४) जिस समय सम्यग्दृष्टि का ज्ञान स्वात्मानुभूति से छूट कर पर मे जाता है और जीवादि नौ पदार्थों को भेदरूप जानता है। उस समय उसके ज्ञान मे बुद्धिपूर्वक राग भी आ जाता है। अत उस समय बुद्धिपूर्वक ज्ञान की अपेक्षा तथा नौ तत्त्वो को भेद सहित और राग-सहित जानने के कारण उस ज्ञान के परिणमन को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। इसमे सम्यग्दर्शन शब्द तो यह बताता है कि ज्ञान श्रद्धा गुण की सम्यक्त्व पर्याय को लिये हुवे है। और व्यवहार शब्द यह बतलाता है कि उस ज्ञान मे बुद्धिपूर्वक राग भी है। यह जो नौ पदार्थों के जानने रूप ज्ञान की पर्याय को व्यवहार सम्यक्त्व कहा जाता है वहाँ यह विवेक रहना चाहिये कि यह सम्यक्त्व का सहचर लक्षण है और वस्तुस्थिति उपर्युक्त अनुसार है यह भी सम्यक्त्व निरूपण की पद्धति है। तत्त्वार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन इसी पद्धति से कहा जाता है।

(५) सम्यग्दृष्टि आत्मा मे सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय चारित्र भी सम्यक्चारित्र हो जाता है। जिस समय चौथे से ही सम्यग्दृष्टि आत्मा उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति करता है उस समय इस गुण मे अबुद्धिपूर्वक तो राग रहता है पर बुद्धिपूर्वक राग नही रहता। अतः स्वात्मानुभूति के समय जब सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व को निश्चय सम्यक्त्व कहा जाता है तो उसमे इस गुण का वीतराग अंश भी समा-

विष्ट है। जिस समय स्वात्मानुभूति से छूटकर सम्यग्दृष्टि आत्मा पर मे प्रवृत्त होता है जैसे पूजा, पाठ, शास्त्र स्वाध्याय प्रवचन इत्यादि मे। उस समय इस गुण मे वुद्धिपूर्वक राग का परिणमन रहता है। इस वुद्धिपूर्वक विकल्प को व्यवहार सम्यक्त्व या व्यवहार ज्ञान कह देते हैं। पर कहते है उसी जीव मे, जिसमे दर्शनमोह का उपशमादि होकर वास्तविक सम्यग्दर्शन साथ हो। मिथ्यादृष्टि के श्रद्धान या ज्ञान या चारित्र को निश्चय या व्यवहार कोई भी सम्यक्त्व नही कहते। यह बात बराबर ध्यान मे रहनी चाहिये। जहाँ कही मिथ्यादृष्टि के व्यवहार श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र कह भी दिया हो तो समझ लेना चाहिये कि वहाँ श्रद्धाभास, ज्ञानाभास तथा चारित्राभास को व्यवहार श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र का नाम दिया है और सम्यक् शव्द तो मिथ्यादृष्टि के लिये प्रयोग होता ही नही है।

अव इस कथन को उपर्युक्त आगम प्रमाण से मिला कर दिखाते है। श्री समयसार जी मे उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति को निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है जो मति श्रुत ज्ञान की पर्याय है पर क्योकि वह सम्यग्दृष्टि को ही होती है अत वह कथन निर्दोष है। श्री पचास्तिकाय मे सम्यग्दर्शन के सहभावी ज्ञान को सम्यग्दर्शन कहा है। श्री दर्शनपाहुड मे सम्यक्त्व के अविनाभावी चारित्रगुण के बुद्धिपूर्वक विकल्प सहित ज्ञान के परिणमन को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति को निश्चय सम्यक्त्व कहा है। श्रीप्रवचनसार मे सम्यक्त्व के अविनाभावी सामान्यज्ञान को सम्यग्दर्शन कहा है चाहे वह ज्ञान लब्धिरूप हो या उपयोग रूप हो। श्री पुरुषार्थसिद्धि तथा श्री द्रव्यसग्रह मे श्रद्धागुण की सीधी सम्यग्दर्शन पर्याय का निरूपण है उसमे निश्चय व्यवहार का भेद नही है। श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचार मे सम्यक्त्व की अविनाभावी चारित्र गुण के देव शास्त्र गुरु के विकल्पात्मक परिणमन को सम्यग्दर्शन कहा है। श्री मोक्षशास्त्र मे सम्यक्त्व के अविनाभावी ज्ञान को सम्यग्दर्शन कहा है श्री सर्वार्थसिद्धि मे प्रशम,

सवेग, अनुकम्पा सम्यक्त्व के अविनाभावी चारित्र गुण का विकल्पात्मक परिणमन है। श्री आत्मानुशान मे जो सम्यक्त्व के मूल सम्यक्त्व आदि दस भेद किये है वे अनेक निमित्तो की अपेक्षा सम्यक्त्व से अविनाभावी है। श्रीप्रवचनसार सूत्र २४२ की टीका मे एक और ही प्रकार का व्यवहार निश्चय मिलता है। वहाँ अप्रमत्त दशा की बात है। अप्रमत्त दशा मे रत्नत्रय मे वुद्धिपूर्वक विकल्प का तो अभाव हो जाता है और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का भिन्न-भिन्न वेदन न होकर पानकवत् एकाग्र वेदन होता है। सो आचार्य कहते है कि गुण भेद करके भिन्न-भिन्न गुण की पर्याय से यदि मोक्षमार्ग कहो तो वही व्यवहार मोक्षमार्ग है और यदि गुण भेद न करके अभेद से कहो तो वही निश्चय मोक्षमार्ग है। यहाँ राग को व्यवहार और वीतरागता को निश्चय नही किन्तु पर्याय भेद को व्यवहार और पर्याय अभेद को निश्चय कहा है। श्री द्रव्यसग्रह मे वहुत सुन्दर विवेचन है। उन्होने सम्यग्दर्शन जो श्रद्धा गुण की असली पर्याय है उसे तो निश्चय सम्यग्दर्शन लिखा है। ज्ञान की पर्याय स्वपर के जानने रूप है। उसमे निश्चय व्यवहार का भेद नही किया। चारित्र गुण का परिणमन क्योकि वीतरागरूप भी होता है और सरागरूप भी। अत पर्याय के टुकडे करके जितने अश मे वह चारित्रगुण शुभ विकल्प रूप परिणमन कर रहा है उतने अश मे तो उसको व्यवहार चारित्र कहा है ज्ञानी का व्यवहार है। जितने अश मे चारित्र वीतराग रूप परिणमन कर रहा है उसको निश्चय सम्यक् चारित्र कहा है। इन्होने पूरे द्रव्य गुण पर्याय के हिसाब से लिखा है सब झगडा ही खत्म कर दिया है। यह विवेचन शुद्ध है अर्थात् भिन्न-भिन्न गुण भेद की पर्याय के अनुसार है। आरोप का काम नही है। श्री नियमसार सूत्र ५ तथा ५१-५२ की प्रथम पक्तियो मे व्यवहार सम्यक्त्व का निरूपण है। सूत्र ५१-५२ की अन्तिम पक्तियो मे सम्यग्ज्ञान का तथा ५४-५५ की प्रथम पक्ति मे निश्चय सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्ज्ञान का निरूपण है। सूत्र ५६ से ७६ तक ज्ञानी के विकल्परूप

शुभ व्यवहार चारित्र का विवेचन है और ७७ से १५८ तक वीतराग अश रूप निश्चय चारित्र का वर्णन है। श्रीद्रव्यसग्रह मे सूत्र ४१ मे शुद्ध सम्यग्दर्शन का, सूत्र ४२ मे शुद्ध सम्यग्ज्ञान का, सूत्र ४५ मे व्यवहार चारित्र का—इसमे चारित्र का सम्यक् विशेषण नही है यह खास देखने की वात है यद्यपि ज्ञानी का विकल्प है। सूत्र ४६ मे वीतराग चारित्र का, अज्ञानी को व्यवहार भी नही कहा। हमे यह पद्धति वहुत पसन्द आई है। श्री पुरुपार्थसिद्धयुपाय मे तीनो शुद्ध भाव रूप लिए हैं। राग को अगीकार नही किया वल्कि राग का तो निषेध किया है। श्री तत्त्वार्थसार मे ज्ञानी मुनि की विकल्पात्मक प्रवृत्ति को व्यवहार सज्ञा दी है और निर्विकल्प मुनि को निश्चय सज्ञा दी है। श्री पचास्तिकाय मे भी यही वात है। श्रीसमयसार मे शुद्ध अश को निश्चय रत्नत्रय और राग अग को व्यवहार कहा है पर उस राग के साथ सम्यक् विशेपण नही है। प० टोडरमल जी के अन्तिम नवमे अध्याय मे शुद्ध असली सम्यक्त्व है उसको तो निश्चय सम्यक्त्व कहा है और जितने अश मे राग है अर्थात् ज्ञान के साथ उस जाति का बुद्धिपूर्वक विकल्प है उसको व्यवहार सम्यक्त्व कहा है। इस प्रकार दोनो प्रकार के सम्यक्त्व को एक समय मे कहा है तथा उससे आगे वे लिखते हैं कि सम्यग्दृष्टि के राग पर ही व्यवहार सम्यक्त्व का आरोप आता है। मिथ्यादृष्टि के राग पर नही अर्थात् मिथ्यादृष्टि के राग को व्यवहार सम्यक्त्व नही कहते। सम्यक्त्व की उत्पत्ति से पहले जो विकल्पात्मक नौ पदार्थ की श्रद्धा है वह मिथ्या श्रद्धा है उसको व्यवहार सम्यक्त्व नही कहते। आगे चलकर लिखते हैं कि जिस जीव को नियम से सम्यक्त्व होने वाला है और वह करण लब्धि मे स्थित है उसकी विकल्पात्मक श्रद्धा को तो व्यवहार सम्यक्त्व कह सकते हैं क्योंकि वहाँ नियम से निश्चय सम्यक्त्व उत्पन्न होने वाला है। श्रीजयसेन आचार्य तथा श्रीब्रह्मदेव सूरि आदि जिन आचार्यों ने एक समय मे व्यवहार निश्चय रूप दोनो प्रकार का मोक्षमार्ग माना है उन्होने तो शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्र पर्यायो को

तो निश्चय कहा है और राग को व्यवहार कहा है और जिन्होने भिन्न-भिन्न समय की मुख्यता से कहा है उन्होंने सम्यग्दृष्टि मुनि की सविकल्प अवस्था को व्यवहार रत्नत्रय और निर्विकल्प अवस्था को निश्चय रत्नत्रय कहा है (वृहद्‌द्रव्यसग्रह गा० ३९ की टीका इन दोनो पद्धतियो का स्पष्ट प्रमाण है) जिन्होने एक समय मे माना है उन्होने राग पर कारण का आरोप कर दिया है और निश्चय तो है ही कार्य रूप जिन्होने ज्ञान की सविकल्प (व्यवहार रत्नत्रय) अवस्था को कारण और निर्विकल्प अवस्था को कार्य माना है उनका आशय ऐसा है कि जो भेदसहित तत्त्वो का ज्ञाता होगा वही तो विकल्प तोडकर निर्विकल्प दशा रूप कार्य अवस्था को प्राप्त करेगा। बाकी यह सब कहने का कार्य कारण है वास्तव मे तो सामान्य आत्मा का आश्रय ही तीनो शुद्ध भावो का वास्तविक कारण है क्योंकि सामान्य मे से ही तो रत्नत्रय प्रगट होता है और व्यवहार (राग का कारण परवस्तु का आश्रय है क्योंकि पर मे अटकने से ही तो राग की उत्पत्ति होती है। यह वास्तविक कारण नही है। राग और शुद्धभाव का क्या कार्यकारण? एक बन्धरूप है एक मोक्षरूप है? ये तो दोनो विरोधी है। विपरीत कार्य के करने वाले है।

कोई भी सम्यक्त्व कहो उसमे श्रद्धा गुण की स्वभाव पर्याय का सहचर होना अवश्यम्भावी है। वास्तव मे सम्यग्दर्शन कई प्रकार का नही है किन्तु उसका निरूपण कई प्रकार का है। सम्यग्दर्शन तो श्रद्धा गुण को स्वभाव पर्याय होने से एक ही प्रकार का है। उसका कथन कही द्रव्यकर्म रूप निमित्त की अपेक्षा से औपशमिक आदि तीन प्रकार का है। कही बुद्धिपूर्वक राग के असद्‌भाव और सद्‌भाव के कारण निश्चय व्यवहार दो प्रकार का है। कही श्रद्धागुण की अपेक्षा कथन है। कही ज्ञान गुण की अपेक्षा कथन कही चारित्र की अपेक्षा कथन है। सिद्धो के आठ गुणो मे श्रद्धा और चारित्र दोनो की इकट्ठी एक शुद्ध पर्याय का नाम सम्यक्त्व है वहाँ ज्ञान को भिन्न कर दिया है और चारित्र को सम्यक्त्व मे समाविष्ट कर दिया है। कहाँ तक कहे। कहने

वाले का अभिप्राय क्या है तथा प्रकरण क्या है यह जानने की आवश्यकता है तथा द्रव्य गुण पर्याय का ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिए। फिर भूल का अवकाश नही है। एक वात और खास यह है कि विना असली सम्यग्दर्शन रूप पर्याय प्रगट हुवे भी मिथ्यादृष्टि ज' शास्त्र के वल से तत्त्वार्थ की विकल्पात्मक श्रद्धा करता है ग्यारह अग तक का विकल्पात्मक ज्ञान करता है तथा छह कार्य के जीवो की रक्षा करता है उसकी आगम मे व्यवहार कहने की पद्धति है जैसे श्री प्रवचनसार सूत्र २३९ के शीर्षक मे मिथ्यादृष्टि के तीनो कहे हैं, श्री समयसार जी सूत्र २७६ मे मिथ्यादृष्टि के तीनो आचारादि शास्त्र ज्ञान को ज्ञान, जीवादि के श्रद्धान को श्रद्धान और षट्काय के जीवो को रक्षा को चारित्र कह कर झट २७७ मे उसका निषेध कर दिया है कि रत्नत्रय तो आत्माश्रित शुद्धभाव है यह राग रत्नत्रय नही हो सकता इसमे इतना विवेक रखने की आवश्यकता है कि मिथ्यादृष्टि के श्रद्धानादि को व्यवहार कहने पर भी वह व्यवहाराभास है। न व्यवहार रत्नत्रय है न निश्चय रत्नत्रय है।

श्री समयसार जी कलश न० ६ मे कहा है कि नौ तत्त्वो की विकल्पात्मक श्रद्धा को छोडकर एक आत्मानुभव हमे प्राप्त हो। वहाँ भी रागवाली नौ पदार्थों की श्रद्धा से आशय है। कुछ लोगो का ऐसा भी कहना है कि सम्यग्दर्शन से पूर्व होने वाली नौ पदार्थों की श्रद्धा को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं किन्तु सम्यक्त्व का उत्पत्ति से पहले व्यवहार रत्नत्रय होता ही नही। इसकी साक्षी श्री पचास्तिकाय सूत्र १०६ तथा १०७ की टीका मे नियम कर दिया है कि दर्शनमोह के अनुदय और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से पहले कोई मोक्षमार्ग नही। विना निश्चय के व्यवहार किस का। अब सार वात यह है कि वास्तव मे तो सम्यग्दर्शन श्रद्धा गुण की निर्विकल्प शुद्ध पर्याय है जो चौथे से सिद्ध तक एक रूप है। उसमे निश्चय व्यवहार है ही नही। वास्तव मे यह व्यवहार निश्चय की कल्पना से रहित सम्यक्त्व अद्वैत रूप है। इसको चर्चा

स्वय ग्रथकार छठी पुस्तक मे करेंगे। ये अनेकान्त आगम की तीक्ष्ण-धारा है। गुरुगम से चलानी सीखनी पड़ती है अन्यथा रागरूप शत्रु का गला कटने की वजाय जीव स्वय खड्डे मे पड जाता है। विशेष सद्-गुरु के परिचय से जानकारी करें। हम जैसे तुच्छ पामर क्या आगम का पार पा सकते हैं ? सद्गुरु देव की जय। ओ शान्ति।

श्री चिद्बिलास परमागम में कहा है

चौथे गुणस्थान वाला जीव श्री सर्वज्ञ कर कहे हुवे वस्तु स्वरूप को चिंतवन करता है, उसको सम्यक्त्व हो गया है। उस सम्यक्त्व के ६७ भेद हैं। वे कहते हैं।

प्रथम श्रद्धान के चार भेद हैं—

(१) **परमार्थ संस्तव**—सात तत्त्व हैं। उनका स्वरूपज्ञाता चिन्तवन करता है। चेतना लक्षण, दर्शनज्ञानरूप उपयोग-अनादि अनन्त शक्ति सहित अनन्त गुणो से शोभित मेरा स्वरूप है। अनादि से पर-सयोग के साथ मिथ्या है तो भी (हमारा) ज्ञान उपयोग हमारे स्वरूप मे ज्ञेयाकार होता है; पर ज्ञेयरूप नही होता है (हमारी) ज्ञान शक्ति अविकाररूप अखण्डित रहती है। ज्ञेयों को अवलम्बन करती है पर निश्चय से परज्ञेयो को छूती भी नही है। उपयोग परको देखता हुआ भी अनदेखता है, पराचरण करता हुआ भी अकर्त्ता है—ऐसे उपयोग के प्रतीति भाव को श्रद्धता है। अजीवादिक पदार्थों को हेय जानकर श्रद्धान करता है। बारम्वार भेदज्ञान द्वारा स्वरूप चिन्तवन करके स्व-रूप की श्रद्धा हुई, उसका नाम परमार्थ सस्तव कहा जाता है।

(२) **मुनित परमार्थ**—जिनागम-द्रव्यश्रुत द्वारा अर्थ को जान कर ज्ञान ज्योति का अनुभव हुआ, उसको मुनित परमार्थ कहते हैं।

(३) **यतिजन सेवा**—वीतराग स्वसवेदन द्वारा शुद्ध स्वरूप का रसास्वाद हुआ, उसमे प्रीति-भक्ति-सेवा, उसको यतिजन सेवा कहा जाता है।

(४) कुदृष्टिपरित्याग—परालम्बी वहिर्मुख मिथ्यादृष्टि जनो के त्याग को कुदृष्टि परित्याग कहा जाता है।

सम्यक्त्व के तीन चिन्ह कहते है—

(५) १. जिनागमशुश्रूषा—अनादि की मिथ्यादृष्टि को छोडकर, जिनागम मे कहे हुवे ज्ञानमय स्वरूप को पाया जाता है। उसमे उपकारी जिनागम है। उस जिनागम के प्रति प्रीति करें। ऐसी प्रीति करे कि जैसे दरिद्री को किसी ने चिन्तामणि दिखाया, तब उससे चिन्तामणि पाया। उस समय जैसे वह दरिद्री उस दिखाने वाले से प्रीति करता है, वैसी प्रतीति श्रीजिनसूत्र से (सम्यग्दृष्टि) करे, उसको जिनागम शुश्रूषा कहा जाता है।

(६) २. धर्मसाधन मे परमअनुराग—जिनधर्म रूप अनन्त गुण का बिचार वह धर्मसाधन है। उसमे परमअनुराग करे, धर्म साधन मे अनुराग दूसरा चिन्ह है।

(७) ३ जिनगुरु वैयावृत्य—जिस गुरु द्वारा ज्ञान-आनन्द पाया जाता है, इसलिये उनकी वैयावृत्य—सेवा—स्थिरता करे; वह जिन गुरुवैयावृत्य तीसरा चिन्ह कहा जाता है। ये तीनो चिन्ह अनुभवी के हैं।

अब दस विनय के भेद कहते है :—

(८ से १७) १ अरहत, २ सिद्ध, ३. आचार्य, ४ उपाध्याय, ५ साधु, ६ प्रतिमा, ७ श्रुत, ८ धर्म, ९ चार प्रकार का सघ, और १० सम्यक्त्व, इन दस को विनय करे; उन द्वारा स्वरूप की भावना उत्पन्न होती है।

अब तीन शुद्धि कहते हैं :—

(१८ से २०)—मन-वचन-काय शुद्ध करके स्वरूप भावे, और स्वरूप अनुभवी पुरुषो मे इन तीनो को लगावे; स्वरूप को निःशक निःसदेहपने ग्रहे।

अब पाच दोषो का त्याग कहते हैं (अतीचार)।

(२१) १ सर्वज्ञ वचन को नि सदेहपणे माने।

(२२) २ मिथ्यामत की अभिलाषा न करे, पर—द्वैत को न इच्छे।

(२३) ३ पवित्र स्वरूप को ग्रहे, पर ऊपर ग्लानि न करे।

(२४) ४ मिथ्यात्वी परग्राही द्वैत की मन द्वारा प्रशसा न करे। उसी प्रकार—

(२५) ५ वचन द्वारा (उस मिथ्यात्वी के) गुण न कहे।

अब सम्यक्त्व की प्रभावना के आठ भेद कहते है —

(२६) १. **पवयणी**—(अर्थात् सिद्धान्त का जानकर) सिद्धान्त में स्वरूप को उपादेय कहे।

(२७) २. **धर्मकथा**—जिनधर्म का कथन कहे।

(२८) ३. **वादी**—हट द्वारा द्वैत का आग्रह होय तो छुडावे और मिथ्यावाद मिटावे।

(२९) ४. **निमित्त**—स्वरूप पाने मे निमित्त जिनवाणी, गुरु तथा स्वधर्मी है और निजविचार है, निमित्त रूप से जो धर्मज्ञ है उसका हित कहे।

(३०) ५. **तपस्वी**—परद्वैत की इच्छा मिटाकर निज प्रताप प्रगट करे।

(३१) ६. **विद्यावान्**—विद्या द्वारा जिनमत का प्रभाव कहे, ज्ञान द्वारा स्वरूप का प्रभाव करे।

(३२) ७. **सिद्ध**—स्वरूपानन्दी का वचनद्वारा हित करे, सघ की स्थिरता करे, जिस द्वारा स्वरूप की प्राप्ति होती है उसको सिद्ध कहते है।

(३३) ८. **कवि**—कवि स्वरूप सम्बन्धी रचना रचे, परमार्थ को पावे, प्रभावना करे। इस आठ भेदो द्वारा जिनधर्म का—स्वरूप का—प्रभाव बढे, ऐसा करे ये अनुभवी के लक्षण है।

अब छह भावना कहते हैं :—(खास)

(३४) १. **मूलभावना**—सम्यक्त्व—स्वरूप—अनुभव वह सकल निज-धर्ममूल—शिवमूल है। जिनधर्मरूपी कल्पतरु का मूल सम्यक्त्व है ऐसा भावे (दसणमूलो धम्मो)।

(३५) २. **द्वारभावना**—धर्म नगर मे प्रवेश करने के लिये सम्यक्त्व द्वार है।

(३६) ३. **प्रतिष्ठाभावना**—व्रत—तप की, स्वरूप की प्रतिष्ठा सम्यक्त्व से है।

(३७) ४. **निधानभावना**—अनन्तसुख देनें का निधान सम्यक्त्व है।

(३८) ५. **आधारभावना**—निज गुणो का आधार सम्यक्त्व है।

(३९) ६. **भाजनभावना**—सब गुणो का भाजन सम्यक्त्व है। ये छह भावनाये स्वरूप रस प्रगट करती हैं।

अब सम्यक्त्व के पाच भूपण लिखते है —

(४०) १. **कौशल्यता**—परमात्मभक्ति, परपरिणाम और पाप-परित्याग (रूप) स्वरूप, भावसवर और शुद्धभावपोषक क्रिया को कौशल्यता कहते हैं।

(४१) २. **तीर्थसेवा**—अनुभवी वीतराग सत्पुरुषो के सग को तीर्थसेवा कहते है।

(४२) ३. **भक्ति**—जिनसाधु और स्वधर्मी की आदरता द्वारा उसकी महिमा बधाना—उसको भक्ति कहते हैं।

(४३) ४. **स्थिरता**—सम्यक्त्व भाव की दृढता वह स्थिरता है।

(४४) ५. **प्रभावना**—पूजा—प्रभाव करना वह प्रभावना है। ये भूपण, सम्यक्त्व के है।

सम्यक्त्व के पाच लक्षण हैं। वे क्या-क्या है उनको कहते हैं —

(४५) १. **उपशम**—राग द्वेष को मिटाकर स्वरूप की भेंट करना वह उपशम है।

(४६) २. **संवेग**—निजधर्म तथा जिनधर्म के प्रति राग—वह सवेग है।

(४७) ३. **निर्वेद**—वैराग्य भाव वह निर्वेद है।

(४८) ४. **अनुकम्पा**—स्वदया—परदया वह अनुकम्पा है।

(४९) ५. **आस्तिक्य**—स्वरूप की तथा जिनवचनो की प्रतीति वह आस्तिक्य है, ये लक्षण अनुभवी के हैं।

अब छह जैनसार लिखते हैं —

(५०) १ **वंदना**—परतीर्थ, परदेव और परचैत्य—उनकी वन्दना न करे।

(५१) २ **नमस्कार**—उनकी पूजा या नमस्कार न करे।

(५२) ३. **दान**—उनको दान न करे।

(५३) ४. **अनुप्रयाण**—(उनके लिये) अपने खान-पान से अधिक न करे।

(५४) ५. **आलाप**—प्रणति सहित सभापण, उसको आलाप कहते है, वह उनके साथ न करे।

(५५) ६. **सलाप**—गुण—दोष सम्बन्धी पूंछना कि वारबार भक्ति करना सलाप है वह उनकी न करे।

अब सम्यक्त्व के छ अभग कारण लिखते हैं। जो सम्यक्त्व के भग के कारण पाकर न डिगे उनको अभग कारण कहते हैं। उनके छ भेद हैं।

(५६ से ६१)—१ राजा, २ जनसमुदाय, ३. बलवान, ४ देव, ५ पितादिक बड़े जन और ६ माता। ये सम्यक्त्व के अभगपने मे छः भय हैं। उनको जानता रहे पर उनके भय से निजधर्म तथा जिनधर्म को न तजे।

अब सम्यक्त्व के छ स्थान लिखते हैं :—

(६२) १. **जीव है**—आत्मा अनुभव सिद्ध है। चेतना मे चित्तलीन करे, जीव अस्ति रूप है वह केवल ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है।

(६३) २. **नित्य है**—द्रव्यार्थिक नय से नित्य है।

(६४) ३. **कर्ता है**—आत्मा पुण्य पाप का कर्ता है।

(६५) ४. **भोक्ता है**—आत्मा पुण्य पाप का भोक्ता भी है। यह पुण्य पाप का कर्ता भोक्तापना मिथ्यादृष्टि मे है। निश्चय नय से आत्मा उनका कर्ता कि भोक्ता नही है।

(६६) ५. **अस्ति ध्रुव (मोक्ष)** है—निर्वाण स्वरूप अस्ति ध्रुव है। व्यक्त निर्वाण—वह अक्षय मुक्ति है और

(६७) ६. **मोक्ष का उपाय** है—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह मोक्ष का उपाय है।

सम्यक्त्व के ये ६७ भेद परमात्मा की प्राप्ति का उपाय है।

हमारा नोट—सम्यक्त्व तो एक ही प्रकार का होता है। उसमे भेद नही होते। उससे अविनाभावी उस सम्यग्दृष्टि आत्मा के ज्ञान चारित्र आदि मे क्या-क्या विशेषताएँ आ जाती हैं उनका यह कथन है। चिद्-विलास के अतिरिक्त और किसी शास्त्र मे हमारे देखने मे नही आया है। मुमुक्षुओ के लिए अत्यन्त उपयोगी समझकर यहाँ दे दिया है।

कण्ठस्थ करने योग्य प्रश्नोत्तर

प्रश्न २३०—सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा के सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण की स्वभावपर्याय को सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह शुद्ध भाव रूप है। राग रूप नही है। आत्मा की एक शुद्धि विशेष का नाम है। तत्त्वार्थश्रद्धान या आत्मश्रद्धान उस का लक्षण है। ये चौथे से सिद्ध तक सब जीवो मे एक जैसा पाया जाता है।

प्रश्न २३१—मिथ्यादर्शन किसको कहते हैं ?

उत्तर—आत्मा के सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण की विभाव पर्याय को मिथ्यादर्शन कहते हैं। यह मोह रूप है। आत्मा मे कलुषता है। स्वपर का एकत्व इसका लक्षण है।

प्रश्न २३२—सम्यक्त्व का लक्षण स्वात्मानुभूति क्या है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि का मति श्रुत ज्ञान जिस समय सम्पूर्ण परज्ञेयो से हट कर मात्र आत्मानुभव करने लगता है उसको स्वात्मानुभूति कहते हैं तथा सम्यग्दर्शन की सहचरता के कारण और बुद्धिपूर्वक राग के अभाव के कारण इसी को निश्चयसम्यग्दर्शन भी कहते हैं।

प्रश्न २३३—सम्यक्त्व का लक्षण श्रद्धा, रुचि, प्रतीति क्या है?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि का मति श्रुत ज्ञान जब विकल्प रूप से नौ तत्त्वो की जानकारी तथा श्रद्धा मे प्रवृत्त होता है उस विकल्प को या विकल्पात्मक ज्ञान को सम्यक्त्व का सहचर होने से व्यवहार सम्यक्त्व कहा जाता है।

प्रश्न २३४—सम्यक्त्व का लक्षण चरण, प्रशम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य, भक्ति, वात्सल्यता, निन्दा, गर्हा क्या है?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व से अविनाभावी अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव हो जाता है और उसके अभाव से उसके चारित्र मे शुभ क्रियाओ मे प्रवृत्ति होती है। उस शुभ विकल्प रूप मन की प्रवृत्ति को जो चारित्र गुण की विभाव पर्याय है चरण है आरोप से उसे सम्यक्त्व कह देते हैं। तथा उसी समय कषायो मे मन्दता आ जाती है उसको प्रशम कह देते हैं। पचपरमेष्ठी, धर्मात्माओ, रत्नत्रयरूप धर्म तथा धर्म के अगो मे जो प्रीति हो जाती है उसको सवेग, भक्ति वात्सल्यता कहते हैं तथा भोगो की इच्छा न होने को निर्वेद कहते हैं, स्वपर की दया को अनुकम्पा कहते हैं। नौ पदार्थों मे "है" पने के भाव को आस्तिक्य कहते है। अपने मे राग भाव के रहने तथा उससे होने वाले वन्ध के पश्चाताप को निन्दा कहते हैं तथा उस राग के त्याग के भाव को गर्हा कहते हैं। ये सब अनन्तानुवधी कषाय के अभाव होने से चारित्र गुण मे विकल्प प्रगट होते है। उनको आरोप से सम्यक्त्व या व्यवहार सम्यक्त्व भी कह देते है क्योकि सम्यक्त्व की सहचरता है।

प्रश्न २३५—नि शंकित अंग किसे कहते हैं?

उत्तर—शका नाम सशय तथा भय का है। इस लोक मे धर्म-

अधर्मद्रव्य, पुद्गल परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थ समुद्र, मरु पर्वत आदि, दूरवर्ती पदार्थ तथा तीर्थकर, चक्रवर्ती, राम, रावणादि अन्तरित पदार्थ हैं इनका वर्णन जैसा सर्वज्ञवीतराग भाषित आगम मे कहा गया है सो सत्य है या नही ? अथवा सर्वज्ञ देव ने वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक (अनन्तधर्म सहित) कहा है सो सत्य है कि असत्य है ? ऐसी शका उत्पन्न न होना सो निश्शकितपना है।

परपदार्थों मे आत्मबुद्धि का उत्पन्न होना पर्यायबुद्धि है अर्थात् कर्मोदय से मिली हुई शरीरादि सामग्री को ही जीव अपना स्वरूप समझ लेता है। इस अन्यथा बुद्धि से ही सात प्रकार के भय उत्पन्न होते है यथा—इहलोकभय, परलोकभय, वेदनाभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, अकस्मात्‌भय। यहाँ पर कोई शका करे कि भय तो श्रावको तथा मुनियो के भी होता है क्योकि भय प्रकृति का उदय अष्टम गुणस्थान तक है तो भय का अभाव सम्यग्दृष्टि के कैसे हो सकता है ? उसका समाधान-सम्यग्दृष्टि के कर्म के उदय का स्वामीपना नही है और न वह पर द्रव्य द्वारा अपने द्रव्यत्वभाव का नाश मानता है, पर्याय का स्वभाव विनाशीक जानता है। इसलिए चारित्रमोह सबधी भय होते हुए भी दर्शनमोह सम्बन्धी भय का तथा तत्त्वार्थ श्रद्धान मे शका का अभाव होने से वह नि शक और निर्भय ही है। यद्यपि वर्तमान पीडा सहने मे अशक्त होने के कारण भय से भागना आदि इलाज भी करता है तथापि तत्त्वार्थ श्रद्धान से चिगने रूप दर्शनमोह सम्बन्धी भय का लेश भी उसे उत्पन्न नही होता। अपने आत्मज्ञान मे निश्शक रहता है।

प्रश्न २३६—निःकांक्षित अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर—विषय-भोगों की अभिलाषा का नाम कांक्षा या वाछा है। इसके चिन्ह ये हैं—पहिले भोगे हुये भोगो की वाछा, उन भोगो की मुख्य क्रिया की वाछा, कर्म और कर्म के फल की वाछा, मिथ्यादृष्टियो को भोगो की प्राप्ति देखकर उनको अपने मन मे भले जानना

अथवा इन्द्रियो की रुचि के विरुद्ध भोगो मे उद्वेगरूप होना ये सब ससारिक वाछाए हैं जिस पुरुष के ये न हो सो निकाक्षित अङ्ग युक्त है। सम्यग्दृष्टि यद्यपि रोग के उपायवत् पचेन्द्रियो के विषय सेवन करता है तो भी उसको उनसे रुचि नही है। ज्ञानी पुरुष व्रतादि शुभाचरण करता हुवा भी उनके उदयजनित शुभ फलो की वाछा नही करता, यहा तक व्रतादि शुभाचरणो को अशुभ से बचने के लिये आचरण करते हुवे भी उन्हे हेय जानता है।

प्रश्न २३७—निर्विचिकित्सा अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपने को उत्तम गुणयुक्त समझकर अपने ताई श्रेष्ठ मानने से दूसरे के प्रति जो तिरस्कार करने की बुद्धि उत्पन्न होती है उसे विचिकित्सा या ग्लानि कहते हैं। इस दोष के चिन्ह ये हैं—जो कोई पुरुष पाप के उदय से दु खी हो या आसता के उदय से ग्लान—शरीर युक्त हो, उसमे ऐसी ग्लानिरूप बुद्धि करना कि—"मैं सुन्दर रूपवान्, सपत्तिवान्, बुद्धिमान् हूँ, यह रक—दीन, कुरूप मेरी बराबरी का नही" सम्यग्दृष्टि के ऐसे भाव कदापि नही होते वह विचार करता है कि जीवो को शुभाशुभ कर्मो के उदय से अनेक प्रकार विचित्र दशा होती है। कदाचित् मेरा भी अशुभ उदय आ जाय तो मेरी भी ऐसी दुर्दशा होना कोई असम्भव नही है। इसलिए वह दूसरो को हीन बुद्धि से या ग्लान-दृष्टि से नही देखता।

प्रश्न २३८—अमूढ़दृष्टि अग किसे कहते हैं ?

उत्तर—अतत्त्व मे तत्त्व के श्रद्धान करने की बुद्धि को मूढदृष्टि कहते है। जिनके यह मूढदृष्टि नही है वे अमूढदृष्टि अग युक्त सम्यक्दृष्टि है। इसके बाह्य चिन्ह यह हैं—मिथ्यादृष्टियो ने पूर्वापर विवेक बिना, गुण दोष के विचार रहित, अनेक पदार्थों को धर्मरूप वर्णन किये हैं और उनके पूजने से लौकिक और पारमार्थिक कार्यों की सिद्धि बतलाई है। अमूढदृष्टि का धारक इन सब को असत्य जानता और उनमे धर्मरूप बुद्धि नही करता तथा अनेक प्रकार की लौकिक मूढताओ को

निस्सार तथा खोटे फलो की उत्पादक जानकर व्यर्थ समझता है, कुदेव या अदेव मे देवबुद्धि, कुगुरु या अगुरु मे गुरुबुद्धि तथा इनके निमित्त हिंसा करने मे धर्म मानना आदि मूढदृष्टिपने को मिथ्यात्व समझ दूर ही से तजता है, यही सम्यक्त्वी का अमूढ-दृष्टिपना है। सच्चेदेव, गुरु, धर्म को ही स्वरूप पहचान कर मानता है।

प्रश्न २३९—उपबृंहण अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर—अपनी तथा अन्य जीवो की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शक्ति का बढाना, उपबृंहण अग है। इसको उपगूहन अग भी कहते हैं। पवित्र जिनधर्म मे अज्ञानता अथवा अशक्यता से उत्पन्न हुई निन्दा को योग्य रीति से दूर करना तथा अपने गुणो को वा दूसरे के दोषो को ढाकना सो उपगूहन अग है।

प्रश्न २४०—स्थितिकरण अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर—आप स्वय या अन्य पुरुष किसी कषायवश ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र से डिगते या छूटते हो तो अपने को वा उन्हे दृढ तथा स्थिर करना से स्थितिकरण अग है।

प्रश्न २४१—वात्सल्य अंग किसे कहते हैं ?

उत्तर—अरहन्त, सिद्ध, उनके बिम्ब, चैत्यालय, चतुर्विध सघ तथा शास्त्रो मे अन्त करण से अनुराग करना, भक्ति सेवा करना सो वात्सल्य है। यह वात्सल्य वैसा ही होना चाहिये जैसे स्वामी मे सेवक की अनुराग पूर्वक भक्ति होती है या गाय का बछडे मे उत्कट अनुराग होता है। यदि इन पर किसी प्रकार के उपसर्ग या सकट आदि आवे तो अपनी शक्ति भर मेटने का यत्न करना चाहिये, शक्ति नही छिपाना चाहिये।

प्रश्न २४२—प्रभावना अग किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस तरह से बन सके, उस तरह से अज्ञान अन्धकार को दूर करके जिन शासन के माहात्म्य को प्रगट करना प्रभावना है अथवा अपने आत्मगुणो को उद्योत करना अर्थात् रत्नत्रय के तेज से अपनी

आत्मा का प्रभाव बढाना और पवित्र मोक्षदायक जिनधर्म को दान-तप-विद्या आदि का अतिशय प्रगट करके तन, मन, धन द्वारा (जैसी अपनी योग्यता हो) सर्व लोक मे प्रकाशित करना सो प्रभावना है।

सम्यग्दर्शन से लाभ

(१) सम्यग्दर्शन से—आगामी कर्मों का आस्रव बन्ध रुक जाता है।

(२) सम्यग्दर्शन से—पहले बन्धे हुवे कर्मो की निर्जरा होती है।

(३) सम्यग्दर्शन से—ज्ञान, सम्यग्ज्ञान हो जाता है और चारित्र सम्यक्-चारित्र हो जाता है।

(४) सम्यग्दर्शन से—एकत्वबुद्धि की कलुषता आत्मा से दूर हो जाती है और शुद्धि की प्रगटता हो जाती है।

(५) सम्यग्दर्शन से—दुःख दूर होकर अतीन्द्रिय सुख प्रारम्भ हो जाता है।

(६) सम्यग्दर्शन से—लब्धिरूप स्वात्मानुभूति तो हर समय रहती है और कभी-कभी उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति का भी आनन्द मिलता है।

(७) सम्यग्दर्शन से—अनादिकालीन पर के कर्तृत्व, भोक्तृत्व का भाव समाप्त हो जाता है। पर के सग्रह की तृष्णा मिट जाती है। परिग्रहरूपी पिशाच से मुख मुड जाता है। उपयोग का बहाव पर से हट कर स्व की ओर होने लगता है।

(८) सम्यग्दर्शन से—कर्मचेतना और कर्मफलचेतना के स्वामित्व का नाश होकर मात्र ज्ञान चेतना का स्वामी हो जाता है। ज्ञानमार्गानुचारी हो जाता है।

(९) सम्यग्दर्शन से—परद्रव्यो का, अपने सयोग वियोग का, राग का, इन्द्रिय सुख दुःख का, कर्मबन्ध का, नौ तत्त्वो का, यहाँ तक

कि मोक्ष का भी ज्ञाता द्रष्टा बन जाता है। केवल सामान्य आत्मा मे स्वपने की वुद्धि रह जाती है।

(१०) सम्यग्दर्शन मे—इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख मे हेय बुद्धि हो जाती है। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख की रुचि जागृत हो जाती है।

(११) सम्यग्दर्शन से—आत्मप्रत्यक्ष हो जाता है।

(१२) सम्यग्दर्शन से—सातावेदनीय से प्राप्त सुखसामग्री मे उपादेय वुद्धि नष्ट हो जाती है।

(१३) सम्यग्दर्शन से—विषयसुख मे और पर मे अत्यन्त अरुचि भाव हो जाता है।

(१४) सम्यग्दर्शन से—केवल ज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं। अज्ञानमय भावो की उत्पत्ति का नाश हो जाता है।

(१५) सम्यग्दर्शन से—ही धर्म प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शन पहला धर्म है और चारित्र दूसरा धर्म है। जगत मे और धर्म कुछ नही है।

(१६) सम्यग्दर्शन से—मिथ्यात्व सवधी कर्मों का अनादिकालीन निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध छूट जाता है।

(१७) सम्यग्दर्शन से—अनादि पचपरावर्तन की शृ खला टूट जाती है।

(१८) सम्यग्दर्शन से—नरक, तिर्यंच और मनुष्य गति नही वन्धती। केवल देवगति मे ही सहचर रागवश जाता है। यदि पहले वधी हो तो नरक मे प्रथम नरक के प्रथम पाथडे से आगे नही जाता। तिर्यंच या मनुष्य, उत्तम भोगभूमि का होता है।

(१९) सम्यग्दर्शन से—नियम से उसी भव मे या थोडे से भवो मे नियम से मोक्ष होकर सव दु खो से छुटकारा सदा के लिये हो जाता है।

ऐसे महान् पवित्र सम्यग्दर्शन को कोटिश नमस्कार है।

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार जी मे कहा है

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ।।२७।।

अर्थ—यदि (सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से) पाप का निरोध है अर्थात् आगामी कर्मों का सवर है तो हे जीव ! अन्य सम्पदा से तुझे क्या प्रयोजन है ? कुछ नही । और यदि सम्यग्दर्शन के अभाव मे पाप का आस्रव है अर्थात् कर्मो का आगमन है तो भी हे जीव ! तुझे अन्य सम्पदा से क्या प्रयोजन है ?

भावार्थ—जीव को सबसे अधिक सम्पदाओ की अभिलाषा है तो गुरुदेव समझाते हैं कि हे जीव ! यदि सम्यग्दर्शन रूपी महान् सम्पदा प्राप्त हो गई तो अन्य सम्पदायें तेरे किस काम की । इस सम्पदा से तुझे आस्रव का निरोध होगा और उसके फलस्वरूप महान् अतीन्द्रिय सुख रूप मोक्ष मिलेगा । अन्य सम्पदा तो नाशवान् है । वह तेरे कुछ काम नही आती । भाई, उनको आत्मा छूता भी नही । नीचे की पक्ति मे नास्ति से समझाते है कि यदि सम्यक्त्व रूप सच्ची सम्पदा नही है और शेष जगत् की सब सम्पदाये है । महान् अहमिन्द्र पद तक प्राप्त है तो रहो हे जीव ! मिथ्यादर्शन रूपी महान् शत्रु से तुझे कर्म बन्धता रहेगा और उसके फलस्वरूप नरक निगोद मे चला जायेगा । यह सब सम्पदा यही पडी रह जायेगी । इसलिये भाई, इन सम्पदाओ की अभिलाषा छोड । ये तो जीव को अनेक बार मिली । असली सम्यक्त्व रूपी सम्पदा का प्रयत्न कर, जिसके सामने ये सब हेय हैं ।

सम्यग्दर्शन से ज्ञान और चारित्र सम्यक् हो जाते हैं और उनका गमन भी मोक्षमार्ग की ओर चल देता है अन्यथा ग्यारह अग तक ज्ञान और महाव्रत तक चारित्र व्यर्थ है । केवल बन्ध करने वाला है ।(देखिये

इसी ग्रन्थ का न० १५३७)। इसलिये ससार सागर से तरने के लिये सम्यग्दर्शन खेवट के समान कहा है।

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते ॥३१॥

विद्यावृत्तस्य सभूतिस्थितिवृद्धिफलोदया.।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥३२॥

भावार्थ—ज्ञानचारित्र से पहले सम्यग्दर्शन की ही साधना की जाती है क्योकि वह मोक्षमार्ग मे खेवटिया के समान कहा गया है। ज्ञान और चारित्र की उत्पत्ति स्थिति वृद्धि और अतीन्द्रिय सुख रूपी फल सम्यक्त्व के अभाव मे नही होते जैसे बीज के अभाव मे वृक्ष की उत्पत्ति स्थिति, वृद्धि और फल लगना नही होता। दसण मूलो धम्मो। यहा सम्यग्दर्शन को वीजवत् कहा है और चारित्र को वृक्षवत् कहा है और अतीन्द्रिय सुख रूप मोक्ष उसका फल कहा है। अत पहले सम्यग्दर्शन का पुरुपार्थ करना ही सर्वश्रेष्ठ है।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुने. ॥३३॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टि गृहस्थी मोक्ष की ओर जा रहा है किन्तु मिथ्यादृष्टि मुनि ससार (निगोद) की ओर जा रहा है। अत उस मिथ्यादृष्टि मुनि से वह सम्यग्दृष्टि श्रेष्ठ है। इससे सम्यक्त्व का माहात्म्य प्रगट ही है।

(४) प्रथम नरक विन षट्भू ज्योतिष, वान भवन षढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु मे नांहि, उपजत समकितधारी॥
तीनलोक तिहुं कालमांहि, नहिं दर्शन सम-सुखकारी।
सकलधरम को मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी॥
मोक्षमहल की परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहै, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा॥

अर्थ—केवल एक सम्यग्दर्शन से कितना ससार कट जाता है। गिने मिने भवो मे मोक्ष हो जाता है और तब तक नरक तिर्यञ्च नही होता। केवल देव और वहाँ से कुलीन सम्पत्तशाली मनुष्य होता है। यदि श्रेणिक की तरह मिथ्यात्व अवस्था मे सातवे नरक तक की भी आयु बाधली हो तो कटकर अधिक से अधिक पहले नरक की प्रथम पाथडे की ८४ हजार वर्ष रह जाती है। यदि पशुगति या मनुष्यगति बाधली हो तो उत्तम भोगभूमि की हो जाती है और मोक्षमार्ग तो उसी समय से प्रारम्भ हो जाता है। वह वहाँ भी कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष का ही पुरुषार्थ करता है।

श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षा मे कहा है

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं।
सिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं॥३२५॥

अर्थ—सम्यक्त्व है सो रत्ननि विषै तो महारत्न है। बहुरि सर्वयोग कहिये वस्तु की सिद्धि करने के उपाय मत्रध्यान आदिक तिनि मे उत्तम योग है जाते सम्यक्त्व से मोक्ष सधै है। बहुरि अणिमादिक ऋद्धि हैं तिनि मे वडी ऋद्धि है। वहुत कहा कहिये सर्व सिद्धि करने वाला यह सम्यक्त्व ही है। इसमे यह दिखाया है कि सम्यक्त्व से कोई वडी सम्पदा जगत् मे नही है।

नोट—सम्यग्दर्शन का विशेष माहात्म्य जानने के लिये सोनगढ से प्रकाशित सम्यग्दर्शन नाम की पुस्तक का अभ्यास करे। सम्यग्दर्शन का माहात्म्य शब्द अगोचर है। यह सब निश्चय सम्यग्दर्शन की महिमा है। व्यवहार रूप राग की नही। वह तो बध करने वाला है।

छठवें भाग का सार

(१) सविकल्प निर्विकल्प चर्चा

प्रश्न २४३—सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है या नहीं ?

उत्तर—नही। आत्मा मे एक श्रद्धा गुण है। उसकी एक विभाव

पर्याय होती है जिसको मिथ्यादर्शन कहते है और एक स्वभाव पर्याय होती है जिसको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह स्वभावपर्याय चौथे से सिद्ध तक एक प्रकार की ही होती है। सविकल्प निर्विकल्प सम्यग्दर्शन या व्यवहार—निश्चय सम्यग्दर्शन नाम की इसमे कोई पर्याय ही नही होती। अत सम्यग्दर्शन को दो प्रकार का मानना भूल है।

प्रश्न २४४—विकल्प शब्द के क्या-क्या अर्थ होते हैं ?

उत्तर—(१) विकल्प शब्द का एक अर्थ तो साकार है। यह ज्ञान का लक्षण है। इस अपेक्षा सभी ज्ञान सविकल्पक कहलाते है [और दर्शन निर्विकल्पक कहलाता है]। (२) विकल्प शब्द का दूसरा अर्थ उपयोग सक्रान्ति है। इस अपेक्षा छद्मस्थ के चारो ज्ञान सविकल्पक हैं। केवलज्ञान निर्विकल्पक है। (३) तीसरे एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर उपयोग के परिवर्तन को भी विकल्प कहते हैं। इस अपेक्षा उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति के समय तो छद्मस्थ का ज्ञान निर्विकल्पक है क्योकि उसमे उपयोग एक ही आत्मपदार्थ पर रहता है। पदार्थान्तर पर नही जाता। शेप समय मे ज्ञेय परिवर्तन किया करता है इसलिए सविकल्प हैं। इन तीन अपेक्षाओ से ज्ञान को सविकल्प कहते है। (४) विकल्प का चौथा अर्थ राग है। यह चारित्र गुण का विभाव परिणमन है। चारित्र गुण के राग सहित परिणमन को सविकल्प या सराग चारित्र कहते हैं जो दसवे तक है और चारित्र गुण के विकल्प रहित परिणमन को निर्विकल्प या वीतराग चारित्र कहते हैं जो ग्यारहवे बारहवे मे है। (५) पाँचवा विकल्प शब्द का अर्थ बुद्धिपूर्वक राग है जो पाया तो पहले से छठे तक जाता है पर यहाँ मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से चौथे, पाँचवे, छठे गुणस्थान का राग ही ग्रहण किया गया है। इन पॉच अर्थों मे विकल्प शब्द का प्रयोग होता है। सम्यग्दर्शन को विकल्पात्मक कहना भारी भूल है।

प्रश्न २४५—केवलियों का ज्ञान निर्विकल्पक किस प्रकार है ?

उत्तर—छद्मस्थो के चारो ज्ञान सविकल्प अर्थात् उपयोगसक्रान्ति

सहित हैं और केवली का ज्ञान निर्विकल्प अर्थात् उपयोग-सक्रान्ति रहित है। इस अपेक्षा केवलज्ञान निर्विकल्पक है।

प्रश्न २४६—केवलज्ञान सविकल्पक किस प्रकार है ?

उत्तर—[देखने वाले] दर्शन का निज लक्षण निर्विकल्प अर्थात् ज्ञेयाकार रहित है और ज्ञान का निज लक्षण सविकल्प अर्थात् ज्ञेयाकार सहित है। इस अपने लक्षण से प्रत्येक ज्ञान सविकल्पक है। केवल ज्ञान मे भी स्व पर ज्ञेयाकारपना रहता है। अत वह भी सविकल्पक है।

प्रश्न २४७—छद्मस्थ का ज्ञान सविकल्पक किस प्रकार है और निर्विकल्पक किस प्रकार है ?

उत्तर—केवलज्ञान निर्विकल्प अर्थात् उपयोगसक्रान्ति रहित है और छद्मस्थ का ज्ञान सविकल्प अर्थात् उपयोगसक्रान्ति सहित है। इस अपेक्षा तो छद्मस्थो के चारो ज्ञान सविकल्पक हैं। दूसरे उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति मे उपयोग क्योकि एक ही निज शुद्ध आत्मा मे रहता है और अर्थ से अर्थान्तर का परिवर्तन [ज्ञेय परिवर्तन] नही करता—इस अपेक्षा स्वोपयोग के समय मे तो छद्मस्थो का ज्ञान निर्विकल्पक है और अन्य समय मे सविकल्पक है।

प्रश्न २४८—ज्ञान सविकल्प है या नहीं ?

उत्तर—ज्ञान एक तो अपने ज्ञेयाकार रूप लक्षण से सविकल्प है, दूसरे उपयोगसक्रान्ति लक्षण से सविकल्प है, तीसरे ज्ञेयपरिवर्तन से सविकल्प है। पर 'ज्ञान—राग रूप ही हो जाता हो' इस अपेक्षा सविकल्पक कभी नही है।

प्रश्न २४९—सम्यग्दर्शन सविकल्पक है या नहीं ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन तो सम्यक्त्व गुण का निर्विकल्प [शुद्धभाव रूप] परिणमन है। चौथे से सिद्ध तक एक रूप है। वह किसी प्रकार भी सविकल्पक नही है क्योकि यह कभी रागरूप नही होता है।

प्रश्न २५०—चारित्र सविकल्प है या नहीं ?

उत्तर—पहले गुणस्थान मे तो चारित्र गुण का परिणमन सर्वथा राग रूप ही है। अत वह तो सविकल्प ही है। चौथे मे अनन्तानुबधी अश को छोड कर चारित्र का शेष अश सविकल्प है—राग रूप है। पांचवे छठे मे जितना बुद्धि अबुद्धिपूर्वक राग है उतना चारित्र का परिणमन विकल्प रूप है। सातवें से दसवे तक जितना अबुद्धिपूर्वक राग है उतना चारित्र का परिणमन विकल्प रूप है। चारित्र वास्तव मे सविकल्पक है पर जहाँ जितना चारित्र राग रहित है वहाँ उतना वह भी निर्विकल्पक है। चारित्र भी सर्वथा सविकल्पक हो—ये बात नही है। स्वभाव से तो चारित्र भी निर्विकल्पक ही है और जितना मोक्षमार्गरूप [सवर—निर्जरा रूप] है—उतना भी निर्विकल्पक ही है। जितना जहाँ रागरूप परिणत है वह निश्चय से सविकल्पक ही है।

प्रश्न २५१—चौथे पाँचवें छठे में तीनो गुणों की वास्तविक परिस्थिति बताओ ?

उत्तर—इन गुणस्थानो मे सम्यग्दर्शन तो श्रद्धा गुण की शुद्ध पर्याय है जो राग रहित निर्विकल्प है। सम्यग्ज्ञान ज्ञानगुण के क्षयोपशम रूप है। इसका कार्य केवल स्व पर को जानना है। राग से इसका भी कुछ सम्बन्ध नही है। चारित्र मे जितनी स्वरूप स्थिरता है उतना तो शुद्ध अश है और जितना राग है उतनी मलीनता है। अत· चारित्र को यहाँ सराग या सविकल्प कहते है।

प्रश्न २५२—सातवें से बारहवें तक तीनो गुणो की वास्तविक परिस्थिति क्या है ?

उत्तर—श्रद्धा गुण की सम्यग्दर्शन पर्याय तो वैसी ही शुद्ध है जैसी छठे तक थी। उसमे कोई अन्तर नही है। ज्ञान है तो क्षयोपशम रूप पर बुद्धिपूर्वक सब का सब उपयोग स्वज्ञेय को ही जानता है। राग से इसका भी कुछ सम्बन्ध नही है। चारित्र मे बुद्धिपूर्वक राग तो समाप्त हो चुका। अबुद्धिपूर्वक का कुछ राग दसवें तक है। शेष सब शुद्ध परिणमन है और बारहवे मे राग नाश होकर चारित्रपूर्ण वीतराग है।

प्रश्न २५३— यहाँ सराग सम्यग्दृष्टि से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—जिस सम्यग्दर्शन के साथ बुद्धिपूर्वक चारित्र का राग वर्तता है। उसके धारी चौथे पाँचवे छठे गुणस्थानवर्ति जीवो को यहाँ सविकल्प या सराग सम्यग्दृष्टि कहा है।

प्रश्न २५४—यहाँ वीतराग सम्यग्दृष्टि से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—जिस सम्यग्दर्शन के साथ बुद्धिपूर्वक चारित्र का राग नही वर्तता है। उसके धारी सातवें आदि गुणस्थानवर्ति जीवो को यहाँ निर्विकल्प या वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा गया है।

(२) ज्ञानचेतना अधिकार

प्रश्न २५५—ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक्त्व से अविनाभूत मतिश्रुतज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम से होने वाला ज्ञान का उघाड और उस उघाड के राग रहित शुद्धपरिणमन को ज्ञानचेतना कहते है अथवा ज्ञान के ज्ञानरूप रहने को [रागरूप न होने को] ज्ञानचेतना कहते है अथवा ज्ञान के ज्ञानरूप वेदन को ज्ञानचेतना कहते हैं।

प्रश्न २५६—ज्ञानचेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—(१) लब्धिरूप ज्ञानचेतना (२) उपयोगरूप ज्ञान-चेतना।

प्रश्न २५७—लब्धिरूप ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—सम्यक्त्व से अविनाभूत ज्ञानचेतना को आवरण करने वाले मतिश्रुतज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम को लब्धिरूप ज्ञानचेतना कहते है। वह ज्ञान के उघाडरूप है।

प्रश्न २५८—उपयोगरूप ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—लब्धिरूप ज्ञानचेतना की प्राप्ति होने पर जब ज्ञानी अपने उपयोग को सब परज्ञेयो से हटाकर केवल निजशुद्ध आत्मा को सवेदन

करने के लिए स्व से जोडता है, उस समय उपयोगात्मक ज्ञानचेतना होती है। यह ज्ञान के स्व मे उपयोगरूप है।

प्रश्न २५९—लब्धिरूप ज्ञानचेतना किन के पाई जाती है ?

उत्तर—चौथे से वारहवे गुणस्थान तक सभी जीवो के हर समय पाई जाती है।

प्रश्न २६०—उपयोगरूप ज्ञानचेतना किन के पाई जाती है ?

उत्तर—चौथे पाँचवे छठे वालो के कभी-कभी पाई जाती है और सातवे से निरन्तर अखण्डधारारूप से पाई जाती है।

प्रश्न २६१—सवर निर्जरा ज्ञानचेतना के आधीन है या सम्यक्त्व के आधीन है ?

उत्तर—ज्ञानचेतना तो ज्ञान की पर्याय है। ज्ञान का वन्ध मोक्ष से कोई सम्बन्ध नही है। सवर निर्जरा की व्याप्ति तो सम्यक्त्व से है। अत वे सम्यक्त्व के आधीन हैं चाहे उपयोग स्व मे रहे या पर मे जावे।

(३) व्याप्ति अधिकार

प्रश्न २६२—व्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—सहचर्य नियम को व्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न २६३—व्याप्ति के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो (१) समव्याप्ति (२) विपम व्याप्ति।

प्रश्न २६४—समव्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—दोनो ओर के सहचर्य नियम को समव्याप्ति कहते हैं [अर्थात् किन्ही दो चीजो के सदा साथ रहने को और कभी जुदा न रहने को समव्याप्ति कहते है] जैसे सम्यक्त्व और दर्शनमोह का अनुदय। इन दो पदार्थों मे कभी आपस मे व्यभिचार नही मिलता अर्थात् एक मिले और दूसरा न मिले ऐसा कभी नही होता। दोनो इकट्ठे ही मिलते हैं। इसलिये इनमे समव्याप्ति है। समव्याप्ति परस्पर मे दोनो की होती है। इसको इस प्रकार बोलते हैं—जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व है वहाँ-

वहाँ दर्शनमोह का अनुदय है और जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व नही है वहाँ-वहाँ दर्शनमोह का अनुदय भी नही है। तथा जहाँ-जहाँ दर्शनमोह का अनुदय है वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व है और जहाँ-जहाँ दर्शनमोह का अनुदय नही है वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व भी नही है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और ज्ञानचेतनावरण कर्म के क्षयोपशम की [अर्थात् लब्धिरूप ज्ञानचेतना की] समव्याप्ति है। इसके जानने से यह लाभ है कि एक का अस्तित्त्व दूसरे के अस्तित्त्व को और एक का नास्तित्त्व दूसरे के नास्तित्त्व को सिद्ध कर देता है।

प्रश्न २६५—क्या समव्याप्ति मे एक पदार्थ दूसरे पदार्थ के आधीन है?

उत्तर—कदापि नही। एक का परिणमन या मौजूदगी दूसरे के आधीन बिल्कुल नही है। दोनो स्वतन्त्र अपने-अपने स्वकाल की योग्यता से परिणमन करते है। व्याप्ति का यह अर्थ नही कि एक पदार्थ दूसरे को लाता हो या दूसरे को उसके कारण से आना पडता हो या एक के कारण दूसरे को अपनी वैसी अवस्था करनी पडती हो—कदापि नही। व्याप्ति तो केवल यह बताती है कि स्वत ऐसा प्राकृतिक नियम है कि दोनो साथ रहते है—एक हो और दूसरा न हो—ऐसा कदापि नही होता। बस इससे अधिक और व्याप्ति से कुछ सिद्ध नही किया जाता।

प्रश्न २६६—विषमव्याप्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—एक तरफा के सहचर्य नियम को विषम व्याप्ति कहते है [अर्थात् जो व्याप्ति एक तरफा तो पाई जावे और दूसरी तरफा न पाई जावे उसे विषम व्याप्ति कहते है] जैसे जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ आग है यह तो घट गया पर जहाँ-जहाँ धूम नही है वहाँ-वहाँ आग भी नही है यह नही घटा क्योकि बिना धूम भी आग होती है। इसलिये धूम और अग्नि मे समव्याप्ति नही किन्तु विषम व्याप्ति है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और स्वोपयोग मे, राग और ज्ञानावरण मे, लब्धि

और स्वोपयोग मे—विपमव्याप्ति है। जिस ओर से यह व्याप्ति घट जाती है उनका तो परस्पर सहचर्य सिद्ध हो जाता है किन्तु जिस ओर से नही घटती उनका सहचर्य सिद्ध नही होता—यह इससे लाभ है।

प्रश्न २६७—सम्यक्त्व और ज्ञानचेतनावरण के क्षयोपशम मे कौन सी व्याप्ति है ?

उत्तर—समव्याप्ति है क्योकि सदा दोनो इकटठे रहते हैं। एक हो और दूसरा न हो—ऐसा कभी होता ही नही है। जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व है वहाँ-वहाँ ज्ञानचेतनावरण का क्षयोपशम भी है और जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व नही है वहाँ-वहाँ ज्ञानचेतनावरण का क्षयोपशम भी नही है तथा जहाँ-जहाँ ज्ञानचेतनावरण का क्षयोपशम है—वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व है और जहाँ-जहाँ ज्ञानचेतनावरण का क्षयोपशम नही है वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व भी नही हैं। इसलिये सम्यक्त्व का अस्तित्त्व लब्धिरूप ज्ञान-चेतना के अस्तित्त्व को सिद्ध करता है। इससे जो सम्यग्दृष्टियो के ज्ञान-चेतना नही मानते—उनका खण्डन हो जाता है।

प्रश्न २६८—सम्यक्त्व और उपयोगरूप ज्ञानचेतना मे कौन सी व्याप्ति है ?

उत्तर—विषम व्याप्ति है क्योकि जहाँ-जहाँ स्वोपयोग है वहाँ-वहाँ तो सम्यक्त्व है पर जहाँ-जहाँ स्वोपयोग नही है वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व हो—न भी हो—कोई नियम नही है। स्वोपयोग के विना भी सम्यक्त्व रहता है अथवा इसको यूँ भी कह सकते हैं कि जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व नही है वहाँ-वहाँ तो स्वोपयोग भी नही है पर जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व है वहाँ-वहाँ स्वोपयोग हो भी सकता है और नही भी हो सकता—कोई नियम नही है। इनमे एक तरफ की व्याप्ति तो है पर दूसरे तरफ का नही है—इसलिए यह विषम व्याप्ति है। इससे एक तो यह सिद्ध किया जाता है कि शुद्धोपयोग सम्यग्दृष्टियो के ही होता है और दूसरे यह सिद्ध किया जाता है कि सब सम्यग्दृष्टियो के हर समय स्वोपयोग नही रहता।

प्रश्न २६९—लब्धि और उपयोगरूप ज्ञानचेतना मे कौन-सी व्याप्ति है ?

उत्तर—विषम व्याप्ति है क्योकि जहाँ-जहाँ उपयोग है वहाँ-वहाँ तो लब्धि है पर जहाँ-जहाँ उपयोग नही है वहाँ-वहाँ लब्धि हो भी सकती है अथवा नही भी हो सकती अथवा इसको यूं भी कह सकते हैं कि जहाँ-जहाँ लब्धि नही है वहाँ-वहाँ तो उपयोग भी नही है पर जहाँ-जहाँ लब्धि है वहाँ-वहाँ उपयोग हो भी सकता है और नही भी हो सकता—कुछ नियम नही है। इनमे एक तरफा व्याप्ति है पर दूसरी तरफा नही है—इसलिए विषम व्याप्ति है। इससे एक तो यह सिद्ध किया जाता है कि लब्धि कारण है—स्वोपयोग कार्य है। अत स्वोपयोग वाले के लब्धि अवश्य है। दूसरा यह सिद्ध किया जाता है कि ज्ञानचेतना प्राप्त जीव अपना उपयोग हर समय स्व मे ही रखता हो—पर मे न ले जाता हो—यह बात नही है। ज्ञानचेतना लब्धि बनी रहती है और उपयोग पर को जानने मे भी चला जाता है।

प्रश्न २७०—उपयोग और बन्ध मे कौन-सी व्याप्ति है ?

उत्तर—कोई भी नही है क्योकि जहाँ-जहाँ उपयोग है वहाँ-वहाँ बन्ध होना चाहिए—सिद्ध मे उपयोग तो है पर बन्ध बिलकुल नही है। जहाँ-जहाँ उपयोग नही है वहाँ-वहाँ बन्ध भी नही है यह भी नही घटा क्योकि विग्रहगति मे उपयोग नही है पर बन्ध है। अब दूसरी ओर से देखिए। जहाँ-जहाँ बन्ध है वहाँ-वहाँ उपयोग चाहिए—विग्रहगति मे बन्ध है पर उपयोग नही है। जहाँ-जहाँ बन्ध नही है वहाँ-वहाँ उपयोग नही है—यह भी नही घटा क्योकि सिद्ध मे बन्ध बिलकुल नही है पर उपयोग सारा स्व मे है।

प्रश्न २७१—राग और ज्ञानावरण में कौन-सी व्याप्ति है ?

उत्तर—विषम व्याप्ति है क्योकि जहाँ-जहाँ राग है वहाँ-वहाँ तो ज्ञानावरण है यह तो ठीक पर जहाँ-जहाँ ज्ञानावरण है वहाँ-वहाँ राग भी अवश्य हो—यह कोई नियम नही है। हो भी सकता है और नही

भी हो सकता क्योकि ग्यारहवे, बारहवें मे ज्ञानावरण तो है पर राग नही है। जहाँ-जहाँ राग है वहाँ-वहाँ ज्ञानावरण है इससे राग का तो ज्ञानावरण के साथ पक्का सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है पर जहाँ-जहाँ ज्ञानावरण है वहाँ-वहाँ राग हो—यह सिद्ध न होने से ज्ञानावरण का राग से कुछ सम्बन्ध सिद्ध नही होता।

प्रश्न २७२—राग की और दर्शनमोह की कौन-सी व्याप्ति है ?

उत्तर—कोई नही क्योकि न राग से दर्शनमोह बन्धता है और न दर्शनमोह के उदय से राग होता है। राग की व्याप्ति चारित्रमोह से है —दर्शनमोह से नही। इससे यह सिद्ध किया जाता है कि सम्यग्दर्शन सविकल्पक नही। सम्यग्दृष्टि के चारित्र मे कृष्ण लेश्या रहते हुए भी शुद्ध सम्यक्त्व बना ही रहता है [यहाँ राग से आशय केवल चारित्र-मोह सम्बन्धी राग से है]।

प्रश्न २७३—सम्यग्दर्शन-बन्ध और मोक्ष से किसकी व्याप्ति नहीं है तथा किसकी है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन—बन्ध—मोक्ष से उपयोग की व्याप्ति नही है। दर्शनमोह के अनुदय की व्याप्ति सम्यग्दर्शन से है। राग की व्याप्ति बन्ध से है और सवर निर्जरा की व्याप्ति मोक्ष से है।

प्रश्न २७४—अन्वय व्यतिरेक किस को कहते हैं ?

उत्तर—जिसके होने पर जो हो—उसको अन्वय कहते है और जिसके नही होने पर जो न हो—उसको व्यतिरेक कहते है जैसे जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व है वहाँ-वहाँ दर्शनमोह का अनुदय है—यह अन्वय है और जहाँ-जहाँ दर्शनमोह का अनुदय नही है—वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व भी नही है—यह व्यतिरेक है।

प्रश्न २७५—व्याप्ति के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर—इससे पदार्थों के सहचर्य सम्बन्ध का पता चल जाता है कि किन पदार्थों की किन पदार्थों के साथ सहचरता है या नही। ये अवि-नाभाव की कसौटी है। इससे परख कर देख लेते हैं। इससे एक पदार्थ

की अस्ति या नास्ति से दूसरे पदार्थ की अस्ति या नास्ति का ज्ञान कर लिया जाता है।

नोट—न्यायशास्त्र मे अनुमान प्रयोग मे साधन के सद्भाव मे साध्य के सद्भाव और साध्य के अभाव मे साधन के अभाव को अविनाभाव या व्याप्ति कहते हैं। वहाँ समव्याप्ति या विपमव्याप्ति नही होती। व्याप्ति होती है या अव्याप्ति होती है। यह विपय उससे भिन्न जाति का है। यह आध्यात्मिक विषय है। वहाँ धूम और अग्नि की व्याप्ति है। यहाँ धूम और अग्नि को विपम व्याप्ति है। इसलिए इस विपय को उस न्याय के ढग से समझने का प्रयत्न न करे किन्तु जिस ढग से यहाँ निरूपण किया गया है—उसी ढग से समझे तो कल्याण होगा। वहाँ उद्देश्य साधन द्वारा साध्य के सिद्ध करने का है और यहाँ उद्देश्य एक पदार्थ के अस्तित्व या नास्तित्व दूसरे पदार्थ के अस्तित्व या नास्तित्व को सिद्ध करने का है।

(४) **फुटकर** (Mıslanıous)

प्रश्न २७६—उपयोगसक्रान्ति के पर्यायवाची शब्द बताओ ?

उत्तर—उपयोगसक्रान्ति, पुनर्वृत्ति, क्रमवर्तित्व, विकल्प, ज्ञप्ति-परिवर्तन। उपयोग का वदलना।

प्रश्न २७७—क्षायोपशमिक ज्ञान और क्षायिक ज्ञान में क्या अन्तर है ?

उत्तर—क्षायोपशमिक ज्ञान मे उपयोग सक्रान्ति होती ही है। वह क्रमवर्ती ही है। क्षायिक ज्ञान मे उपयोग सक्रान्ति नही ही होती है। वह अक्रमवर्ती ही है।

प्रश्न २७८—गुण क्या-क्या हैं ?

उत्तर—सम्यक्त्व की उत्पत्ति होना, वृद्धि होना, निर्जरा होना, सवर होना, सवर निर्जरा की वृद्धि होना, पुण्य वन्धना, पुण्य का

उत्पकर्पण होना, पाप का आकर्षण होना, पाप का पुण्य रूप सक्रमण [वदलना] गुण है।

प्रश्न २७९—दोष क्या-क्या है ?

उत्तर—सम्यक्त्व का सर्वथा नाश या आंशिक हानि होना, सवर निर्जरा का सर्वथा नाश या हानि होना, पाप का वन्धना, पाप का उत्पकर्पण होना, पुण्य का अपकर्षण होना, पुण्यप्रकृति का पाप प्रकृति मे वदलना दोष है।

प्रश्न २८०—राग और उपयोग मे किन कारणो से भिन्नता है ?

उत्तर—राग औदयिक भाव है। उपयोग क्षयोपशमिक भाव है। राग चारित्रगुण की विपरीत पर्याय है। उपयोग ज्ञानगुण की क्षयोपशम रूप पर्याय है। राग चारित्रमोह के उदय से होता है—उपयोग ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होता है। राग का अनुभव मलीनता रूप है—ज्ञान का अनुभव स्वभाव रूप [जानने रूप] है। राग से वन्ध ही होता है। उपयोग से वन्ध नही ही होता है। इसलिए प्रत्येक मे दोनो स्वतन्त्र रूप से पाये जाते हैं अर्थात् हीनाधिक पाये जाते हैं या ज्ञान तो पाया जाता है पर राग नही पाया जाता। ये दृष्टान्त इनकी भिन्नता को सिद्ध करते है।

सातवें भाग का सार

प्रश्नोत्तर

प्रश्न २८१—आत्मा के असाधारण भाव कितने हैं ?

उत्तर—पाँच—औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक। भाव तो असख्यातलोकप्रमाण हैं पर ज्ञानियो ने जाति के अपेक्षा वहुत मोटे रूप से इन ५ भेदो मे विभक्त कर दिये हैं। इनके मोटे प्रभेद [अवान्तर भेद] ५३ है।

प्रश्न २८२—असाधारण भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—असाधारण का अर्थ तो यह है कि ये भाव आत्मा मे ही

पाये जाते हैं। अन्य ५ द्रव्यो मे नही पाये जाते। आत्मा मे किन-किन जाति के भाव-परिणाम-अवस्थायें होती हैं—यह इससे ख्याल मे आ जाता है और इनके द्वारा जीव को जीव का स्पष्ट ज्ञान साङ्गोपाङ्ग द्रव्य गुण पर्याय सहित हो जाता है। इन भावो के जानने से ज्ञान मे वडी स्पष्टता आ जाती है। अच्छे बुरे [हानिकारक अथवा लाभदायक] परिणामो का ज्ञान होता है जैसे मोह को अनुसरण करके होने वाला औदयिक भाव हानिकारक तथा दुखरूप है। मोह के अभाव से होने वाले औपशमिक—क्षायोपशमिक भाव मोक्षमार्ग रूप हैं तथा क्षायिक भाव मोक्षरूप हैं। क्षायिक ज्ञान दर्शन वीर्य जीव का पूर्ण स्वभाव है—क्षायोपशमिक एकदेश स्वभाव है। विपरीत ज्ञान विभाव रूप है। इत्यादिक।

प्रश्न २८३—क्षायिक भाव किसे कहते हैं? उसके कितने भेद हैं?

उत्तर—कर्म के क्षय को अनुसरण करके होने वाले भाव को क्षायिक भाव कहते हैं। उसके ९ भेद हैं। १ क्षायिक सम्यक्त्व, २ चारित्र, ३ ज्ञान, ४ दर्शन, ५ दान, ६ लाभ, ७ भोग, ८ उपभोग और ९ वीर्य। इनको ९ क्षायिक लब्धिया भी कहते हैं। ये भाव तेरहवे गुणस्थान के प्रारम्भ मे प्रगट होकर सिद्ध मे अनन्त काल तक धारा प्रवाह रूप से प्रत्येक समय होते रहते हैं। ९ भिन्न २ अनुजीवी गुणो की एक समय की ९ क्षायिक पर्यायो के नाम हैं। आदि अनन्त भाव हैं।

प्रश्न २८४—औपशमिक भाव किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं?

उत्तर—कर्म के उपशम को अनुसरण करके होने वाले भाव को औपशमिक भाव कहते हैं। इसके २ भेद हैं। १ औपशमिक सम्यक्त्व, २ औपशमिक चारित्र। वह श्रद्धा और चारित्र गुण का एक समय का क्षणिक स्वभाव परिणमन है। सादि सान्त भाव है। औपशमिक सम्यक्त्व तो चौथे से सातवें तक रह सकता है और पूर्ण औपशमिक चारित्र ग्यारहवे गुणस्थान मे होता है।

प्रश्न २८५—क्षायोपशमिक भाव किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर—कर्म मे क्षयोपशम को अनुसरण करके होने वाले भाव को क्षायोपशमिक भाव कहते है। इसके १८ भेद है। ४ ज्ञान [मति, श्रुत, अवधि और मन पर्यय], ३ अज्ञान [कुमति, कुश्रुत, विभग], ३ दर्शन [चक्षु अचक्षु, अवधि], ५ क्षायोपशमिक [दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य], १ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, १ क्षायोपशमिक चारित्र, १ सयमासयम। ये आत्मा के १८ पर्यायो के नाम हैं। सादि सान्त भाव हैं। इनमे ४ ज्ञान और ३ अज्ञान तो ज्ञान गुण की एक समय की पर्यायें है। ३ दर्शन, दर्शन गुण की एक समय की पर्याय है। दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये आत्मा मे ५ स्वतन्त्र गुण हैं। प्रत्येक भाव अपने-अपने गुण की एक समय की पर्याय है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व श्रद्धा गुण की एक समय की स्वभाव पर्याय है। क्षायोपशमिक सयम और सयमा-सयम चारित्र गुण की एक समय की आशिक स्वभाव पर्याय है। ४ ज्ञान तो चौथे से बारहवे तक पाये जाते है। ३ अज्ञान पहले तीन गुणस्थानो मे हैं। ३ दर्शन और ५ दानादिक पहले से बारहवे तक पाये जाते हैं। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चौथे से सातवें तक पाया जाता है। क्षायोपशमिक चारित्र छठे से दसवे तक है और सयमासयम केवल एक पाचवे गुणस्थान मे पाया जाता है।

प्रश्न २८६—औदयिक भाव किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं तथा उनमे किस-किस कर्म का निमित्त है ?

उत्तर—कर्म के उदय को अनुसरण करके होने वाले भाव को औदयिक भाव कहते हैं। इसके २१ भेद हैं। ४ गति भाव, ४ कषाय भाव, ३ लिंग भाव, १ मिथ्यादर्शन भाव, १ अज्ञान भाव, १ असयम भाव, १ असिद्धत्व भाव, ६ लेश्या भाव। गति भाव मे गति नामा नाम कर्म के उदय का सहचर दर्शनमोह तथा चारित्रमोह का उदय निमित्त है। कषाय, लिंग, असयम इनमे चारित्रमोह का उदय निमित्त है। अज्ञान

भाव मे ज्ञानावरण का उदय अश निमित्त है। मिथ्यादर्शन मे दर्शनमोह का उदय निमित्त है। असिद्धत्व भाव मे आठा कर्मों का उदय निमित्त है। लेश्या भाव है योग का सहचर और मोहनीय निमित्त है। ये सब दु खरूप हैं। अज्ञान भाव बध कारण नही है—शेष सब बन्ध के कारण है। आत्मा का बुरा इन औदयिक भावो से ही है। ये आत्मा के एक समय के परिणमन रूप भाव हैं। पर्यायें हैं। सब क्षणिक नाशवान हैं। सादि सान्त हैं।

प्रश्न २८७—पारिणामिक भाव किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं?

उत्तर—जो भाव कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम या उदय की अपेक्षा न रखता हुआ जीव का स्वभाव मात्र हो—उसको पारिणामिक भाव कहते हैं। इसके ३ भेद हैं। १ जीवत्व, २ भव्यत्व, ३ अभयत्व। जीवत्व भाव द्रव्यरूप है। भव्यत्व अभव्यत्व भाव गुण रूप हैं। भव्य जीव मे भव्यत्व गुण का सम्यक्त्व होने से पहले अपक्व परिणमन चलता है। चौथे से सिद्ध तक पक्व परिणमन है। अभव्य जीव मे अभव्यत्व गुण का अभव्यत्व परिणमन होता है। जीवत्व भाव, ज्ञायक भाव, पारिणामिक भाव, परम पारिणामिक भाव, कारण शुद्ध पर्याय आदि अनेक नामो से कहा जाता है। यह सब जीवो मे है। भव्य अभव्य मे से एक जीव मे कोई एक होता है। भव्य मे भव्यत्व, अभव्य मे अभव्यत्व। भव्यत्व अभव्यत्व की अपेक्षा जीव ही मूल मे दो प्रकार के हैं। अभव्य ससार रुचि को कभी नही छोडता है। भव्य स्वकाल की योग्यतानुसार पुरुषार्थ करके ससार रुचि का नाश कर मोक्ष पाता है। पर सब भव्य मोक्ष प्राप्त करे—ऐसा नियम नही है। जो पुरुषार्थ करता है—वह प्राप्त कर लेता है। योग्यता सब भव्यो मे है। अभव्य मे पर्यायदृष्टि से योग्यता नही है। द्रव्य स्वभाव तो उसका भी मोक्ष-रूप है।

प्रश्न २८८—कर्म किसे कहते हैं ? वे कितने हैं ?

उत्तर—आत्मस्वभाव से प्रतिपक्षी स्वभाव को धारण करने वाले पुद्गल कार्मण स्कन्ध वर्गणाओ को कर्म कहते है। वे ८ हैं। १ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम, ७ गोत्र और ८. अन्तराय।

प्रश्न २८६—उस कर्म के मूल भेद कितने हैं और क्यो ?

उत्तर—उस कर्म के मूल २ भेद है। १ घाति कर्म, २ अघाति कर्म। (१) जो अनुजीवी गुणो के घात मे निमित्तमात्र कारण हैं—उन्हे घातिकर्म कहते हैं। (२) जो अनुजीवी गुणो के घात मे निमित्त नही है अथवा आत्मा को परवस्तु के सयोग मे निमित्तमात्र कारण हैं अथवा आत्मा के प्रतिजीवी गुणो के घात मे निमित्तमात्र कारण हैं—उन्हे अघाति कर्म कहते हैं। घाति कर्म ४ है—१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ मोहनीय और ४ अन्तराय। शेष ४ अघाति हैं।

प्रश्न २९०—इन कर्मो में उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम मे से कौन-कौन अवस्था होती हैं ?

उत्तर—अघाति कर्मों मे दो ही अवस्था होती है। उदय और क्षय। चौदहवे तक इनका उदय रहता है और चौदहवे के अन्त मे अत्यन्त क्षय हो जाता है। ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तराय की दो ही अवस्था होती हैं। क्षयोपशम और क्षय। बारहवें तक इनका क्षयोपशम है और बारहवे के अन्त मे क्षय है। मोहनीय मे चारो अवस्थाये होती है। उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम।

प्रश्न २९१—किस गुण के तिरोभाव मे कौन कर्म निमित्त है ?

उत्तर—ज्ञान गुण के तिरोभाव मे ज्ञानावरण निमित्त है। निमित्त मे ज्ञानावरण को स्वत दो अवस्था होती हैं—क्षय और क्षयोपशम। उपादान मे ज्ञान गुण मे स्वत. दो नैमित्तिक अवस्था होती है—क्षायिक और क्षायोपशमिक। इसलिए ज्ञानगुण मे दो भाव होते हैं अर्थात् ज्ञान गुण का पर्याय मे दो प्रकार का परिणमन होता है—क्षायिक परिणमन

रूप केवलज्ञान और क्षायोपशमिक परिणमन रूप शेष ४ ज्ञान और ३ कुज्ञान। [अज्ञान भाव तो औदयिक अश की अपेक्षा है]।

इसी प्रकार दर्शन गुण मे दर्शनावरण निमित्त है। इस गुण की भी दो अवस्था होती है। क्षायिक परिणमन रूप केवल दर्शन, क्षायोपशमिक परिणमन रूप शेप ३ दर्शन।

दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यगुण मे अन्तराय कर्म निमित्त है। इन गुणो की भी दो अवस्था होती है। क्षायिक परिणमन रूप क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। क्षायोपशमिक परिणमन रूप क्षायोपशमिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य उपरोक्त सब क्षायोपशमिक भाव बारहवें गुणस्थान तक है और क्षायिक भाव तेरहवे से प्रारम्भ होकर सिद्ध तक हैं।

मोहनीय के २ भेद हैं। दर्शनमोह और चारित्रमोह। आत्मा के सम्यक्त्व [श्रद्धा] गुण मे दर्शनमोह निमित्त है और चारित्र गुण मे चारित्रमोह निमित्त है। श्रद्धा गुण की ४ अवस्था होती है। पहले, दूसरे, तीसरे मे इसकी औदयिक अवस्था है। चौथे से सातवें तक प्रथम नम्बर की औपशमिक सम्यक्त्व अवस्था और आठवे से ग्यारहवे तक दूसरी औपशमिक सम्यक्त्व अवस्था रह सकती है। चौथे से सातवें तक क्षायोपशमिक अवस्था रह सकतो है और चौथे से सिद्ध तक क्षायिक अवस्था रह सकती है। दर्शनमोह का उदय मिथ्यात्व भाव मे निमित्त है। इसका क्षयोपशम, क्षय तथा उपशम क्रमश क्षायोपशमिक, क्षायिक और औपशमिक सम्यक्त्व मे निमित्त है। चारित्र गुण की भी ४ अवस्थायें होती हैं। असयम भाव मे चारित्रमोह का उदय निमित्त है। यह भाव पहले चार गुणस्थानो मे होता है। उसका क्षय-क्षायिक चारित्र मे निमित्त है और बारहवे से ही होता है। इसका उपशम औपशमिक

चारित्र मे निमित्त है जो सपूर्ण ग्यारहवे मे होता है और इसका क्षायोपशम एक तो सयमासयम भाव मे निमित्त है जो पाचवें मे होता है और दूसरे क्षायोपशमिक चारित्र मे निमित्त है जो छठे से दसवे तक होता है।

पचाध्यायी प्रश्नोत्तर समाप्त